Hindi Aur Odiya kavita mein Dalit Chetana (Om Prakash Valmiki Aur Basudev Sunani ki Kavitaon ke Vishesh Sandarbh mein)

A Thesis submitted in Partial Fulfilment of the Requirement for the

Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

In Centre for Dalit & Adivasi Studies and Translation

October 2023

Submitted By

GOURANGA CHARAN ROUT

12HDPH01

Under the guidance of

Prof. M. Shyam Rao

Center for Dalit & Adivasi Studies and Translations
School of Humanities
University of Hyderabad
P.O. Central University, Gachibowli,
Hyderabad-500046
Telangana State, India

हिन्दी और उड़िया कविता में दलित-चेतना (ओमप्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी की कविताओं के विशेष संदर्भ में)

हैदराबाद विश्वविद्यालय की पीएच.डी. (दलित-आदिवासी अध्ययन एवं अनुवाद केन्द्र) उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

अक्टूबर, 2023

शोधार्थी

गौरांग चरण राउत

12HDPH01

शोध-निर्देशक

प्रो. एम.श्याम राव

हिन्दी विभाग, मानविकी संकाय

हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद-500046

विभागाध्यक्ष

प्रो. विष्णु सरवदे

सीडास्ट,मानविकी संकाय

हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद-500046

दलित-आदिवासी अध्ययन एवं अनुवाद केन्द्र

मानविकी संकाय

हैदराबाद विश्वविद्यालय

हैदराबाद-500046

DECLARATION

I, GOURANGA CHARAN ROUT hereby declare that the thesis entitled **"Hindi Aur Odiya kavita mein Dalit Chetana (Om Prakash Valmiki Aur Basudev Sunani ki Kavitaon ke Vishesh Sandarbh mein)" "हिन्दी और उड़िया कविता में दलित चेतना (ओमप्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी की कविताओं के विशेष संदर्भ में)"** submitted by me under the guidance and supervision of **Professor M. Shyam Rao** is a bonafide research work, which is also free from plagiarism. I also declare that it has not been submitted previously in part or in full to this University or any other University or Institution for the award of any degree or diploma.

I hereby agree that my thesis can be deposited in Shodhganga/INFLIBNET.

Date:

Signature of supervisor

Name: GOURANGA CHARAN ROUT

Signature of the student

Regd. No. 12HDPH01

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **"Hindi Aur Odiya kavita mein Dalit Chetana (Om Prakash Valmiki Aur Basudev Sunani ki Kavitaon ke Vishesh Sandarbh mein)" "हिन्दी और उड़िया कविता में दलित चेतना (ओमप्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी की कविताओं के विशेष संदर्भ में)"** submitted by **Gouranga Charan Rout** bearing Regd. No. **12HDPH01** in partial fulfillment of the requirements for the award of Doctor of Philosophy in **CENTRE FOR DALIT & ADIVASI STUDIES AND TRANSLATION** is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance.

This thesis is free from plagiarism and has not been submitted previously in part or in full to this or any other University or Institution for award of any degree or diploma.

Parts of this thesis have been:

A. Published Research Papers in the following publications:

1. Odiya Dalit Kavita ka Udbhav Aur Vikas (Shodh-Rityu, ISSN-2454-6283).
2. Basudev Sunani ki Kavitaon mein Dalit Shtree Jeevan (IJAAR, ISSN-2347-7075).

B. Research Paper Presented in the following Conferences:

1. 'Salam' Kahani Sangrah Mein Chitrit Jati Pratha (National), Dept.of Hindi (University of Hyderabad), 25-26 March, 2014.
2. Samakalin Dalit Kavita mein Tulnatmak Adhyayan Ka Mahatva (National), Dept. of Hindi (Sree Narayana College for Woman, Kollam), 24-25 February, 2023.

Further the student has passed the following courses towards fulfillment of course work requirement for Ph.D.

SN.	**Course code**	**Name**	**Credit**	**Result**
1	DS826	Research Methods and Critical Approaches	4	Pass
2	DS802	Sociology of Dalit Literature	4	Pass
3	DS827	Dalit and Adivasi Thought	4	Pass
4	DS828	Documenting of Dalit and Adivasi Oral literature (Project Work)	4	Pass

The student has also passed M.Phil. degree from this University. He Studied the following courses in this program.

SN.	Course Code	Name	Grade	Credit	Result
1	HH701	Research Methodology	B	4	Pass
2	HH702	Modern Thought	D	4	Pass
3	HH703	Sociology of Literature	B+	4	Pass
4	HH704	Aesthetics and Stylistics	B+	4	Pass
5	HH780	Dissertation	A	16	Pass

Therefore, the student has been exempted from repeating Research Methodology course (as recommended by the Research Advisory Committee) in his Ph.D. program.

Signature of the Supervisor

Head
Centre for Dalit & Adivasi Studies and Translation

Dean
School of Humanities

अनुक्रमणिका

हिन्दी और उड़िया कविता में दलित चेतना(ओमप्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी की कविताओं के विशेष संदर्भ में)

भूमिका **i-vi**

प्रथम अध्याय-हिन्दी और उड़िया दलित कविता का उद्भव और विकास **1-53**

1. प्रस्तावना

1.1 दलित शब्द की परिभाषा

1.2 दलित साहित्य की अवधारणा

1.3 हिन्दी में दलित साहित्य

1.4 हिन्दी दलित कविता का उद्भव

1.4.1 दलित कवियों के द्वारा लिखित दलित कविता

1.4.2 गैर दलित कवियों के द्वारा लिखित दलित कविता

1.5 उड़िया दलित कविता का उद्भव

1.5.1 उड़िया साहित्य में दलित

1.5.2 गैर दलित साहित्यकारों द्वारा रचित दलित साहित्य

1.5.3 दलित कवियों द्वारा लिखित दलित कविता

1.6 निष्कर्ष

द्वितीय अध्याय-ओमप्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी का व्यक्तित्व और रचना संसार 54-89

2. प्रस्तावना

2.1 ओमप्रकाश वाल्मीकि का व्यक्तित्व

2.1.1 जन्म-परिवार

2.1.2 शिक्षा

2.1.3 आजीविका

2.1.4 विवाह

2.1.5 रचना के प्रेरणा स्रोत

2.1.6 पुरस्कार

2.1.7 मृत्यु

2.2 ओमप्रकाश वाल्मीकि का कृतित्व

2.2.1 कविता-संग्रह

2.2.2 कहानी-संग्रह

2.2.3 आत्मकथा

2.2.4 आलोचनात्मक साहित्य

2.2.5 अनुवाद

2.2.6 पत्र-पत्रिकाएँ एवं संपादन

2.3 बासुदेव सुनानी का व्यक्तित्व

2.3.1 जन्म-परिवार

2.3.2 शिक्षा

2.3.3 आजीविका

2.3.4 विवाह

2.3.5 रचना के प्रेरणा स्रोत

2.3.6 पुरस्कार

2.4 बासुदेव सुनानी का कृतित्व

2.4.1 कविता-संग्रह

2.4.2 उपन्यास

2.4.3 आलोचनात्मक साहित्य

2.4.4 अनुवाद

2.4.5 पत्र-पत्रिकाएँ एवं संपादन

2.5 निष्कर्ष

तृतीय अध्याय-ओम प्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी की कविताओं का परिवेश 90-176

3. प्रस्तावना

3.1 ओम प्रकाश वाल्मीकि की कविताओं का परिवेश

3.1.1 सामाजिक परिवेश

3.1.2 आर्थिक परिवेश

3.1.3 धार्मिक परिवेश

3.1.4 राजनैतिक परिवेश

3.1.5 सांस्कृतिक परिवेश

3.1.6 दलित स्त्री जीवन

3.2 बासुदेव सुनानी की कविताओं का परिवेश

3.2.1 सामाजिक परिवेश

3.2.2 आर्थिक परिवेश

3.2.3 धार्मिक परिवेश

3.2.4 राजनैतिक परिवेश

3.2.5 सांस्कृतिक परिवेश

3.2.6 दलित स्त्री जीवन

3.3 निष्कर्ष

चतुर्थ अध्याय-ओम प्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी के कविताओं में दलित चेतना **177-211**

4. प्रस्तावना

4.1 चेतना की परिभाषा

4.2 दलित चेतना का स्वरूप

4.3 ओम प्रकाश वाल्मीकि की कविता में दलित चेतना

4.3.1 वर्ण व्यवस्था के प्रति क्षोभ

4.3.2 विद्रोह और आक्रोश की अभिव्यक्ति

4.3.3 आशावाद

4.4 बासुदेव सुनानी की कविता में दलित चेतना

4.4.1 वर्ण व्यवस्था के प्रति क्षोभ

4.4.2 विद्रोह और आक्रोश की अभिव्यक्ति

4.4.3 आशावाद

4.5 निष्कर्ष

पंचम अध्याय-ओम प्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी की कविताओं की भाषिक संरचना एवं शिल्प विधान **212-234**

5. प्रस्तावना

5.1 ओम प्रकाश वाल्मीकि की काव्य भाषा एवं शिल्प विधान

5.1.1 सामान्य बोलचाल की भाषा

5.1.2 विद्रोह तथा गाली-गलौज की भाषा

5.1.3 प्रतीक विधान

5.1.4 बिंव विधान

5.1.5 मिथक का प्रयोग

5.1.6 मुहावरों का प्रयोग

5.1.7 वर्णनात्मक शैली

5.1.8 आत्मकथात्मक शैली

5.1.9 प्रश्नार्थक शैली

5.2 बासुदेव सुनानी की काव्य भाषा एवं शिल्प विधान

5.2.1 सामान्य बोलचाल की भाषा

5.2.2 विद्रोह तथा गाली-गलौज की भाषा

5.2.3 प्रतीक विधान

5.2.4 बिम्ब विधान

5.2.5 मिथक का प्रयोग

5.2.6 वर्णनात्मक शैली

5.2.7 आत्मकथात्मक शैली

5.2.8 प्रश्नार्थक शैली

5.3 निष्कर्ष

उपसंहार **235-243**

संदर्भ ग्रंथ-सूची **244-251**

परिशिष्ट

- प्रकाशित शोध-आलेख-1
- प्रकाशित शोध-आलेख -2
- राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध-पत्र का प्रमाण पत्र-1
- राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध-पत्र का प्रमाण पत्र-2

भूमिका

साहित्य की अन्य विधाओं में कविता का स्थान विशिष्ट और प्रभावकारी है। समकालीन साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है कविता। समकालीन कविता आम आदमी की संवेदना और संघर्ष को समग्रता और सूक्ष्मता से रूपायित करती है। समाज या जीवन का हर पहलू आज कविता में गहनता से रूपायित होने लगा है।

समाज में होने वाले परिवर्तन एवं निरंतर विकास के साथ-साथ हिन्दी कविता की विकास यात्रा में भी विभिन्न परिवर्तन होने लगे। देश में सामाजिक एवं मानसिक बदलाव के कारण कविता में भी बदलाव आया है। बदलते समय के अनुरूप अनेक विचारधाराएँ, वाद और विमर्श साहित्य में आने लगे, जिससे कविताएँ अछूती नहीं रही । इन नयी-नयी विचारधाराओं और विमर्शों को कविता में उकेरने का कार्य बड़ी गहराई और शिद्दत के साथ हुआ है। हिन्दी कविता के अनेक उतार-चढ़ावों तथा आंदोलनों से अलग 'दलित-विमर्श' एक विशिष्ट धारा के रूप में सामने आया है। सातवें-आठवें दशक से प्रारम्भ हुआ दलित साहित्य आज एक विशिष्ट धारा के रूप में प्रसारित है। वर्तमान समय में हिन्दी दलित साहित्य की सबसे ओजस्वी और संबेदनशील विधा है कविता।

दलित साहित्य आज सभी भारतीय भाषाओं में एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक धारा बन चुका है। मराठी से प्रारंभ होकर यह दलित साहित्य हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को प्रभावित करता रहा। पंजाबी, कन्नड़, हिन्दी, तेलुगू, तामिल, उड़िया एवं गुजराती आदि कई भारतीय भाषाओं में आज दलित साहित्य बहु आयाम में लिखा जा रहा है। आज कंप्यूटरों का वैश्विक नेटवर्क एवं सामाजिक मीडिया जैसी सुविधाओं के जरिये हम विश्व की हर भाषा के साहित्य तक पहुँच पा रहे हैं। विश्व के हर प्रांत की संस्कृति और सभ्यता को जानने और समझने के लिए साहित्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अतः विभिन्न भाषाओं के साहित्य में अभिव्यक्त

विचारों, भावनाओं, संस्कृतियों आदि के सम-विषम तत्व को जानने समझने में तुलनात्मक अध्ययन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा भारतीय जन मानस को अधिकाधिक सटीक रूप में समझा जा सकता है और समृद्ध किया जा सकता है। इस शोध प्रबंध में हिन्दी दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि और उड़िया दलित साहित्यकार बासुदेव सुनानी की कविताओं में दलित विमर्श की चर्चा का विनीत प्रयास हो रहा है।

भारतीय समाज में दलित उत्पीड़न की करूण गाथा से कौन अपरिचित है। आजादी से लेकर आज तक दलितों के हालात में बहुत अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है। सदियों से दलित एक अमानवीय जीवन जीता आया है। अनेक दुःखों, कष्टों को झेलता आया है। दलित आज भी नारकीय जीवन जीने के लिए अभिशप्त है। इस समाज की अपने अस्तित्व और अस्मिता के लिए लड़ाई आज भी जारी है। दलितों का यही दर्द ओमप्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी जी के साहित्य में स्पष्ट दिखाई देता है। उन्होंने सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं दलित जीवन से जुड़े अनेक प्रश्नों एवं समस्याओं पर गहराई से विचार किया है। वाल्मीकिजी और सुनानीजी ने अपनी कविताओं के द्वारा दलित की समस्याओं के मूलभूत कारण और उससे मुक्ति का रास्ता दिखाकर दलितोद्धार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी दोनों ही दलित साहित्य को एक नयी दिशा देनेवाले समर्थ रचनाकर हैं । अपनी सशक्त लेखन क्षमता से दलित साहित्य को समृद्ध बनाने का अद्‌भुत प्रयास किया है। दोनों ने दलित जीवन को भोगा है इसलिए उनके साहित्य में दलित जीवन का नग्न यथार्थ प्रकट हुआ है। दोनों रचनाकारों ने अपनी रचनाओं में दलित जीवन संघर्षों को ही चित्रित नहीं किया, बल्कि सामाजिक विषमता एवं संरचना पर भी चोट की है। उन्होंने परंपरागत दक़ियानूसी ढाँचे को तोड़ते हुए समता मूलक समाज की संकल्पना पर ज़ोर दिया है।

वाल्मीकि और सुनानी जी की प्रत्येक रचना नये दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने में सक्षम रही है।

अध्ययन और विश्लेषण की दृष्टि से प्रस्तुत शोध-प्रबंध को भूमिका और उपसंहार के अतिरिक्त पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है।

प्रथम अध्याय **'हिन्दी और उड़िया दलित कविता का उद्भव और विकास'** है। इस अध्याय में दलित शब्द का अर्थ और परिभाषा, दलित साहित्य की अबधारणा, हिन्दी और उड़िया दलित साहित्य की उत्पति का संक्षिप्त परिचय देने के साथ-साथ हिन्दी एवं उड़िया दलित कविता का उद्भव तथा उसकी विकास यात्रा का चित्रण किया गया है। जिसके अंतर्गत दलित और गैर दलित कवियों के द्वारा रचित कविताओं का वर्णन किया गया है।

द्वितीय अध्याय **'ओमप्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी का व्यक्तित्व और रचना संसार'** है। प्रस्तुत अध्याय में दोनों आलोच्य कवियों के व्यक्तित्व एवं सृजन की एक झांकी प्रस्तुत की गयी है। जिसमें दोनों साहित्यकारों के जन्मस्थान, माता-पिता, उनका बचपन, शिक्षा-दीक्षा, गृहस्थ जीवन, आजीविका, प्राप्त उपाधियाँ, सम्मान एवं पुरस्कार आदि का परिचय दिया गया है। साथ ही दोनों के कृतित्व के विभिन्न आयामों का विवेचन किया गया है। वाल्मीकि और सुनानी के द्वारा रचित आत्मकथा, उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक, जीवनी, आलोचनात्मक साहित्य तथा पत्रकारिता में उनके योगदान आदि का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

तृतीय अध्याय **'ओमप्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी की कविताओं का परिवेश'** है। इस अध्याय को दो उप-अध्यायों में बाँटा गया है। प्रथम भाग में

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताओं का परिवेश पर विवेचन किया गया है। दूसरे उप-अध्याय में बासुदेव सुनानी की कविताओं के परिवेश का वर्णन किया गया है। इस उप-अध्याय को पुनःउपविभागों में बाँट कर दलितों के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, दलित स्त्री जीवन आदि पक्षों को देखा गया है। दोनों कवियों की कविताओं का संदर्भ लेते हुए सवर्णों का अमानवीय व्यवहार, छुआ-छूत की समस्या, दलित शोषण, उच्च वर्ग की रूढ़िवादी विचारधारा, आशिक्षा, बेरोजगार, स्त्रियों की दशा और यौन शोषण, धार्मिक संघर्ष, जैसे मुद्दों को प्रस्तुत किया गया है।

चतुर्थ अध्याय **'ओमप्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी की कविताओं में दलित-चेतना'** है । अध्ययन को स्पष्ट करने के उद्देश्य से प्रस्तुत अध्याय को चार मुख्य शीर्षकों और उपशीर्षकों में विभक्त कर विशद-विश्लेषण प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत अध्याय में चेतना शब्द का अर्थ एवं परिभाषा को स्पष्ट करते हुए दलित चेतना का स्वरूप और पृष्ठभूमि को विश्लेषित किया गया है। साथ में ओमप्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी की कविताओं में अभिव्यक्त दलित चेतना के विविध बिन्दुओं को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है।

पंचम् अध्याय **'ओमप्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी की कविताओं की भाषिक संरचना एवं शिल्प-विधान'** है । इस अध्याय में ओमप्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी की कविताओं की भाषा एवं शैली को लेकर विवेचन किया गया है। इसमें दोनों साहित्यकारों की प्रभावपूर्ण भाषा, कविता में प्रयुक्त शब्द भंडार, मुहावरों और कहावतों का प्रयोग, प्रतीक, बिम्ब, मिथकों का प्रयोग आदि सभी भाषागत प्रयोगों का विवरण एवं विवेचन किया गया है। इसके पश्चात शैली-विधान

संबंधी विवेचन है। दोनों कवियों ने अपनी कविताओं में वर्णनात्मक शैली, प्रश्नार्थक शैली, आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग किया है। प्रस्तुत अध्याय में इन सभी बिन्दुओं पर विस्तृत विवेचन किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध को पूर्ण करने के लिए आरंभ से लेकर अंत तक मुझे परम श्रद्धेय गुरुवर्य प्रो. एम्. श्याम राव जी का मार्ग दर्शन और निरंतर प्रेरणा मिलती रही। पारिवारिक और सामाजिक जिम्मेदारियों के प्रतिकूलताओं में मेरा यह शोध कार्य शायद ही पूर्ण हो पाता। यदि आदरणीय निर्देशक प्रो. एम्.श्याम राव जी का स्नेहपूर्ण हस्त मेरे सिर पर न होता। आपने जिस तरह से मेरा उत्साहवर्धन किया, मेरा मार्गदर्शन करते हुए शोध के पथ पर अग्रसरित किया उसके लिए मैं आपके प्रति सहृदय से आभार व्यक्त करता हूँ ।

हिन्दी विभाग और दलित-आदिवासी अध्ययन एवं अनुवाद केन्द्र के सभी प्राध्यापकगणों के प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने प्रत्यक्ष-अपत्यक्ष रूप से मेरी सहायता की है। विशेषतः प्रो. वी. कृष्णा, प्रो. सर्राजू, डॉ. भीम सिंह, डॉ. आत्माराम, प्रो. अनजेनेयूलु जी के प्रति मैं विशेष आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने मुझे अनेक सुझाव देकर मेरी सहायता की है। दलित-आदिवासी अध्ययन एवं अनुवाद केन्द्र के अध्यक्ष प्रो, विष्णु सरवदे सर के प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने मेरे शोध कार्य को सम्पन्न करने की सहायता की है । स्त्री अध्ययन केन्द्र के प्रो. दीपा श्रीनिवास जी के प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने उड़िया भाषा संबंधि त्रृटियों को सुधार कर विषय को समझने का   प्रत्यक्ष- व परोक्ष रूप से मेरी सहायता करती रही। उनकी सहायता मेरे शोध कार्य के लिए बड़ी मूल्यवान रही है।

स्व. प्रो. सुभाष चन्द्र कुमार और उनकी पत्नी शान्ती कुमारी मैडम के प्रति मैं विशेष आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने मुझे हर तरह की मदद की हैं । हैदराबाद विश्वविद्यालय में मेरे सारे मित्रों डॉ.नरेन्द्र, डॉ.दिबाकर, सुभाष, डॉ.सुरेश

जगन्नाथम्, रेखा, अभय, डॉ.रमेश, डॉ.सुनील केरकेटा, डॉ.राजीव राही, डॉ. डंबरुधर, डॉ.शुब्र, प्रो. तपन सिंह, डॉ. रजीत आदि के प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने मुझे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से सहायता की है

इस कार्य को सफल बनाने के लिए सबसे जरूरी था मेरे परिवार जनों विशेष रूप से मेरे दोनों बड़े भाई और माता-पिता का आशीर्वाद। उन्होंने मेरा मनोबल बढ़ाया और मुझे इस काबिल बनाया कि मैं निश्छल और निडर होकर अपने कार्य में सफल हो सकूँ। उनकी प्रेरणा और आशीर्वाद सदैव मेरे साथ रहे। मैं उनका सहस्र ऋणी हूँ। मेरी पत्नी रश्मि ने मेरे शोध कार्य के प्रति न केवल आत्मीयता दिखायी बल्कि समय-समय पर शोध कार्य के प्रति मेरा उत्साह बढ़ाया और सहयोग किया। पुत्र रियांश के सहयोग से ही मैं इस शोध कार्य के लिए पर्याप्त समय निकाल पाया। अंततः मैं अपने परिवार के सभी सदस्यों के प्रति आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे इस स्तर की शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य प्रदान किया ।

इस शोध प्रबंध लिखने में सहायता और प्रोत्साहन करनेवाले अग्रज शोधार्थियों एवं मेरे अनुज तथा मित्रों के प्रति आभारी हूँ। अंत में उन सभी लेखकों, विद्वानों और सुधीजनों का आभारी हूँ, जिनकी पुस्तकों की सहायता के बिना यह शोध प्रबंध सम्पन्न नहीं हो पाता।

विनीत

गौरांग चरण राउत

प्रथम अध्याय

हिन्दी और उड़िया दलित कविता का उद्भव और विकास

1.प्रस्तावना

1.1 दलित शब्द की परिभाषा

1.2 दलित साहित्य की अवधारणा

1.3 हिन्दी में दलित साहित्य

1.4 हिन्दी दलित कविता का उद्भव

1.4.1 दलित कवियों के द्वारा लिखित दलित कविता

1.4.2 गैर दलित कवियों के द्वारा लिखित दलित कविता

1.5 उड़िया दलित कविता का उद्भव

1.5.1 उड़िया साहित्य में दलित

1.5.2 गैर दलित साहित्यकारों द्वारा रचित उड़िया दलित साहित्य

1.5.3 दलित कवियों द्वारा लिखित दलित कविता

1.6 निष्कर्ष

प्रथम अध्याय

हिन्दी और उड़िया दलित कविता का उद्भव और विकास

1. प्रस्तावना

सदियों से जिसे अछूत, अतिशूद्र, अंत्यज, चांडाल, अवर्ण, पंचम तथा हरिजन आदि नामों से विहित करके घृणा और दया का पात्र बना दिया गया था, वही आज इन सारी शब्दावलियों और विशेषणों को ठुकरा कर स्वंय दलित के रूप में अपनी अस्मिता का बोध करा रहा है। साहित्य, समाज और राजनीति तीनों ही स्तरों पर जबरदस्त दस्तक दे रहा है। अपने अधिकारों के लिए स्वंय संघर्ष कर रहा है।

पिछले कुछ समय से दलित वर्ग में जो सामाजिक चेतना आयी है, उसकी साहित्यिक अभिव्यक्ति दलित लेखन है। हिन्दी साहित्य में भी दलितों ने अपनी जबरदस्त उपस्थिति दर्ज करायी है। हिन्दी में दलित लेखन की चर्चा मराठी से आयी है। महाराष्ट्र में सन् 1974 में 'दलित पेंथर' नामक आन्दोलन चला जिसका आदर्श 'ब्लैक पेंथर' आन्दोलन था। साहित्य के क्षेत्र में यह आन्दोलन एक विस्फोट के रूप में आया। हिन्दी दलित साहित्य उसी आन्दोलन की उपज है। हिन्दी के मुख्यधारा के साहित्य एवं उसके सौंदर्यशास्त्र को दलित साहित्य ने नकारना शुरु कर दिया है।

बीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों में हिन्दी कविता में जो महत्वपूर्ण मोड़ मिलते हैं उनमें से एख प्रमुख मोड़ है हिन्दी दलित कविता। हिन्दी में अनेक कवि हुए जिन्होंने दलित कविता को विकसित करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। अब हिन्दी दलित कविता अपनी पहचान बना चुकी है। यह कविता परंपरा से दबाये गये स्वर को वाणी दे रही है। भारतीय समाज की विषम व्यवस्था और दोगली मानसिकता पर प्रश्नचिह्न लगा रही है।

मराठी और हिन्दी आदि अनेक भारतीय भाषाओं में लिखित साहित्य के प्रभाव से उड़िया दलित साहित्य ने भी अपनी एक अलग जगह बनाई है। आज उड़िया में दलित

कविता भी बहुत मात्रा में लिखी जा रही है। उड़िया दलित कविता को विकास के पथ पर अग्रसर करने में उड़िया दलित कवियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

हिन्दी और उड़िया दोनों भाषाओं में गैर दलित साहित्यकारों ने भी दलितों के जीवन को केन्द्र में रखकर अनेक कविताएँ लिखी हैं। इन कविताओं के माध्यम से दलित समाज की सच्चाई को सामने रखा है। हालांकि उनकी रचनाओं में स्वानुभूति का वर्णन नहीं है। वे सिर्फ सहानुभूति और करूणा से दलित जीवन को दर्शाएँ हैं। दलितों द्वारा भोगा हुआ यथार्थ दलितों के बारे में लिखने वाले गैर दलित लेखकों के पास नहीं है। अतः दलित लेखकों की कविताओं में दलितों के मन की पीड़ा, यातना, बेचैनी, सामाजिक अपमान, संघर्षशीलता अधिक तीखे व प्रामाणिक ढंग से व्यक्त हुए हैं।

जीवन से जूझने, ज़िंदा रहने, पीड़ा सहने और उससे उभरने की दशा-दिशा ने दलित कविता को जन्म दिया है। दलित कविता का लक्ष्य है अपने समाज को पराधीनता की उन परंपराओं से मुक्ति दिलाना, जिसने उन्हें सदियों से भारतीय समाज की मुख्य धारा में अस्पृश्य और कमजोर बनाए रखा है। यह परंपरा है वर्णवाद तथा जातिवाद जो भारतीय सामाजिक व्यवस्था में उनका निम्नतम स्थान तय कर देती है। तमाम धर्मग्रंथ व स्मृतियाँ भी इसका समर्थन करती हैं। हिन्दी और उड़िया की प्रमुख दलित कविताएँ इसी अस्पृश्यता तथा उनके साथ हो रहे अमानवीय व्यवहार को बड़ी मार्मिकता से व्यक्त करती हैं। साथ में इस व्यवहार के विरूद्ध आवाज भी उठाती हैं। इन कविता संग्रहों की विशेषता यह है कि इनमें दलित होने का, गुलाम होने का एहसास है साथ में उस एहसास से मुक्ति की छटपटाहट भी है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के इस अध्याय में हिन्दी और उड़िया दलित कविता की जमीन और विकास क्रम को दर्शाते हुए गैर दलित और दलित साहित्यकारों द्वारा रचित

कविताओं के बारे में चर्चा करते हुए इन दलित कविताओं के महत्व का विशद वर्णन किया गया है।

1.1 दलित शब्द की परिभाषा

दलित कविता पर विचार करने से पूर्व हमें 'दलित' शब्द का अर्थ क्या है? दलित किसे कहते हैं? तथा दलित साहित्य की परिभाषा को स्पष्ट करना होगा।

भारतीय हिन्दू समाज में दबी-कुचली, शोषित-उत्पीड़ित तथा वर्ण व्यवस्था से बहिष्कृत जातियों के लिए दलित शब्द का प्रयोग किया जाता है। अतः दलित वह है जिसको दबाया, कुचला गया है, दलन किया गया है। सामान्य अधिकारों से वंचित एवं उपेक्षित किया गया है। समाज में कई वर्षों से मानवीय अधिकारों से वंचित रखा गया है। दलित वह है जो किसी के द्वारा अपमानित, पीड़ित, दंडित, उपेक्षित, दबाया तथा शोषित किया गया हो, अर्थात इसमें स्त्रियाँ, शूद्र वर्ग में आने वाले पिछड़ी जातियाँ एवं वे वर्ग हैं जो दलितों की तरह शिक्षा, अधिकार एवं संपत्ति अर्जित करने से वंचित कर दिये गये हैं। इस शब्द का प्रयोग लगभग सवा सौ सालों से हो रहा है। प्राचीन समय में दलित के लिए अवर्ण, अस्पृश्य, पंचम वर्ण, हरिजन, अंत्यज, शूद्र, चांडाल आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता था। सर्वप्रथम अंग्रेजों ने दलितों के लिए 'डिप्रेस्डक्लास' शब्द का प्रयोग किया था। इसके पश्चात समाज सुधारक ज्योतिबा फूले ने इनको 'अतिशूद्र' की संज्ञा दी और डॉ. अंबेडकर ने अछूत (untouchable) संज्ञा का प्रयोग किया। महात्मा गांधी ने इन सबसे अलग 'हरिजन' नाम से दलितों को संबोधित किया। तत्पश्चात भारत के संविधान में 'अनुसूचित जाति'(Scheduled Caste) शब्द का प्रयोग किया गया। सन् 1984 में कांशीराम ने 'दलित बहुजन' की

संज्ञा दी। शूद्र और अस्पृश्य शब्द प्रताड़ना के सूचक हैं जबकि 'दलित' निम्न जातियों के सशक्तिकरण का प्रतीक बन कर उभरा है और दलितों ने स्वयं सर्वसम्मति से अपने लिए दलित शब्द को स्वीकार किया है। दलित शब्द की व्युत्पति संस्कृत धातु 'दल' से हुई है जिसका अर्थ है तोड़ कर बाहर निकालना, टुकड़े-टुकड़े करना, पीसना, दलन आदि। इस विषय में विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ दी हैं। चिंतकों ने अपने अपने ढ़ंग से 'दलित' शब्द को परिभाषित किया है।

प्रमुख लेखकों के अनुसार दलित शब्द की परिभाषा हम इस प्रकार देख सकते हैं। डॉ.राजेन्द्र यादव के अनुसार- " दलित की श्रेणी में स्त्री, पिछ्ड़ी जाति एवं दलित वर्ग के लोग आते हैं।"[1] अर्थात जिसको सहज भाव से शोषित किया जा सकता है। प्रसिद्ध मराठी एवं दलित लेखक नारायण सुर्वे दलित शब्द की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि "केवल बौद्ध एवं पिछ्ड़ी जातियाँ ही नहीं समाज में जो भी पीड़ित हैं, वे दलित ही हैं। ईश्वर निष्ठा या शोषण निष्ठा जैसे बंधनों से आदमी को मुक्त रहना चाहिए। उसका स्वतंत्र अस्तित्व सहज स्वीकार किया जाना चाहिए। उसके सामाजिक अस्तित्व की धारणा, समता, स्वतंत्रता और विश्व बंधुत्व के प्रति निष्ठा निर्धारित होनी चाहिए।[2]" मोहनदास नैमिशराय दलित शब्द की व्यापकता को चित्रित करते हुए लिखते हैं कि "दलित शब्द मार्क्स प्रणीत सर्वहारा शब्द के लिए समानार्थी लगता है। लेकिन इन दोनों में पर्याप्त भेद भी है। दलित की व्यक्ति अधिक है, तो सर्वहारा की सीमित। दलित के अंतर्गत सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक शोषण का अंतर्भाव होता है, तो सर्वहारा केवल आर्थिक शोषण तक ही सीमित है, लेकिन प्रत्येक सर्वहारा को दलित कहने के लिए बाध्य नहीं हो सकते... अर्थात सर्वहारा की सीमाओं में

[1] हंस, राजेन्द्र यादव, अगस्त, 2004, पृ.सं. 4

[2] दलित विमर्श के विविध आयाम- डॉ.वीरेन्द्र सिंह यादव, पृ. सं. 3

आर्थिक विषमता का शिकार वर्ग आता है, जबकि दलित विशेष तौर से सामाजिक विषमता का शिकार होता है।"[3]

प्रसिद्ध दलित लेखक, कवि, कथाकार तथा चिंतक-आलोचक ओमप्रकाश वाल्मीकि के अनुसार- "दलित शब्द व्यापक अर्थबोध की अभिव्यंजना देता है, भारतीय समाज में जिसे अस्पृश्य माना गया है वह व्यक्ति ही दलित है। दुर्गम पहाड़ों, वनों जातियाँ सभी इसी दायरे में आती हैं। सभी वर्गों की स्त्रियां दलित हैं। बहुत कम श्रम-मूल्य पर चौबीसों घंटे काम करने वाले श्रमिक, बंधुआ मज़दूर दलित की श्रेणी में आते हैं।"[4]

दलित चिंतक कंवल भारती के अनुसार "दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया है। जिसे कठोर और गंदे कार्य करने के लिए बाध्य किया गया है। जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतंत्र व्यवसाय करने से मना किया गया और जिस पर सछूतों ने सामाजिक निर्योग्यताओं की संहिता लागू की वही और वही दलित है। और इसके अंतर्गत वही जातियाँ आती हैं, जिन्हें अनुसूचित जातियाँ कहा जाता है।"[5] दलित शब्द को संविधान से जोड़ते हुए श्यौराज सिंह बेचैन कहते हैं कि "दलित वह है जिसे भारतीय संविधान ने अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है।"[6] इसी प्रकार माता प्रसाद दलित शब्द की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि "दलित शब्द का अर्थ बड़ा व्यापक है। इसमें दबाये गये, अपमानित, पीड़ित उपेक्षित, शोषित सभी आते हैं। इसमें स्त्रियों और शूद्र वर्ग में आनेवाली पिछड़ी जातियाँ और अति पिछड़ी जातियाँ भी है जो दलितों की भांति शिक्षा, संपत्ति एकत्र करने से वंचित हैं और अपमानजनक

---

[3] दलित विमर्श के विविध आयाम, डॉ.वीरेन्द्र सिंह यादव, पृ. सं. 3

[4] दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 14

[5] दलित विमर्श के विविध आयाम, डॉ.वीरेन्द्र सिंह यादव, पृ. सं. 3

[6] वही, पृ. सं. 3

जीवन जीने को विवश हैं।"[7] बाबूराम बागुल का मानना हैं कि "दलित विशेषण एक सम्यक क्रांति का नाम है जो कि क्रांति का साक्षात्कार है।"[8]

दलित शब्द की परिभाषा को मनुष्यता से जोड़ते हुए डॉ.धर्मवीर का मानना है कि- "दलित एक मनुष्य पैदा होता है । मनुष्य एक संभावना है। हर दलित व्यक्ति मनुष्य की संभावनाओं से भरपूर पैदा होता है, वे लोग मनुष्य के दुश्मन कहे जायेंगे जो मनुष्य की संभावनाओं पर किसी भी रूप में रोक लगाते हैं। दूसरी तरफ से, इस चिंतन से इतना और कहने की जरूरत है कि मनुष्य केवल हिन्दू नहीं है अर्थात दलित भी मनुष्य है।"[9]

उपरोक्त परिभाषाओं से यह मालूम होता है कि दलित शब्द का प्रयोग सामाजिक स्तर में सबसे निचले स्तर के लोगों के लिए प्रयोग में लाये जाने वाले शब्द है। समाज में मुख्य तबका जिसको हेय, अछूत तथा अंत्यज की श्रेणी में रखता है। जिन्हें वर्ण से विहीन तथा अधिकार से वंचित रखा गया है। वर्ण व्यवस्था के बाहर का समाज, जो हाशिये पर अवस्थित हैं, मूलतः दलित समाज है।

1.2 दलित साहित्य की अवधारणा

दलित शब्द की अर्थ विस्तार के परिचय के पश्चात दलित साहित्य पर विचार-विश्लेषण अपेक्षित है। समाज के सबसे निम्न स्तर पर जीवन यापन करने के लिए विवश कर दिये गये, उपेक्षित, प्रताड़ित, विशाल जनसमूह व्यथाओं और वेदनाओं आदि को लेकर लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य है। दलित जीवन के यथार्थ को चित्रित करते हुए उनकी चेतना तथा विद्रोह को भी रेखांकित किया गया है। दलित साहित्य समष्टि का साहित्य है यहाँ निजता से ज्यादा सामाजिकता को महत्ता दी

---

[7] दलित साहित्य दशा एवं दिशा- माता प्रसाद, पृ. सं. 4

[8] दलित विमर्श के विविध आयाम- डॉ.वीरेन्द्र सिंह यादव, पृ. सं. 4

[9] दलित साहित्य दशा एवं दिशा- माता प्रसाद, पृ. सं. 73

जाती है । यहाँ मनुष्य सर्वोपरि है। मनुष्य की महत्ता, उसके अधिकार तथा स्वाभिमान की रक्षा के लिए संघर्षरत लेखकों द्वारा रचित साहित्य ही दलित साहित्य है। दलित साहित्य किसको कहेंगे ? इस पर अनेक वाद-विवाद चलता रहता है। कई विद्वानों, रचनाकारों और आलोचकों का मानना है कि दलित साहित्य और दलित साहित्यकारों के दो वर्ग हैं। एक वर्ग वह है जो दलित समुदाय से आया है जिसने स्वयं सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक क्रूरताओं और अस्पृश्यताओं के दंश को झेला है। दूसरा वर्ग उन दलितेतर जातियों का है जिन्होंने स्वयं अस्पृश्यता को नहीं झेला बल्कि करीब से देखा है। इस तरह दलित साहित्य लेखन को दो भागों में बांट कर देखा गया है। एक- गैर दलित साहित्यकारों द्वारा लिखा गया दलित साहित्य। दूसरा- स्वयं दलितों द्वारा लिखा गया दलित साहित्य। अनेक विद्वानों ने अपने- अपने तरीके से दलित साहित्य को परिभाषित करने की कोशिश की है। यहाँ पर कुछ प्रमुख विद्वानों द्वारा दिये गये दलित साहित्य के अर्थ एवं परिभाषाओं को प्रस्तुत किया गया है। जो इस प्रकार है। कँवल भारती का यह मानना हैं कि- "हिन्दी दलित साहित्य वह है, जो दलित मुक्ति के सवालों पर पूरी तरह अंबेडकरवादी है। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में उसके सरोकार वे ही हैं, जो अंबेडकर के थे। दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है, जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रुपायित किया है। अपने जीवन-संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनकी उसी अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला का नहीं, बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है। इसलिए कहना न होगा कि वास्तव में दलितों के द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य की कोटि में आता है।"[10] इस क्रम को आगे बढ़ाते हुए डॉ. धर्मवीर का कहना है कि " वास्तव में दलित साहित्य की सच्ची और पूरी परिभाषा यह है कि यह वह साहित्य है जो दलित जाति में जन्म हुआ

---

[10] दलित साहित्य का समाजशास्त्र, डॉ. हरिनारायण ठाकुर, पृ.सं. 56

एक साहित्यकार अच्छा या बुरा साहित्य लिखता है। दलित साहित्य का नायक और खलनायक भी दलित होता है क्योंकि वे अपनी जिंदगी जीते हैं।" [11]

उपरोक्त कथन का खंडन करते हुए काशीनाथ सिंह कहते हैं कि "दलितों पर लिखने के लिए दलित होना जरूरी नहीं है, जरूरी है कि दलितों की पीड़ा पर लिखा जाए।"[12] प्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह का मानना हैं कि "कोई लेखक दलित कुल में जन्म लेने से दलित चेतना का संवाहक नहीं हो जाता। उसके लिए जाति का होना जरूरी नहीं है।"[13]

ऐसे ही कुछ विद्वानों का मानना है कि घोड़े पर लिखने के लिए घोड़ा होना जरूरी नहीं हैं। पर दलित लेखक इस तर्क से सहमत नहीं है। डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन का मानना है कि "इससे साहित्य की सही स्थिति सामने नहीं आती। दलित साहित्य उन अछूतों का साहित्य है, जिन्हें सामाजिक स्तर पर सम्मान नहीं मिला। सामाजिक स्तर पर जाति भेद के जो लोग शिकार हुए हैं, उनकी छटपटाहट ही शब्दबद्ध होकर दलित साहित्य बन रही है।"[14] इसी बात को आगे बढ़ाते हुए शिवकुमार मिश्र कहते हैं कि "दलित साहित्य की संज्ञा उसी साहित्य को दी जाएगी जो जन्मना दलित रचनाकार द्वारा रचा गया हो, उस लेखन को नहीं जो भले ही दलित जीवन संदर्भों से जुड़ा लेखन हो, परंतु जिसके लेखक गैर दलित हो।"[15] परंतु राजकुमार सैनी का मानना है "मेरा अभिमत है कि दलित चेतना का साहित्य लिखने के लिए दलित होना जरूरी नहीं है। साहित्य का संबंध संवेदना से है। दलित जाति का व्यक्ति भी व्यवस्था में

[11] हिन्दी दलित कथा-साहित्य : अवधारणाएँ और विधाएँ, डॉ. रजत रानी 'मीनू', पृ. सं. 18

[12] वह' , पृ. सं. 18

[13] दलित विमर्श के विविध आयाम, डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव, पृ. सं. 113

[14] दलित साहित्य का समाजशास्त्र, डॉ. हरिनारायण ठाकुर, पृ.सं. 58

[15] वही, पृ. सं. 65

बिकाऊ माल की तरह संवेदनशून्य हो सकता है। दूसरी ओर निराला जैसे महा कवि हुए हैं, जिन्होंने हिन्दी कविता में पहली बार दलित शब्द का प्रयोग किया।"[16] इस बात का विरोध करते हुए मराठी दलित लेखक डॉ. शरण कुमार लिंबाले कहते हैं कि "गैर दलितों के लेखन में सहानुभूति और दया की दृष्टि होती है। हमें सहानुभूति और दया नहीं चाहिए, हमें अधिकार चाहिए। हमें मानवतावादी उदार दृष्टिकोण से नफरत है। यह दृष्टिकोण हमारे सदियों के संताप को नज़रअंदाज करता है। हमें यह गैर दलित सफेदपोश गुंडा लगता है। गैर दलितों के साहित्य को दलित साहित्य कहना साहित्यिक व सांस्कृतिक छल और हेराफेरी है। यह बात मैं गैर दलितों के संदर्भ में कह रहा हूँ।"[17]

दलित साहित्य के फलक को विस्तार देते हुए डॉ. सी.बी भारती का कहना है कि "दलित साहित्य नव युग का एक व्यापक वैज्ञानिक व यथार्थपरक संवेदनशील साहित्यिक हस्तक्षेप है। जो कुछ भी तर्कसंगत, वैज्ञानिक, परंपराओं के पूर्वाग्रहों से मुक्त साहित्य सृजन है, उसे हम दलित साहित्य के नाम से संज्ञायित करते हैं।"[18] बाबू राव बागूल के अनुसार "मनुष्य के मुक्ति को स्वीकार करने वाला मनुष्य को महान मानने वाला, वंश, वर्ण और जाति श्रेष्ठत्व का प्रबल विरोध करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है।"[19]

इस प्रकार उपर्युक्त दलित साहित्य का अर्थ एवं परिभाषाओं को देखने के पश्चात दलित साहित्य की जो अवधारणा हमारे सामने आती है वह हमें दो रूपों में देखने को मिलती है। एक तो वह है कि जो स्वयं दलित समाज से है और दलितों की व्यथा-कथा

[16] दलित साहित्य का समाजशास्त्र, डॉ. हरिनारायण ठाकुर, पृ. सं. 65
[17] हिन्दी दलित कथा-साहित्य : अवधारणाएँ और विधाएँ, डॉ. रजत रानी 'मीनू', पृ. सं. 19
[18] दलित साहित्य का समाजशास्त्र, डॉ. हरिनारायण ठाकुर, पृ.सं. 57
[19] दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, ओम प्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 16

को साहित्य में प्रकट करता है जो स्वानुभूति का साहित्य लिखता है। और इस साहित्य के लेखक वर्ग का दूसरा वर्ग है जो जन्मतः सवर्ण है किंतु उसका अनुभव, उसका लेखन, उसकी सोच निम्न वर्ग के प्रति है। अतः जो सहानुभूति का साहित्य लिखता है। इसलिए दोनों में बहुत अंतर है।

उपरोक्त मंतव्य से स्पष्ट होता है कि दलित साहित्य की रचना केवल दलित ही कर सकता है। गैर दलित केवल सहयोगी साहित्य लिख सकते हैं। अर्थात दलित साहित्यकार स्वानुभूति का साहित्य लिखता है और गैर दलित साहित्यकार सहानुभूति का साहित्य लिखता है। इसलिए दोनों में बहुत अंतर है।

दोनों पक्षों के अपने-अपने तर्क एवं अवधारणाएँ हैं। परंतु एक बात स्पष्ट है कि आज दलित साहित्य ने अपनी पहचान स्थापित कर ली है। अपनी प्रगति की दिशा में दिनों दिन अग्रसरित होता हुआ दिखाई दे रहा है। इसके लेखन में दलित साहित्य का तथा गैर दलित साहित्यकार सभी एकजुट होकर इसका मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। दलित साहित्य के माध्यम से आज दलित अपनी अस्मिता को पहचानने का भरसक प्रयास कर रहा है।

दलित जीवन की समस्याओं के बारे में चाहे दलित लेखक लिखे, चाहे गैर दलित लेखक लिखे पर दलित साहित्य का केन्द्र बिंदु मनुष्य है, अर्थात मनुष्य का उत्थान ही दलित साहित्य का प्रयोजन है। वर्णविहीन समाज की कल्पना, स्वतंत्रता, समता एवं बंधुत्व के भावों की अभिव्यक्ति आदि दलित साहित्य की खूबियाँ हैं। वर्ण व्यवस्था से उपजे जातिवाद का विरोध और मानवता की स्थापना इस का महान उद्धेश्य है। महात्मा ज्योतिबा फुले, डॉ. अंबेडकर एवं साहु महाराज के विचार चिंतन दलित साहित्य की प्रेरणा के स्रोत हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि के शब्दों में "वर्ण व्यवस्था से उपजी घोर अमानवीय, स्वतंत्रता-समता विरोधी सामाजिक अलगाव की पक्षधर

सोच को परिवर्तित कर बदलाव की प्रक्रिया को तेज करना दलित साहित्य की मुलभूत संवेदना हैं।"[20]

दलित साहित्य सभी प्रकार के वर्ण व्यवस्था, जाति-पाति, ऊँच-नीच, भेदभाव के दायरे से ऊपर है और भाग्य, भगवान, धर्म, कर्म के सिद्धांत को नकारता है। यह जातिगत पीड़ा एवं दुख से मुक्ति का साहित्य है। दलित साहित्य इन्सान को इन्सान से तोड़ने का नहीं बल्कि जोड़ने का काम करता है। वह मानव के प्रति भेद भाव, तिरस्कार, अलगाव, घृणा पैदा नहीं करता अपितु उनमें प्रेम, सहिष्णुता, भातृभाव पैदा करता है। यहाँ दलित अस्मिता की तलाश और मानवीय मूल्यों की पक्षधरता को सर्वोपरि माना गया है। दलित साहित्य दलितों की गुलामी का या उन पर हो रहे शोषण का एहसास कराता है। जिसके फलस्वरुप आज दलित वर्ग अपने शोषण के खिलाफ आवाज उठा रहा है।

1.3 हिन्दी में दलित साहित्य

डॉ. अंबेडकर के मुक्ति आन्दोलन ने दलितों में एक नई चेतना पैदा की। परिणाम स्वरूप दलित साहित्य की रचनात्मकता का उदय हुआ। दलित साहित्य का प्रारंभ मुख्य रुप से मराठी साहित्य से हुआ। हिन्दी में दलित साहित्य की शुरूआत हीरा डोम की कविता 'अछूत की शिकायत' से मानी जाती है। धीरे-धीरे दलित साहित्य भारत की तमाम भाषाओं में अपना स्थान बनाते हुए हिन्दी साहित्य में भी अपना विशाल आकार ग्रहण कर लिया। परंतु हिन्दी में दलित साहित्य का उदय लगभग 1990 के दशक के बाद सामने आता है। मराठी साहित्य से प्रभावित होकर हिन्दी साहित्य के रचनाकार दलित साहित्य को समृद्ध करने में अपना पूर्ण योगदान दिये हैं। दलित रचनाकारों में ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिषराय, जय प्रकाश कर्दम, श्यौराज सिंह बेचैन, सूरजपाल चौहान, डॉ. एन. सिंह, रजनी तिलक,

[20] दलित साहित्य का समाजशास्त्र, डॉ. हरिनारायण ठाकुर, पृ.सं. 58

सुशीला टाकभौरे, कँवल भारती आदि का नाम उल्लेखनीय है। राजेन्द्र यादव, महीप सिंह तथा कमलेश्वर जैसे लेखकों ने इसका समर्थन कर हिन्दी साहित्य को आगे बढ़ाया। अतः हिन्दी साहित्य में भी दलित साहित्य का प्रभाव जोर से चलने लगा।

हिन्दी में अनेक गैर दलित साहित्यकारों ने दलितों की संवेदना पर उपन्यास, कहानी एवं कविताएँ लिखी हैं। गैर दलित रचनाकारों में मुंशी प्रेमचंद, महाकवि निराला, राहुल सांस्कृत्यान, बाबा नागार्जुन, मुक्तिबोध, फणीश्वरनाथ रेणु, आधुनिक काल में शिव कुमार मिश्र, रमणिका गुप्ता, डॉ. रामदरश मिश्र आदि तमाम कवियों एवं रचनाकारों ने दलित साहित्य को संमृद्ध किया है परंतु कुछ अपवादों को छोड़ कर हिन्दी के गैर दलित लेखकों ने केवल दलित समाज की छवि को ही अपनी रचनाओं का विषय बनाया है। किसी ने भी गंभीरता से दलितों की समस्याओं को लेकर लेखन नहीं किया। समाज में वर्ण व्यवस्था से उपजी जाति प्रथा के समूल विनाश के लिए किसी ने कोशिश नहीं की। इस गैर दलित लेखकों ने कथाओं के माध्यम से दलित समाज के सच्चाई को सामने रखा परंतु उससे उस आक्रोश तथा विद्रोह के दर्शन नहीं होते जो कि दलित लेखकों में पाये जाते हैं। गैर दलित साहित्यकारों ने दलित जीवन का चित्र तो खिंचा पर उसमें कल्पना और कला का समावेश अधिक था, यथार्थता कम। इस कमी को पूरा करने के लिए दलित लेखक आगे आये और उन्होंने स्वानुभूति के बल पर साहित्य में दलितों की पीड़ा और सरोकारों को उजागर किया।

दलित साहित्य की शुरूआत हिन्दी साहित्य के मुख्यधारा के साहित्यकारों द्वारा नहीं की गयी थी बल्कि जाति व्यवस्था एवं छुआछूत के शिकार दलित लोगों ने अपने अनुभव, एहसास, प्रतिक्रिया एवं विद्रोह को दर्शाने के लिए एक माध्यम के रुप में प्रारंभ की। इन साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से अपनी व्यथा-कथाओं के साथ-साथ दलितों को अन्याय के खिलाफ लड़ने की प्रेरणा दी। दलित जीवन की सार्थक अभिव्यक्ति दलित साहित्यकारों द्वारा रचित साहित्य में देखी जा सकती है।

पारंपरिक साहित्य से अलग हटकर अपने वर्ग की अस्मिता को लेकर दलित वर्ग के साहित्यकारों ने लेखन किया और अपने वर्ग की यातनाओं और संवेदनाओं पर लिखना शुरू कर दिया है। आज दलित साहित्यकारों का साहित्य दलित समाज पर होने वाले अत्याचार, दलितों के अंदर से हीन मानसिकता को निकालने, व्यवस्था परिवर्तन के लिए और अस्मिता बचाने के लिए संघर्ष जैसे विषयों की अभिव्यक्ति करने में सफल रहा है। ईश्वर, कर्मकांड आदि ढ़कोसलों की बात इस साहित्य में नहीं हैं। एक नये समाज के निर्माण के लिए दलित साहित्यकार तत्पर है। अंबेडकर चिंतन की स्थापना ही दलित साहित्य की मुख्य अवधारणा है। उनके चिंतन को ही धेय मानकर दलित साहित्यकार समाज में एक वर्ण एवं वर्ग विहीन समाज की स्थापना के लिए रचना करने लगे। मोहनदास नैमिशराय के शब्दों में “बाबा साहेब डॉ.अंबेडकर दलित साहित्यकारों के हमेशा प्रेरणाश्रोत रहेंगे और उनका चिंतन जिस पर दलित साहित्य की भित्ति खड़ी है, असमानता एवं वर्ण व्यवस्था का निरंतर संहारक रहेगा, जिसका समापन वर्ण विहीन व जाति विहीन समाज रहना ही है।”[21] दलित लेखक अपने भोगे हुए यथार्थ को ही साहित्य के माध्यम से पाठक के सामने प्रस्तुत किये। सुशीला टाकभौरे के शब्दों में “अन्याय के विरूद्ध लिखी गई अभिव्यक्ति चाहे वह कविता हो, कहानी हो, उपन्यास हो, एंकाकी हो, नाटक हो, अनुभव कथन या संस्मरण-आत्मचिंतन और समाज चिंतन के बाद ही वह अपनी इन भावनाओं को इस रूप में व्यक्त कर सका है। उसकी इन लिखित भावनाओं को ही दलित साहित्य के रुप में पढ़ा और समझा जा रहा है।”[22]

आज हिन्दी दलित साहित्य विविध स्वरुप में प्रकट हो रहा है, विकसित हो रहा है और पनप रहा है। अपने सामाजिक और साहित्यिक प्रतिबद्धता के साथ ही आज हिन्दी दलित साहित्य ने अपनी अलग पहचान प्राप्त की है। हिन्दी में दलित साहित्य

[21] हिन्दी दलित साहित्य, मोहनदास नैमिशराय, पृ. सं. 137

[22] दलित लेखन का अंतर्विरोध, डॉ. रामकली सर्राफ, पृ. सं. 74

कुछ खास सवालों को लेकर अलग-अलग तरह से लिखा जा रहा है। दलित साहित्य में आत्मकथा विधा की अहम भूमिका है। हिन्दी में अधिकांश सशक्त दलित लेखन आत्मकथा के रूप में ही उपलब्ध है। दलित लेखन आत्मकथा से शुरू होकर आज साहित्य की प्रत्येक विधा में लिखा जा रहा है। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, वैचारिकी ग्रंथ, व्यंग्य, निबंध, संस्मरण, आलोचना, साहित्यिक टिप्पणियाँ, साक्षात्कार आदि में उत्कृष्ठ रचनाएँ प्रकाशित हो रही हैं। वस्तुतः दलित साहित्य ने एक विशाल लेखक वर्ग पैदा किया है।

1.4 हिन्दी दलित कविता का उद्भव

दलित कविता को दो भागों में बाँटा जा सकता है।

अ. दलितों द्वारा लिखी गयी कविता।

आ. गैर दलितों द्वारा लिखी गयी कविता।

1.4.1 दलित कवियों के द्वारा लिखित दलित कविता

हिन्दी दलित कविता मध्य काल के निर्गुण संत कवि रैदास और कबीर से होती हुई हीरा डोम और अछूता नंद तक आई है। निश्चित रुप से इनसे आगे और इनके बीच कुछ कवि हुए होंगे जिन्होंने जाति प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाई होगी क्योंकि कँवल भारती का मानना हैं कि- “हिन्दी में दलित कविता का इतिहास सौ साल से भी ज्यादा पुराना है। इसे हम और भी पीछे ले जा सकते हैं, मध्य काल से वैदिक काल तक। दलितों ने अपनी व्यथा को हर युग और काल में व्यक्त किया है। वह अत्याचार और अन्याय के खिलाफ सदैव मुखर रहा है।”[23] उत्तर वैदिक काल में बौद्ध और जैन धर्म के आने पर वर्ण व्यवस्था की धज्जियाँ उड़ने लगी। आर्यों के धार्मिक ग्रंथों की मान्यताओं को असत्य साबित करने के लिए बौद्ध एवं जैन साहित्य लिखा गया। इस

[23] दलित कविता का संघर्ष, कंबल भारती, पृ. सं. 13

साहित्य ने जाति व्यवस्था पर कठोरता पूर्वक प्रहार किया है। चर्यापदों में दलित और छोटी जातियों को अभिव्यक्ति का पहली बार अवसर मिला है। इनमें 84 सिद्धकवियों में से 30 शूद्र कवि थे, जिन्होंने अपनी ओजस्वी वाणी से जाति व्यवस्था और ब्राह्मणवादी संस्कृति का खुलकर विरोध किया। हिन्दी दलित सिद्ध कवियों ने सामाजिक असमानता, धार्मिक कर्मकांड, झूठी जाति व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष किया और अपनी साधना से मानवतावाद की एक नये समाज की संरचना की। हिन्दी साहित्य के आदिकाल में दलित साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तैयार हुई जिसका आधारभूत ढ़ाँचा सिद्धों और नाथों की वाणियों के अतिरिक्त जैन धर्म के अनुयायियों द्वारा रचित साहित्य के आधार पर तैयार हुआ। जिसका प्रारंभिक दौर सिद्धों के समय से शुरू हुआ क्योंकि बुद्ध ने सामाजिक परिवर्तन की जो लहर पैदा की, सिद्ध कवि उसी के संवाहक बने। इसी तरह जैन धर्म के 24 तीर्थकरों में अधिकांश दलित समाज से संबंधित थे जिन्होंने खुलकर वर्ण व्यवस्था, जाति-पाति, कर्मकांड और ब्राह्मण व्यवस्था का विरोध किया। 8 वीं से 16 वीं सदी तक बौद्ध धर्म से निकले योगी सरहपा सिद्धों और नाथयोगियों ने अपनी वाणी दोहे और साखी द्वारा ब्राह्मणवाद और जाति व्यवस्था को नकारा।

13वीं शताब्दी के प्रांरभ में हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल का उदय हुआ। इस काल में महाराष्ट्र में जहाँ संत नामदेव, संत एकनाथ, संत तुकाराम, चोखा मेला ने हिन्दी में अपनी कविता की। वहीं उत्तर भारत में कबीर, रैदास, गुरुनानक, दादू, पलटूदास, मलूकदास, सुन्दरदास, रज्जब आदि संतों ने सरल हिन्दी भाषा में मूर्तिपूजा, अवतारवाद, पाखंडवाद, बाह्याडम्बरों का खुलकर विरोध किया। इन संतों ने निर्गुण भक्ति के माध्यम से सामाजिक असमानता, जात-पात, ऊंच-नीच, भेद-भाव, कर्म-कांड और ब्राह्मणवाद पर सीधी चोट करते हुए समानता, सदभावना और

भाईचारे पर जोर दिया। इन संतों के विचारों से दलित जाति को प्रेरणा मिली और उनमें आत्मविश्वास जाग्रत हुआ। इतिहास में पहली बार संतों ने भारतीय समाज के दलित, दमित वर्ग के भीतर आत्मसम्मान का भाव जगाया और भक्ति का मार्ग दमित जनता के लिए खोल दिया। वर्ण और जाति भेद का विरोध कर मानव धर्म की स्थापना पर बल दिया।

मध्य काल में कबीर, दादू, पलटू, मलूकदास और रैदास जैसे कवियों ने अपनी कविता में हिन्दू धर्म व्यवस्था का विरोध करते हुए समाज से जाति प्रथा तोड़ने के लिए संघर्ष किये । प्रो. कालीचरण 'स्नेही' के शब्दों में- "हिन्दी साहित्य में निर्गुण संत कवियों की वाणियों में दलित साहित्य के बीज छिपे हैं। संत कवियों ने वर्ण व्यवस्था, जाति-पाति, ब्राह्मण-शूद्र, मूर्ति पूजा और पाखंड का विरोध किया। इन्होंने जन भाषा में दोहे, साखियाँ, भजन तथा अन्य छंदों में रचनाएँ की हैं, जिनका जन मानस पर ज्यादा प्रभाव पड़ा।"[24] भक्तिकाल में निर्गुण भक्ति में 'ज्ञानाश्रयी शाखा' से संबंध रखने वाले सभी कवियों ने समाज में व्याप्त बाह्याडम्बर, छुआ-छूत, जाति-पाति, ऊँच-नीच की भावना को दूर करने के लिए 'निर्गुण ब्रह्म' की उपासना का मार्ग सुझाया, जिसमें कबीरदास और रैदास की महतपूर्ण भूमिका है। उन्होंने सदियों से चली आ रही परंपरा का विरोध ही नहीं किया, अपितु समाज के सामने एक नया विकल्प उपस्थित किया जिससे भारतीय जन मानस की मुरझाई चेतना को एक नया विकल्प मिला। इस तरह यह कहा जा सकता है कि दलित कविता का आरंभ कबीर और रैदास से ही होती है।

आधुनिक काल में दलित कविता का आरंभ सन् 1914 में सरस्वती में प्रकाशित हीराडोम की भोजपुरी कविता 'अछूत की शिकायत' से हुआ है। हीराडोम को दलित साहित्य का प्रथम महाकवि माना जाता है। 'अछूत की शिकायत' कविता में जिस

[24] दलित विमर्श और हिन्दी दलित काव्य, कालीचरण 'स्नेही', पृ. सं. 28

मार्मिक संवेदना व पीड़ा के साथ अपने रचना स्त्रोत की चर्चा करते हैं वह यही भारतीय समाज व उसकी जाति व्यवस्था है। 'अछूत की शिकायत' में हीराडोम ने दलित जीवन के दुख, अवसाद और पीड़ा को गहराई से व्यक्त किया है। हीरा डोम ने भारतीय समाज विशेष कर हिन्दू समाज से अछूतों की दुर्दशा की शिकायत की है। बहुत ही कातर स्वर में उन्होंने दलितों की दीन-हीन दशा का वर्णन किया है। कवि का सवाल यह है कि वह अछूत क्यों हैं? और समाज उसे प्रताडित क्यों करता है? वह भगवान से सवाल करते हुए कहता है-

"हमनी के राति दिन दुखवा भोगत बानी,

हमनी के सहेबे से मिनती सुनाइबि।

हमनी के दुख भगवनओं न देखताजे,

हमनी के कबले कलेसवा उठाइबि।"[25]

यह विशुद्ध दलित संवेदना की कविता है, जिसमें एक अछूत अपने कष्टों का वर्णन कर रहा है। यहाँ कवि ने भगवान से सवाल करते हुए पूछा है कि यह सारे दुख हमें ही क्यों? सवर्णों ने दलितों को कभी मनुष्य के रुप में आगे बढ़ने का मौका नहीं दिया, न ही उन्हें स्वीकारा। इस के प्रति हीरा डोम अपनी कविता में लिखते हैं-

"हड़वा मसुइया कै देहियां है हमनी कै,

ओकरे के देहियां बभनओं कै बानीं।

ओकारा कै घरे-घरे पुजवा होखत बाजे,

सगरै इलकवा भइलैं जजमानी।

[25] दलित कविता का संघर्ष, कँवल भारती, पृ. सं. 37

हमनी के इनरा के निगिचे न जाइलेजां,

पांके में से भरि-भरि पिअतानी पानी।

पनहीं से पिटि-पिटि हाथ गोड़ तुरि दैलैं,

हमनी के एतनी काही के हलकानी।"[26]

हीराडोम ने यह व्यथा शायद भगवान से की है साथ ही साथ ईश्वर की आलोचना भी की है। उन पर व्यंग्य भी करते हैं। भगवान को भी सवर्ण मानते हैं, जो अछूतों के दुःखों को नहीं देखता है। इस तरह 'अछूत की शिकायत' कविता में दलितों का नंगा यथार्थ का वर्णन किया गया है। हीरा डोम ने अपनी कविता के माध्यम से जातिवाद, छुआछूत, कर्मकांडों की निंदा की है। उनकी कविता में सहानुभूति नहीं स्वानुभूति है। हीराडोम स्वंय दलित होने के कारण, दलित का दर्द उन्होंने भोगा था। जिसके कारण उन्होंने अपनी कविता में दलित शोषण और उत्पीड़न का सजीव चित्रण किया है।

हीराडोम के बाद दूसरे महत्वपूर्ण कवि अछूतानंद हरिहर की कविताएँ मिलती हैं। स्वामी अछूतानंद जी कवि होने के साथ ही पत्रकार भी थे। हिन्दी में 'आदि हिन्दू' पत्र निकाल कर अछूतानंद ने ही दलित पत्रकारिता को उत्तर भारत में जन्म दिया। इस पत्र में दलितों पर होने वाले अत्याचारों, अन्याय एवं कष्टों की खबरें छपती थी। दलितों को उनके इतिहास से परिचित करा कर उनके स्वाभिमान को जागृत करते थे। अछूतानंद हरिहर ने अपनी कविताओं के माध्यम से हिन्दू समाज में जाति-प्रथा का घोर विरोध किया है। उन्होंने अछूतों पर होने वाले अन्याय को कविता में अभिव्यक्त किया है। उनकी एक कविता इस प्रकार है-

"मैं अछूत हूँ, छूत न मुझमें फिर क्यों जग ठुकराता है।

[26] दलित कविता का संघर्ष, कँवल भारती, पृ. सं. 41

छूने में भी पाप मानता छाया से घबराता है।।

मुझे देख नाक सिकोड़ता दूर हटा वह जाता है।

हरिजन भी कहता है मुझको हरि से विलग कराता है।"[27]

हिन्दू धर्म में जहाँ एक तरफ दलितों को हरिजन कहा जाता है, दूसरी तरफ उन्हें अस्पृश्य समझ कर स्पर्श नहीं किया जाता है। और उनकी छाया से भी दूर हो जाते हैं। अछूतानंद ने अपनी कविता में वर्ण व्यवस्था की तीखी आलोचना की है और मनुवादी व्यवस्था पर जबरदस्त प्रहार किया है और दलितों में आत्मसम्मान जगाने की कोशिश की है। उन्होंने अछूतोद्धार हेतु जबरदस्त संघर्ष किया है। कँवल भारती के शब्दों में- "स्वामी जी ने कविता को मनोरंजन की नहीं, ज्ञान की धारा से जोड़ा था। ऐसा ज्ञान, जो मनुष्यवादी है। मनुष्यवाद का अर्थ प्रत्येक मनुष्य को एक बराबर देखना ही नहीं है, वरन् मनुष्यों में जो शोषित और पीड़ित है, उसका पक्ष भी लेना है और मनुष्यों में जो शोषक हैं, उनके विरूद्ध विद्रोह भी करना है।"[28]

स्वामी अछूतानंद हरिहर ने अपनी कविता में शोषण और अन्याय पर आधारित व्यवस्था की आलोचना की है। स्वामी अछूतानंद जी का उत्तर भारत के संपूर्ण दलित वर्गों पर व्यापक प्रभाव पड़ा था। अछूतानंद से प्रभावित होकर स्वामी शंकरानंद, केवलानंद, अयोध्या नंद, दंडी आदि कवियों ने जाति-व्यवस्था का विरोध अपनी रचनाओं में किया है। इन कवियों ने अछूतानंद के दलित आन्दोलन को आगे बढ़ाया है। उन्होंने अपने समय की काल्पनिक हिन्दी कविता के समानांतर सामाजिक सरोकारों की कविता की। उन्होंने कोटि-कोटि अछूतों में नया विमर्श और विद्रोह पैदा करने के लिए कविता की। उन्होंने अपनी कविता में उस यथार्थ को उद्घाटित किया,

[27] दलित विमर्श और हिन्दी दलित काव्य, कालीचरण 'स्नेही', पृ. सं. 32

[28] दलित कविता का संघर्ष, कँवल भारती, पृ. सं. 46

जिसे तथाकथित हिन्दी नवजागरण के द्विज कवियों ने उपेक्षित किया था। अपनी कविताओं के माध्यम से स्वामी अछूतानंद ने जातिवाद, छूआछूत और कर्मकांडों का खुलकर विरोध किया है।

इसके बाद बिहारी लाल 'हरित' का नाम उल्लेखनीय है। हरित ने लघु एवं बृहत तीन दर्जन के करीब पुस्तकें लिखी हैं। 'भीमायण', 'झलकारीबाई' और 'जगजीवन ज्योति' आदि सन् 1945 ई. में लिखी गयी महाकाव्यात्मक कृतियाँ हैं। 'जयभीम', 'जयभारत' का नारा भी हरित ने दिया है। बिहारी लाल ने लोक साहित्य की भी रचना की है।

सन् 1960 में चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु को दलित चेतना का प्रवर्तक माना जाता है। जिन्होंने अपनी साहित्यिक यात्रा कविता से ही आरंभ की थी। उन्हें 'राष्ट्रकवि' की उपाधि भी मिली था। उन्होंने जातिवाद को तोड़कर साम्यवाद का समर्थन करते हुए यह कविता लिखी है-

"ब्राह्मनशाही ढोंग मिटाओ, अब तो भारत है आजाद।

साम्यवाद की बजे दुंदभी, वर्ण-जाति होवे बरबाद।।

लोकतंत्र का तत्व यहै है, खुलैं तरक्की के सब द्वार।

बन्द होयँ शोषण की राहैं, अर्थ व्यवस्था का होय सुधार।।"[29]

इस तरह चन्द्रिका प्रसाद जिज्ञासु ने अपनी कविता में जाति और वर्ग विहीन समाज के लिए आवाज उठाई। उनके दौर में और भी अनेक कवि हुए जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से जाति-व्यवस्था पर प्रहार किया। उन कवियों में प्रमुख हैं कुँवर

[29] दलित कविता का संघर्ष, कँवल भारती, पृ. सं. 116

उदयवीर सिंह, मनोहर लाल प्रेमी, पागल बाबा, मंगलदेव विशारद, दुलारे लाल जाटव, बिहारी लाल कलवार, भीखाराम गंडरिया, रमेशचन्द्र मल्लाह, बदलूराम 'रसिक', सूर्य कुमार, नत्थू सिंह 'पथिक', रणजीत सिंह आदि नाम। इन कवियों के बारे में कँवल भारती का कहना है "इन कवियों का समय 1960 से 1980 तक का है। इन दशकों की दलित कविता की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसके सभी रचनाकार दलित जातियों के लोग थे, जिनमें पिछड़ी जातियों के कवि भी शामिल थे। इस कविता ने जाति के तंग दायरे को तोड़ा था और उस व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाई थी, जो शोषण और अन्याय पर आधारित पूँजीवादी और ब्राह्मणवादी व्यवस्था थी। ये कवि शोषक वर्गों की सत्ता को ध्वस्त कर दलित-शोषित सर्वहारा की सत्ता चाहते थे।"[30]

हिन्दी में दलित कविता की बाकायदा शुरूआत बीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में हुई। इस दशक में हिन्दी के दलित कवियों ने एक नई पीढ़ी के साहित्य में प्रवेश किया। जिनका प्रेरणास्रोत डॉ.भीमराव अंबेडकर की विचारधारा, महात्मा फुले का संघर्ष था। इस युग की युवा पीढ़ी पूरी सक्रियता के साथ सृजन कर रही है। इस पीढ़ी में जिन कवियों के काव्य संग्रह प्रकाशित हुए, उनमें प्रमुख हैं सोहनलाल सुमनाक्षर, श्यौराज सिंह बेचैन, ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, जयप्रकाश कर्दम, डॉ.कुसुम वियोगी, मलखान सिंह, डॉ.एन. सिंह, दयानंद बटोही, डॉ.धर्मवीर, कँवल भारती, डॉ. रजत रानी 'मीनू', सुशीला टाकभौरे, रजनी तिलक आदि। इन कवियों की कविता में रूढ़िवाद, जातिवाद और भाग्यवाद के विरूद्ध खुला विद्रोह है। इनका मूल स्वर है दलितों में आशा संचार करना, स्वाभिमान उत्पन्न करना एवं स्मृति और चेतना लाना।

[30] दलित कविता का संघर्ष, कँवल भारती, पृ. सं. 116

इस दशक के प्रारंभिक दौर में माता प्रसाद और डॉ. रामशिरोमणि ‘होरिले’ जैसे कवियों की रचनाओं को देखा जा सकता है। उनके काव्य संग्रहों में ‘करिले के कांटे’ और ‘जीवन राग’ प्रमुख हैं। माता प्रसाद ने अपने दोहों में दलित नारी और राजनीति को विषय बनाया है।

श्री लालचन्द्र राही का नाम हिन्दी दलित कविता में बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। उन्होंने सामाजिक स्थिति के कष्टों को लगभग सबसे अधिक भोगा था। उनका कविता संग्रह ‘मूक नहीं मेरी कविताएँ’ उस समय की स्थिति को बड़ेबिद्धत के साथ बयान करती है।

डॉ.पुरुषोतम ‘सत्यप्रेमी’ हिन्दी दलित कविता का अन्य महत्वपूर्ण हस्ताक्षर है। डॉ. सत्यप्रेमी के अब तक तीन कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उन कविता संग्रहों का नाम इस प्रकार है ‘द्वार पर दस्तक’, ‘सवालों के सूरज’ और ‘मूक माटि की मुखरता’।

डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर का योगदान हिन्दी दलित साहित्य के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण रहा है। उनके अब तक दो काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। कविता संग्रह का नाम इस प्रकार है ‘अंधा समाज बेहेरे लोग’ और ‘सिंधू-घाटी बोल उठी’। इनकी कविता में दलित समाज की दरिद्रता, गरीबी का चित्रण है। इनकी कविता में वर्ण और वर्ग दोनों के खिलाफ आवाज हैं। इसका एक उदाहरण ‘सिंधू-घाटी बोल उठी’ कविता संग्रह की एक कविता में हम देख सकते हैं-

“तुम पुराने कपड़े पहनकर,

टूटे-फूटे छप्पर में रहकर,

सच्चे मन से जुटे हो,

करने देश का निर्माण,

पर फिर भी,

वे सभ्यजन पुकारते हैं तुम्हें,

गंदे इंसान।"[31]

मोहनदास नैमिशराय एक दलित पत्रकार और कवि है, जिन्होंने हिन्दी जगत में पर्याप्त सम्मान प्राप्त किया है। वह अपने कविता संग्रह 'सफदर का बयान' और 'आग और आन्दोलन' में दलित जीवन की महत्वपूर्ण समस्याओं को उठाया है। उनकी कविताओं में दलित चेतना का संघर्ष तीव्र रूप में उभरता है। उनकी कविताओं में ब्राह्मणवादी मानसिकता के प्रति आक्रोश है, आग है। वे अपनी कविताओं के माध्यम से समाज में परिवर्तन लाना चाहते हैं। वह अपनी कविताओं में दलितों के परिवर्तनगामी चेतना को भी अभिव्यक्त करते हैं। इसका उदाहरण उनकी कविता 'झाड़ू और कलम' में देख सकते हैं।

"कल मेरे हाथ में झाड़ू था

आज कलम

कल झाड़ू से मैं तुम्हारी गंदगी हटाता था

आज कलम से।

तुमने गंदगी फैलाने के लिए

[31] दलित विमर्श और हिन्दी दलित काव्य, कालीचरण 'स्नेही', पृ. सं. 46

वेद /पुराण/ मनुस्मृति का सहारा लिया

कल उन्हें जलाने का

मुझे अधिकार न था

आज शब्दों की आँच से

मैं उन्हें जलाऊँगा।”[32]

ओमप्रकाश वाल्मीकि इस सदी के एक प्रमुख कवि थे। उनके चार काव्य संग्रह अब तक प्रकाशित हुए हैं। उनकी कविताओं की मुख्य विशेषता धर्म, दर्शन और पौराणिक मिथकों की पुर्नव्याख्या करना है। वाल्मीकि अपनी पीढ़ी में दलितों के दर्द और संघर्ष के कवि हैं। वे दलित लोगों में बेवस, लाचार नहीं बल्कि विद्रोह की चिनगारी देखते हैं। उन्होंने सवर्ण समाज से प्रश्न किया है कि अगर सवर्ण को जीवन जीना पड़ेगा तो वह क्या करेंगे? उनकी एक कविता ‘तब तुम क्या करोगे’ का एक अंश यहाँ उल्लेखनीय है।

“यदि तुम्हें,

धकेलकर गांव से बाहर कर दिया जाये

पानी तक न लेने दिया जाये कुएँ से

दुत्कारा-फटकारा जाये

चिलचिलाती दुपहर में

कहा जाये तोड़ने को पत्थर

[32] दलित कविता का संघर्ष, कँवल भारती, पृ. सं. 189

काम के बदले

दिया जाये खाने को जूठन

तब तुम क्या करोगे?[33]"

डॉ. दयानन्द बटोही ने दलित कविता में अपनी अलग पहचान बनाई है। उनका काव्य संग्रह 'यातना की आँखें' सामाजिक विसंगतियों को अभिव्यक्त करता है। डॉ. जयप्रकाश कर्दम हिन्दी दलित कविता के एक सशक्त हस्ताक्षर है। उनका काव्य संग्रह 'गुंगा नहीं था मैं' हिन्दी दलित साहित्य में काफी चर्चित रहा है। उन्होंने अपनी कविता में बिना किसी लाघ-लपेट के सीधी-सपाट शैली में वर्ण-व्यवस्था के विरोध में अपनी आवाज उठाते हैं। वह अपनी कविता में लिखते हैं

"अगर मैं बोल जाता

जंगल की आग की तरह

यह बात फैल जाती कि

ढेढ़ों का दिमाग चढ़ गया है,

मिसल गढ़ी का एक चमार का लड़का

काजीपुरा के/ एक जाट के छोरे से

अड़ गया है।

तुरत-फुरत स्कूल के/ सारे सवर्ण छात्र

गोलबंद हो जाते,

[33] सदियों का संताप, ओम प्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 49

कई दलित छात्रों के हाथ-पैर टूटते

और फिर

झगड़ा करने के जुर्म में

हम ही स्कूल से

'रेस्टीकेट' कर दिये जाते।"[34]

डॉ.श्यौराज सिंह बेचैन हिन्दी दलित कविता के एक महत्वपूर्ण कवि हैं। उनके अब तक दो काव्य संग्रह 'नई फसल' और 'क्रोंच हूँ मैं' प्रकाशित हुए हैं। उनकी कविताओं में ज्यादातर गरीबी की पीड़ा की अभिव्यक्त हुई है। उन्होंने अपनी कविता में एक नये समाज की कल्पना की है। जिसमें न रंग भेद हो, न जाति भेद, न लिंग भेद और न ही आर्थिक विषमता। कँवल भारती के शब्दों में "उनकी दृष्टि व्यापक है। उनकी चेतना में वे सारे लोग हैं, जो भूख और शोषण से पीड़ित हैं। वे जाति और वर्ग विहीन समाज के निर्माण के कवि हैं और समाजवादी राज व्यवस्था के स्वप्नदर्शी भी।"[35]

डॉ. सुखवीर सिंह हिन्दी के प्रतिष्ठित आलोचक और कवि थे। उन्होंने कई संकलनों का संपादन किया है। उनके तीन काव्य संग्रह 'अनन्तत्तर', 'बयान बाहर', और 'सूर्यांश' प्रकाशित हुए हैं। 'बयान बाहर' उनका काव्य संग्रह हिन्दी की लंबी कविता में अपना एक विशेष स्थान एवं महत्त्व रखता है। उन्होंने दलितों के ऊपर हो रहे असमानताओं पर टिप्पणी करते हुए लिखा हैं -

"ओ मेरे गाँव! तेरी जमीन पर,

---

[34] दलित कविता का संघर्ष, कँवल भारती, पृ. सं. 224

[35] वही, पृ. सं. 172

घुटी-घुटी साँसों के साथ,

पलना पड़ता है, अलग-थलग।

लड़खड़ाते कदमों से

चलना पड़ता है अलग-थलग।

मरने के बाद भी

जलना पड़ता है, अलग-थलग।"[36]

डॉ. एन. सिंह लंबे समय से दलित कविता की रचना यात्रा से जुड़े हैं। वे एक कवि के साथ-साथ समीक्षक भी हैं। वह हिन्दी दलित साहित्य की स्थापना में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। डॉ. एन. सिंह मूलतः आक्रोश के कवि हैं। इनकी कविता व्यवस्था पर चोट करने के साथ-साथ सामाजिक न्याय और सामाजिक परिवर्तन की बात करती है। अब तक इनका एक काव्य संग्रह 'सतह से उठते हुए' प्रकाशित हुआ है। इन्होंने सामाजिक विसंगतियों पर चोट करते हुए दलित के जागरण पर एक कविता लिखी है।

"आज नहीं तो कल जरूर,

ये भूखी मानवता जागेगी,

अपनी सारी मेहनत का

तुमसे जरूर हिसाब माँगेगी,

इन लपटों को भी संभालो,

[36] दलित विमर्श और हिन्दी दलित काव्य, कालीचरण 'स्नेही', पृ. सं. 39

अभी वक्त है,

वरना इस ज्वाला को,

कभी भी कोई रोक नहीं पाया है।"[37]

यहाँ कुछ अन्य कवियों के काव्य संग्रहों का उल्लेख करना समीचिन होगा, जिन्होंने हिन्दी दलित कविता को पहचान के स्तर पर स्थापित किया है। उनमें प्रमुख है डॉ. प्रेमशंकर, जिनके दो काव्य संग्रह 'नई गंध' और 'कविता: रोटी की भूख तक' प्रकाशित हुए हैं। अपनी बात को उत्तेजना के साथ कहना उनकी कविता की विशेषता है। सूरजपाल चौहान ने भी हिन्दी दलित कविता के विकास में अपना स्थान 'प्रयास' कविता संग्रह लिखकर बनाया। कुसुम वियोगी ने सामंतवादी और ब्राह्मणवादी व्यवस्था का विरोध करते हुए कविताएँ लिखी हैं। उनका कविता संग्रह 'व्यवस्था के विषधर' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। डॉ. धर्मवीर आलोचक के साथ-साथ एक कवि भी थे। उनका कविता संग्रह 'हीरामन' और 'किनारे भी मंझधार भी' नाम से प्रकाशित हुआ है। इनकी कविताओं में दलितों की पीड़ा गहराई से दिखाई देती है। उदाहरण के लिए

"वह भारत का मोहन चमार है

बत्तीसी बाहर को और आंखें भीतर को

सिर सिद्ध किया हुआ श्मशान,

पूरा शरीर नर-कंकाल

चलता-फिरता अस्थियों का अजायबघर

[37] दलित विमर्श और हिन्दी दलित काव्य, कालीचरण 'स्नेही', पृ. सं. 43

छुआ-छूत का विज्ञापन,

बोलता-चलता, निर्धनता का प्रचार।"[38]

इनके अलावा कुछ और काव्य संग्रहों का परिचय इस प्रकार है 'तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती'-कँवल भारती, 'उत्पीड़न की यात्रा'-लक्ष्मीनारायण सुधाकर, 'सुनो ब्राह्मण'-मलखान सिंह आदि। इनके अतिरिक्त और भी अनेक कवि हैं जिन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से दलित कविता जगत को विकसित किया है। इन कवियों में, श्री रतन कुमार सांभरिया, डॉ.सुरेश, पंचम, कालीचरण 'स्नेही', मूलचन्द सोनकर, सोहनलाल सुबुद्ध, राजेन्द्र बड़गूजर, असंग घोष, जवाहार लाल कौल 'ब्यग्र' आदि के नाम लिये जा सकते हैं।

हिन्दी दलित साहित्य के क्षेत्र में अपनी कविता के माध्यम से दलित कविता को विकसित करने में जिन दलित स्त्रियों ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है उनकी चर्चा किये बगैर यह अध्ययन अधूरा ही रहेगा। हलांकि हिन्दी दलित कविता में दलित स्त्रियों का पदार्पण काफी देर से हुआ। जब हिन्दी साहित्य में सवर्ण स्त्री ही मुखर नहीं हुई थी तब दलित स्त्री की कविता लिखने की बात तो दूर की कौड़ी है। दलित स्त्रियों की पीड़ा के बारे में पहली बार एक दलित स्त्री अनुसूया 'अनू' ने कविता लिखी। उनकी एक कविता 'तू बन जा दीपक' के नाम से 'पीड़ा जो चीख उठी' कविता संग्रह में प्रकाशित हुई थी। अनुसूया 'अनू' ने एक कविता संग्रह की रचना की थी जिसका शीर्षक 'बाँवरी' था। इस कवयित्री के बारे में कँवल भारती का कहना है "ऐसी सशक्त कविता की रचनाकार अनु एक कवयित्री के रूप में आगे विकास क्यों

[38] हिन्दी दलित कथा-साहित्य अवधारणाएँ और विधाएँ, डॉ. रजत रानी 'मीनू', पृ. सं. 49

नहीं कर सकीं और वह किन परिस्थितियों में गुमनामी के अंधकार में चली गयी? इसका पता नहीं चलता। कारण कुछ भी हो, यह एक उर्वरा कवयित्री का दुखद अन्त ही कहा जायेगा।"[39]

कावेरी ने हिन्दी दलित साहित्य में 'नदी की लहर' कविता संकलन लिख कर अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया । उन्होंने स्त्रियों की पीड़ा और संघर्ष को लेकर कविताएँ लिखी है। उनके स्त्री-संघर्ष को एक कविता इस प्रकार दर्शाती है-

"जिन्दगी की खाईयाँ

ढेर सारी

आती रहीं सामने

परिवार, जाति, समाज

और धर्म की खाईयाँ

राष्ट्र अंतराष्ट्र बांटती अस्मिता को

जब-जब पग बढ़ा

सामने आई खाईयाँ।"[40]

दलित कवयित्री सुशीला टाकभौरे ने अपनी कविताओं में दलित स्त्रियों की समस्याओं को प्रमुखता से उठाया है। सुशीला टाकभौरे के काव्य-संग्रहों के शीर्षक हैं - 'स्वाती बुंद और खारे मोती' एवं 'यह तुम भी जानो'। अपनी कविताओं में इन्होंने दलित स्त्री जीवन के अनुभव को पूरी सच्चाई के साथ व्यक्त करती है। उनकी चिंता

[39] दलित कविता का संघर्ष, कँवल भारती, पृ. सं. 246

[40] वही, पृ. सं. 247

सिर्फ दलितों की मुक्ति नहीं बल्कि दलित स्त्रियों की मुक्ति से भी है। सदियों से हमारे समाज में स्त्रियों का शोषण किया गया, उन्हें भोग्या बना दिया गया। उनके पैरों को अनेक रीति-रिवाजों की बेड़ियों में बांध दिया गया। उन्हें स्वंतत्रता पूर्वक जीने नहीं दिया गया। स्त्रियों को इन्हीं बंधनों से मुक्ति करना सुशीला टाकभौरे की कविताओं का लक्ष्य है। वे 'औरत नहीं है मजदूर' शीर्षक कविता में कहती है-

"औरत नहीं है मजबूर

मजबूरियाँ हैं रीतियाँ

ढोते हुए अपनी सलीब

अब यह थक गयी हैं।

अगर चाहते हो जानना

तो पूछकर तुम टोह ले लो

राख की हर ढेरी में

कितनी दबी चिनगारियाँ हैं।

तनिक इनको हवा दे दो

ईंधन स्वयं बन जायेंगी

बनकर ये शोला करेंगी

भस्म सब मजबूरियाँ।"[41]

[41] दलित कविता का संघर्ष, कँवल भारती, पृ. सं. 255

रजनी तिलक दलित साहित्य की प्रमुख कथाकार और कवयित्री है। "रजनी तिलक की प्रवृत्ति पत्रकारिता की है और वे दलित महिला एवं मानव अधिकार आन्दोलन में भी सक्रिय हैं। वे महिला आरक्षण बिल में दलित महिलाओं के लिए विशेष आरक्षण की व्यवस्था के लिए संघर्षरत रही हैं। इसलिए उनकी कविताएँ दलित स्त्रियों की मुक्ति आन्दोलन से जुड़ी कविताएँ हैं।" [42] उनका प्रमुख कविता संग्रह 'पदचाप' है। इनकी कविताएँ सदियों से पददलित स्त्रियों की मुक्ति के लिए संघर्ष का रास्ता दिखाती है। दलित स्त्रियों को प्रेरणा देती है, साहस देती है। कवयित्री लिखती हैं-

"यातनाओं के भट्टे सुलगा दो

उससे भी नहीं मिटूँगी

पीड़ाओं की खाई में धकेलो

उनसे उबर आऊँगी।

छा जाओ जुल्म की आँधी बन

मैं टस से मस नहीं होऊँगी।"[43]

और भी दलित स्त्री कवयित्रियाँ हैं जिन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से दलित स्त्रियों की पीड़ा का वर्णन के साथ-साथ उन्हें संघर्ष का रास्ता भी दिखाती हैं। उनमें प्रमुख हैं रजत रानी 'मिनु', विमल थोरात आदि।

---

[42] दलित कविता का संघर्ष, कँवल भारती, पृ. सं. 256

[43] वही, पृ. सं. 262

दलित कविता परंपरागत कविताओं से भिन्न दिखाई पड़ती है। इस धारा से जुड़े कवियों ने ईश्वरीय सत्ता से फरियाद करने के बजाय दो-टूक बात करने के स्तर पर जीवंत हुई। इन्होंने हिन्दूत्व की विरासत को कठघरे में खड़ा किया और साथ ही आस्था और परंपरा को तोड़ने का काम किया, उसने ईश्वर के अस्तित्व को समाप्त करने में विश्वास दिखाया जो पूर्व के साहित्यकारों की विरासत थी।

दलित अस्मिता की प्रतिष्ठा, अन्याय, शोषण और दमन का विरोध, परंपरागत वर्ण व्यवस्था का खंडन, नये समाजिक मूल्यों का निर्माण दलित कविता के प्रमुख प्रतिमान है।

1.4.2 गैर दलित कवियों के द्वारा लिखित दलित कविता-

दलित कविता की यह अविरल धारा दलित लेखकों से होता हुआ हिन्दी साहित्य के गैर दलित लेखकों तक पहुँचता है। इस गैर दलित लेखकों में सबसे पहले निराला आते हैं। उनकी कुछ कविताएँ 'तोड़ती पत्थर' और 'भिक्षुक' में दलित चेतना देखने को मिलती है। निराला के बाद नागार्जुन का नाम इस पंक्ति में लिया जा सकता है। उनकी कविता 'हरिजन गाथा' में बिहार के दलितों की दुर्दशा का चित्रण किया गया है। विष्णु खरे ने भी अपनी कविता 'सिर पर मैला ढोने की अमानवीय प्रथा' लिखकर जाति व्यवस्था पर गहरा प्रहार किया। इसी प्रकार अन्य गैर दलित कवि हैं जिनमें मैथिली शरण गुप्त, गया प्रसाद शुक्ल सनेही एवं रामचन्द शुक्ल आदि ने भी दलितों के उपर थोड़ा बहुत लिखा है।

इस धारा में कोई भी लेखक या कवि ऐसा नहीं हुआ जिसने अपना संपूर्ण रचना कर्म दलित संवेदना को व्यक्त करने में लगाया हो। वरन इस धारा के लेखकों ने अपने साहित्य में थोड़ा बहुत दलित पक्ष में लिखने का प्रयत्न किया।

कुछ गैर दलित हिन्दी कवियों के मन में दलितों के प्रति उदार भावनाएँ जागृत हुई और उन्होंने दलितों की पीड़ा को समझा तथा उस पर कल्पना के माध्यम से अपनी लेखनी चलाई। इनका एक ही मकसद रहा है कि दलितों के प्रति सवर्ण मन को उदार बनाना। जैसे- आर.सी.प्रसाद सिंह की लम्बी कविता 'हरिजन' की पंक्तियाँ हम देख सकते हैं-

'रे कौन तुम्हें कहता है अछूत?

तुम तो प्रभु की सच्ची विभूति हो।

यह पतित प्रताड़ित दीन जाति

मांगती तुम्ही से आज भीख

तुम क्षमाशील कर क्षमा इसे

दे दो नव युग की स्वर्ण सीख ।।' [44]

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अछूतों को शुद्धाचार सिखाने की शिक्षा और वे अछूतों को ईश्वर ने बनाया है मानते हैं-

'जन्म जहाँ चाहे दे दैव, निज वश है गुण कर्म सदैव।

पंकज रूप रंग या गंध, रखते नहीं पंक संबंध।

करो अछूतों का उद्धार, उन्हें सिखाओ शुद्धाचार।'[45]

[44] दलित विमर्श की भूमिका, कँवल भारती, पृ. सं. 114

[45] वही, पृ. सं. 115

द्विवेदी युग के ही प्रमुख कवि गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' समाज में अछूत को ही सेवक मानते हैं और यह कहते हैं कि दलित कही जाने वाली निम्न जातियाँ सेवक, गुलाम होती है परंतु वह भी मनुष्य है। उनके पास सोच-विचार करने की क्षमता रहती है। उनके अनुपस्थिति में सवर्णों के घर में गंदगी भर जाती है।

हिन्दी साहित्य के महान ज्ञाता, आलोचक, समालोचक तथा इतिहासकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मन में दलितों के प्रति क्या धारणा, विचार है, उनकी कविता 'अछूतों की आह' से स्पष्ट होता है। रामचन्द्र शुक्ल मानते हैं कि भगवान ने ही अछूतों को पैदा किया है।-

'धर्म हिन्दू का हमें अभिमान, नित्य लेते नाम है भगवान का,

हम अछूतों से बताते छूत है, कर्म कोई कुछ करे पर पूत है।

है संगो को ये परा मानते, क्या यही स्वामी तुम्हारे दूत है।'[46]

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला को आज के दलित चेतना के प्रमुख कवियों में गिना जाता है। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से दलितों पर होने वाले अन्याय, अत्याचार, शोषण एवं उनकी गुमशुम पीड़ा को समझा और अपनी कविताओं के माध्यम से उस पीड़ा को उजागर किया। दलित वर्ग पर उनकी दया कविताओं की पंक्तियों में प्रस्फुटित होती है-

'दलित जन पर करो करूणा

दीनता पर उतर आये,

प्रभु तुम्हारी शक्ति अरूणा।

[46] दलित विमर्श की भूमिका, कँवल भारती, पृ. सं. 116

हरे तन-मन प्रीति पावन,

मधुर हो मुख मनोभावन।

सहज चितवन पर तरंगित,

हो तुम्हारी किरण तरूणा।'[47]

यद्यपि इन सबकी रचनाओं में दलित के प्रति सहानुभूति और दया का स्वर है, लेकिन दलित विमर्श की यह धारा यहीं से अपने यथार्थवादी रूप में प्रगतिशील साहित्य में पँहुचती है। हिन्दी में प्रगतिशील साहित्य का प्रारंभ 1930 के दशक में होता है, जिसका नामकरण 1936 ईं. में होता है। इस युग में मुंशी प्रेमचंद पहले गैर दलित लेखक थे, जिन्होंने साहित्य में यथार्थवादी दृष्टि अपनाया। प्रेमचंद पहले गैर दलित लेखक थे, जिन्होंने अपनी रचनाओं में दलित विमर्श का चित्रण किया है। प्रेमचंद डॉ. अंबेडकर की ही तरह सामाजिक बदलाव को महसूस करते थे और दलितों के प्रति सवर्णों के द्वारा किये गये कठोर व्यवहार की निंदा भी करते थे। प्रेमचंद के साहित्य से प्रभावित होकर प्रयोगवादी, प्रगतिवादी, नयी कविता एवं साठोत्तरी कविता के कुछ कवियों ने भी दलित चेतना को अपनी कविताओं का प्रमुख विषय बनाया है। दलित पीड़ा को मानवीय धरातल पर लाने का प्रयास किया है किन्तु प्रेमचंद के बाद के प्रगतिशील साहित्य में हमें दलित-विमर्श की तेजस्विता मिलती है। बाबा नागार्जुन के प्रसिद्ध कविता 'हरिजन गाथा' दलितों के सामूहिक हत्याकांड के विरूद्ध एक विद्रोही प्रतिक्रिया है।

'ऐसा तो कभी नहीं हुआ था कि

एक नहीं दो नहीं तीन नहीं तेरह के तेरह

[47] निराला साहित्य में दलित चेतना, विवेक निराला, पृ. सं. 148

अभागे अकिंचन मनुपुत्र

जिन्दगी झोक दिये गये हो प्रचंड अग्नि की विकराल

लपटों में,

साधन संपन्नों ऊँची जातियों वाले सौ-सौ मनुपुत्रों द्वारा

किरोसिन के कनस्तर मोटे-मोटे लक्कड़, उपले के ढ़ेर

और एक विराट चिताकुंड के लिए खोदा गया

आ गयी हो होली वाले 'सूपर मौज' के मूड़ में।'[48]

सोहन लाल द्विवेदी एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने अपनी कविताओं में दलित, शोषित, पीड़ित, वंचित और मजदूरों के प्रति जो मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाया है वह निश्चय ही दलित-चेतना को प्रभावित करता है। रामधारी सिंह दिनकर ने मानव के छूत-अछूत, ऊँच-नीच के संबंध में अपने महान विचारों को प्रस्तुत कर यह सिद्ध किया कि सभी मनुष्य समान है । जो व्यक्ति सभी प्रणियों को समान दृष्टि में देखता है वही व्यक्ति समाज में श्रेष्ट माना जाता है। डॉ. राम कुमार वर्मा के प्रबंध काव्य 'एकलव्य' में नायक एकलव्य का चरित्र और धर्नुविद्या आज किसी से अपरिचित नहीं है। दलित जाति में जन्मा एकलव्य और उनके गुरू द्रोणाचार्य के संवादों को वर्मा जी ने मार्मिक ढंग से अपनी कविता में प्रस्तुत किया है।

प्रयोगवादी काव्य धारा के प्रमुख कवि मुक्तिबोध ने भी ऐसे व्यक्तियों पर कटु, व्यंग्य किया जो दलितों का खून चूसते हैं। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से समाज में दलित-चेतना को फैलाते हुए, दलितों पर अत्याचार, शोषण करने वाले शोषक मनुष्यों पर कटु व्यंग्य भी प्रस्तुत किया है-

[48] नवें दशक की हिन्दी दलित कविता, रजत रानी 'मीनू', पृ.सं. 15

'सामाजिक महत्व की, गिलौरियाँ खाते हुए।

असत्य की कुर्सी पर, आराम से बैठे हुए।'[49]

नयी कविता के प्रमुख कवि डॉ.जगदीश गुप्त ने भी दलित चेतना को सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं मानवीय धरातल पर खुलकर प्रस्तुत किया है। दलितोद्धार के लिए नई कविता के कवियों ने स्वतंत्र रूप से मुक्त काव्य संग्रहों के साथ ही प्रबंध ग्रंथों की रचना करके दलित चेतना को चरमोत्कर्ष प्रदान किया। उनके द्वारा रचित 'शम्बूक' खंड काव्य में इसका चित्रण मिलता है। धूमिल की कविता 'मोचीराम' इस दशक की दलित-चेतना की सशक्त कविता है। धूमिल के लिए हर आदमी एक जोड़ा जूता है। जाहिर है कि उसका सारा संघर्ष दो वक्त की रोटी के लिए है, पर उसकी संवेदना यह है कि वह जूतों में भी आदमी की श्रेष्ठता देखता है। इसके अलावा नरेश मेहता के 'शबरी' और भारत भूषण के 'अग्निलीक' खंड काव्यों में भी विचारणीय दलित-चेतना है। आज दलित साहित्य की काव्यधारा को जीवंत बनाने के लिए अनेक साहित्यकार आगे आये हैं, जो दलित काव्य के विकास का प्रमाण है।

1.5 उड़िया दलित कविता का उद्भव

1.5.1 उड़िया साहित्य में दलित

जिस प्रकार हिन्दी साहित्य में दलित साहित्य नाम की कोई विधा स्वतंत्र रूप में नहीं थी ठीक उसी प्रकार उड़िया साहित्य के इतिहास में भी दलित साहित्य नाम की कोई स्वतंत्र विधा दिखाई नहीं देती है पर इसका मतलब यह नहीं है कि उड़ीसा में दलितों का स्वर नीरस था। अतः समय-समय पर उड़िया के दलित कवि तथा लेखकों ने जाति-पांति, ब्राह्मणवाद के विरुद्ध आवाज उठायी है। उड़िया साहित्य में

[49] मुक्तिबोध रचनावली खंड-2, गजानन माधव मुक्तिबोध, पृ. सं. 237

दलित साहित्य नाम की स्वतंत्र धारा बहुत बाद में आयी। आज भी उड़िया साहित्य में दलित साहित्य की धारा इतनी मजबूत नहीं हो पायी है, जितनी अन्य भाषा-भाषी साहित्य में हुई है। शिक्षा के कारण अब दलित अपनी वाणी को अभिव्यक्त कर पा रहे हैं। चाहे धीरे-धीरे हो पर उड़िया दलित साहित्य अपनी जगह बना रहा है।

प्राचीन उड़िया साहित्य के पंच सखा युग के कवि ही पहली बार जाति-पांति का विरोध करते हुए रचनाएँ करने लगे थे। उनके बाद भीमभोई अपनी रचनाएँ में जाति-पांति तथा ब्राह्मणवाद का विरोध करते हैं। भीमभोई के बाद कई दशक तक वर्णवाद का विरोध करते हुए कोई रचना नहीं मिलती है। 80 के दशक में ऐसे साहित्यकार सामने आये जैसे रामकृष्ण महानंद, गोविन्द सेठी आदि। इन रचनाकारों ने अंबेडकर, ज्योतिबा फुले, साहु महाराज आदि महर्षियों की जीवनी लिखकर और उनके ऊपर लिखे गये कुछ गद्य साहित्य का अनुवाद कर उड़िया साहित्य में अंबेडकरवाद की नींव डाली है। बासुदेव सुनानी के शब्दों में "इन रचनाकारों की निष्ठा एवं उत्साह ही वर्तमान दलित साहित्य का रुप लिया है। आज का दलित साहित्य उन पुरानी सोच विचार का परिवर्तन ही है एवं अनेक सृजनात्मक साहित्यिक रचनाएँ प्रकाशित होने के साथ-साथ वंचित, शोषित लोगों में समाज में परिवर्तन लाने के लिए आन्दोलन की ऊर्जा पैदा करता है।"[50] इस तरह वे रचनाकारों की जीवनी और अनुवाद तक ही सीमित रह गये। दलितों को लेकर अतः दलितों की समस्याओं को लेकर स्वतंत्र रूप में कोई रचना नहीं कर पाये। इसी दशक में श्रीमती शांतिप्रिया जेमा के द्वारा रचित संक्षिप्त जीवनी पुस्तक 'डॉ बाबा साहब आंबेडकर', उपन्यास 'मनमणिष' तथा संक्षिप्त नाटक 'प्रतारणा' में दलितों की जीवन स्थितियों का हृदयस्पर्शी वर्णन मिलता है। अध्यापक कालिन्दी बेहेरा कृत 'देवकन्या' में देवदासी प्रथा के अंतर्गत दलित स्त्री के शोषण को दिखाया गया है। मानव समाज में

[50] उड़िया दलित साहित्य, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 18

जाति प्रथा को लेकर मनुष्य पर होने वाले अन्याय, अत्याचार और शोषण को लेकर अध्यापक नरसिंह साहु ने 'हेडमास्टर' उपन्यास लिखा है। स्त्री लेखिका सुप्रिया मल्लिक के द्वारा रचित लघु कहानी 'छक' और 'प्रवहमान' में दलित जीवन की दयनीय स्थिति का वर्णन मिलता है। रामचन्द्र सेठी कृत 'द्वितीय बुद्ध' कहानी में दलित जीवन की उपस्थिति है।

आधुनिक युग में शिक्षा के कारण दलित समुदाय के लोग जागरूक हुए और अपने अनुभव को साहित्य की विभिन्न विधाओं के माध्यम से अभिव्यक्त करने लगे। मराठी, हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के दलित साहित्य के प्रभाव से उड़िया के कुछ दलित साहित्यकार सचेत हुए और स्वतंत्र रूप से दलित साहित्य लेखन करने लगे। उड़िया दलित साहित्य का आगमन सन् 2001 में 'अस्पृश्य' कविता संग्रह के बाद होता है जिसके लेखक बासुदेव सुनानी है। इसके बाद कविता, उपन्यास, कहानी, निबंध, नाटक आदि क्षेत्रों में कई दलित लेखक अपने आपको जोड़ने लगे। जिन दलित रचनाकारों ने उड़िया दलित साहित्य को समृद्ध करने में अपना पूर्ण योगदान दिया हैं उनमें प्रमुख हैं- संजय बाग, समीर रंजन, सुप्रिया मल्लिक, कांति लाल मुग्री, संध्याराणी भोई, बालकृष्ण नाग, सनातन जेना, उपेन्द्र नाग, प्रदीप सेठी, श्रीनाथ जेना, पंचानन दलाई, अभिराम मल्लिक, सरोज महानन्द आदि। इन रचनाकारों ने साहित्य की विभिन्न विधाओं के माध्यम से अपने विचारों को अभिव्यक्त किया है। इनकी रचनाओं में दलितों की पीड़ा, दुख-दर्द, सवर्णों का अत्याचार, जाति के कारण हो रहे छुआछूत के भेदभाव के वर्णन के साथ-साथ उसके प्रति विद्रोह की भावना भी दिखाई देती है।

1.5.2 गैर दलित साहित्यकारों द्वारा रचित उड़िया दलित साहित्य

उड़िया साहित्य में कुछ गैर दलित रचनाकार हुए हैं, जिन्होंने दलितों को लेकर कविता, उपन्यास, कहानी, निबंध आदि की रचना की हैं। उन गैर दलित रचनाकारों में प्रमुख हैं- फकीर मोहन सेनापति, किशोरी चरण दास, गोपीनाथ महांति, कान्हुचरण आदि। इन रचनाकारों की रचनाओं में सिर्फ दलित जीवन की छाप ही मिलती है। दलितों की प्रमुख समस्या, संघर्ष चेतना की बातें इन रचनाकारों में नहीं मिलती हैं। सिर्फ दलितों के प्रति दया और सहानुभूति है। इन रचनाओं के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि इसका सरोकार जाति प्रथा का विरोध नहीं है बल्कि जाति व्यवस्था को और प्रोत्साहित करना है। कवि और कथाकार फकीर मोहन सेनापति की कई कविताएँ और उपन्यास दलित केन्द्रित हैं जैसे 'बिलुआ कुकुर संवाद' (लोमड़ी-कुत्ता संवाद), 'धोबा' (धोबी) और उपन्यास 'छमाण आठ गुंठ' (छ बिघा जमीन)। 'धोबी' कविता का एक अंश यहाँ देखा जा सकता है-

'देखो धोबी कार्य अति पवित्र

धोबी के लिए समाज कहलाता है संभ्रांत

साफ करता है हमारा मलिन वस्त्र

नहीं तो शरीर होता बीमार ग्रस्त।' [51]

इस कविता से यह साफ प्रतीत होता है कि रचनाकार का उद्धेश्य यहाँ क्या है? क्या उनका उद्धेश्य यहाँ जाति प्रथा का विरोध करना है? इस तरह कई रचनाएँ ऐसी

[51] दलित आन्दोलन और दलित साहित्य, डॉ. कृष्ण चरण बेहेरा एवं श्री रविन्द्र नाथ साहु, पृ. सं. 98

हैं जिसके अध्ययन से यह साफ प्रतीत होता है कि सवर्ण साहित्यकारों का उद्धेश्य सिर्फ दलितों को यथा स्थिति में बनाए रखना है।

आधुनिक उड़िया साहित्य में कथाकार गोपीनाथ महांति ने सर्वप्रथम दलितों की समस्याओं को उपन्यासों का विषय बनाया है। इनका दृष्टिकोण गांधीवादी था। उनके द्वारा रचित 'परजा', 'दादिबूढ़ा', 'अमृतर संतान', 'हरिजन' आदि दलित जीवन पर आधारित प्रमुख उपन्यास है। इस उपन्यासों में दलित और आदिवासियों का जीवन चरित, व्यथा, पीड़ा, संघर्ष, शोषण, वेदना, तनाव और दुख-कष्ट का वर्णन मिलता है। कान्हुचरण कृत 'शास्ति' उपन्यास में जाति प्रथा को लेकर कठोर विरोध किया गया है। इस उपन्यास में दलित जीवन का वास्तविक चित्र अंकित है।

उड़िया में सिर्फ दलित रचनाकार ही है जिन्होंने अपनी रचनाओं में दलित, शोषित, पीड़ित और वंचितों के प्रति मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाया है। इनकी रचनाएँ निश्चित ही दलित चेतना को प्रवाहित करती हैं। इन लेखकों ने दलित चेतना को अपनी रचनाओं का प्रमुख विषय बनाया है। दलित पीड़ा को मानवीय धरातल पर लाने का प्रयास किया है।

1.5.3 दलित कवियों द्वारा लिखित दलित कविता

उड़िया साहित्य में दलित कवियों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। दलित कवि जैसे- लूइपा, काण्हपा, शबरिपा, तंतिपा, डोम्बिपा आदि और बाद में सरला दास, बलराम दास, भीम भोई जैसे कवियों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। उनकी कठोर साधना और साहित्यिक रचनाओं में उपलब्ध जाति-प्रथा का घोर विरोध के कारण उच्च जाति के साहित्यकार और आलोचक ने उनको घृणा की दृष्टि से देखा है। उनको उड़िया साहित्य में उतना महत्व नहीं मिला, जितना सवर्ण साहित्यकारों को मिलता

है। भीम भोई उड़िया साहित्य में पहले कवि है, जिन्होंने जाति-प्रथा का खुल कर विरोध किया है। समाज से जाति-प्रथा को दूर करने के लिए अपनी कलम के द्वारा उन्होंने आन्दोलन किया।

उड़िया साहित्य इतिहास में यह दर्शाया गया है कि 'चर्या गीतिका' के लेखक प्रथम पीढ़ी के कवि थे जिन्होंने पहली बार उड़िया भाषा में कविता लिखी। उन्होंने अपनी सारी कविताओं की रचना साधारण जनता की भाषा में की है। जबकि उनसे पहले सारी रचनाएँ संस्कृत में ही लिखी जाती थी। 'चर्या गीतिका' के कुछ कवि शूद्र थे जैसे- लूइपा, जो कि मच्छुआरे जाती के हैं, डोमिपा- डोम जाती का है, शबरिपा- शबर जनजाति का है, तंतिपा- तंती जात (जो कपड़ा बुनता है या सुई का काम करता है) का है। इन सिद्धाचार्यों ने अनेक कविताएँ जनता की भाषा में लिखी हैं। उन्होंने संस्कृत भाषा को महत्व नहीं दिया बल्कि सरल उड़िया भाषा का प्रयोग अपनी कविताओं में किया है। इससे यह पता चलता है कि इन कवियों ने पहली बार ब्राह्मणवाद का विरोध किया होगा। बासुदेव सुनानी के शब्दों में- "डोम, चंडाल, शबर आदि जातियों ने अभी भी समाज में अस्पृश्य है। यह जाति उड़िसा की प्राचीन जाति है। प्राचीन जाति होने के कारण हो सकता है सिद्धाचार्यों ने इनकी भाषा को साहित्य में व्यवहार किये होंगे। क्योंकि इन सिद्धाचार्यों में से कुछ सिद्ध उपरोक्त जाति में पैदा हुए थे। तत्कालीन समय में देव भाषा संस्कृत में कविताएँ न लिखना निश्चित रुप में ब्राह्मणवाद का विरोध है। यह स्पष्ट मालूम होता है।"[52]

सिद्धाचार्यों के बाद 15 वीं शदी में शूद्र मुनि सरला दास आये जिनको उड़िया साहित्य में 'आदिकवि' कहा जाता है। सरला दास को उड़िया साहित्य इतिहास में प्रथम कवि माना जाता है। उन्होंने उड़िया भाषा में संरचनात्मक वाक्य रचना पद्धति

[52] उड़िया दलित साहित्य, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 6

की स्थापना किया, इसलिए उन्हें उड़िया साहित्य का जनक कहा जाता है। वह जाति से शूद्र थे और कपिलेन्द्र देव के शासन काल में 'महाभारत' की रचना साधारण जनता की भाषा में की थी। सरला दास अपने तीन महत्वपूर्ण रचनाओं के लिए प्रसिद्ध थे। उन रचनाओं का नाम है- उड़िया महाभारत, विलंका रामायण एवं चंडीपुराण। उनके मन में जाति-प्रथा के विरूद्ध सशक्त सामाजिक बदलाव की भावना थी। उस समय समाज में उच्च वर्ण कही जानेवाले ब्राह्मण साधारण जनता के द्वारा व्यवहृत भाषा को नज़र अंदाज़ करते थे। सरला दास ब्राह्मणों के व्यवहार, चरित्र और चालाकी को अच्छी तरह से जानते थे। जाति से शूद्र होने के नाते महाभारत की रचना उन्होंने सरल भाषा में की है ताकि साधारण जनता समझ सके।

सारला दास के बाद 'पंच सखा' (पांच सिद्ध कवि) का आगमन हुआ है। उन पंच सखाओं का नाम इस प्रकार है - बलराम दास, जगन्नाथ दास, अनन्त दास, यशवन्त दास और अच्यूतानन्द दास। इन्होंने 1450 से 1550 ई. शदी तक उड़िया साहित्य में आधिपत्य विस्तार किया। इन कवियों के बारे में बासुदेव सुनानी का कहना है 'उड़िया साहित्य को सारे विश्व में श्रेष्ठ स्थान देने एवं एक स्वतंत्र मर्यादा के साथ-साथ परिचय बनाने में इन कवियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन कवियों को निकाल दिया जाए तो उडिया साहित्य का शरीर पंगु हो जाएगा।'[53] वे कवि सरला दास से प्रभावित थे। इन्होंने संस्कृत भाषा का विरोध करते हुए उड़िसा के धार्मिक ग्रंथों को जन भाषा में लिख कर साधारण लोगों तक पहुँचाया। इनके द्वारा रचित प्रमुख ग्रंथों के नाम इस प्रकार है जगन्नाथ दास-उड़िया भागवत, बलराम दास-जगमोहन रामायण एवं लक्ष्मीपुराण, अच्यूतानंद दास-हरिवंश, यशवंत दास-प्रेम भक्ति ब्रह्मगीत, एवं अनंतदास हेतुदय भागवत आदि। वे सब बैष्णव थे और बौद्ध धर्म पर

[53] उड़िया दलित साहित्य, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 15

विश्वास रखते थे। वे पाँच सखाएँ साधारण कवि नहीं थे परन्तु समाज में परिवर्तन लाने वाले थे। उनकी रचनाओं में जो वास्तविकता और सत्यता है, वह इस प्रकार है-

उन्होंने मूर्ति पूजा का विरोध किया और निर्गुण ब्रह्म के प्रति विश्वास जगाया। उन्होंने अपने आपको भगवान के प्रति संपूर्ण रुप में समर्पित कर दिया। उन्होंने ब्राह्मणवाद और अंधविश्वास का घोर विरोध किया। उन्होंने जाति-प्रथा का भी खुल कर विरोध किया। शूद्रों के लिए मंदिर प्रवेश और वेद-पुराण पढ़ने का अधिकार मांगा है। वे अशिक्षित लोगों के पक्ष में थे। यानि कि समाज में कम पढ़े-लिखे लोगों को अपने साथ लेकर चलने की प्रवृत्ति उनमें थी। पर इन कवियों की रचना धार्मिक बन कर ही रह गयी। इनका साहित्यिक आन्दोलन ब्राह्मणवाद का विरोध नहीं कर सका बल्कि इन कवियों ने ब्राह्मणवाद के साथ समझौता कर लिया।

बलराम दास पाँच सखाओं में से एक थे। उन्होंने 'लक्ष्मीपुराण' और 'रामायण' की रचना की थी। बलराम दास ने उड़िया भाषा में प्रथम 'रामायण' लिखा है। उनका सपना यह था कि समाज में फैली जाति-प्रथा को खत्म किया जाए, शायद इसीलिए ब्राह्मण-पुरोहित जो कि धर्म के नाम पर व्यापार कर रहे थे, उन्होंने इसका कठोर विरोध किया है। पुरी का एक बासिन्दा होने के नाते वहाँ के ब्राह्मणों के द्वारा किये जाने वाला शोषण उन्होंने देखा है और जिसका वर्णन रामायण में मिलता है। ब्राह्मणों के द्वारा रामायण में जो शोषण हुआ है, वह इस प्रकार है- एक दिन राम, सीता और लक्ष्मण साथ में हिन्दू दर्शनीय स्थान 'गया' गये थे। जब तीनों 'पिंड़दान' के बाद वापस आ रहे थे तब ब्राह्मणों ने रोका और दान-दक्षिणा मांगा। प्रत्युत्तर में राम ने ब्राह्मणों से कहा हम संन्यासी है और हमारे पास देने को कुछ नहीं है। ब्राह्मण-पुरोहितों ने उनकी बातें नहीं मानी और पाँच कोश दूर तक चल पड़े। सीता के पहने हुए गहनों पर ब्राह्मणों की नज़र पड़ी और राम से मांगे। राम उनके प्रस्ताव से राजी नहीं हुआ। ब्राह्मण दान को लेकर जिद पर आ गये और अंत में सीता के शरीर से गहने

जबर्दस्ती खींचने लगे। इस प्रकार भयानक परिस्थिति से बचने के लिए राम के पास और कोई उपाय नहीं था, इसीलिए उनके कहने पर लक्ष्मण ने सीता की पहनी हुई सारी का कुछ अंश काट दिया, जहाँ ब्राह्मणों ने पकड़ा था। अंत में ब्राह्मणों को कुछ नहीं मिला है। इस तरह उस समय समाज में ब्राह्मण लोग साधारण जनता का शोषण करते थे।

'लक्ष्मीपुराण' एक अन्य अद्‌भूत काव्य-रचना उड़िया साहित्य में है, जिसमें लेखक बलराम दास ने स्त्री सशक्तिकरण और समाज में जाति-प्रथा के बारे में उल्लेख किया है। यह कहानी तीन पात्र जगन्नाथ, बलभद्र और लक्ष्मी को लेकर बनी है। इसमें जगन्नाथ के बड़े भाई बलभद्र और पत्नी लक्ष्मी है। 'लक्ष्मीपुराण' का गद्य में अनुवाद जगन्नाथ प्रसाद दास ने किया है। 'लक्ष्मीपुराण' की कहानी इस प्रकार है- जगन्नाथ और उनके बड़े भाई बलभद्र जंगल में शिकार करते समय, बलभद्र ने जगन्नाथ से कहा तुम्हारी स्त्री लक्ष्मी हमेशा चंडाल और दलितों के घर में जाती है। बिना स्नान किए मंदिरों में प्रवेश करती है, यह ब्राह्मणों के लिए ठीक नहीं है। दलितों की वस्ती में घर बनाकर तुम अपनी स्त्री के साथ रहो पर मंदिर में मत आओ। इस प्रकार जगन्नाथ अपनी स्त्री को छोड़कर भाई के साथ मंदिर में रहा और बहुत कुछ भोगा। अंत में जगन्नाथ को अपनी स्त्री से माफी मांगनी पड़ी। डॉ. मायाधर मानसिंह ने इस पुराण के बारे में यह बताया है कि- 'इस किताब ने हिन्दू समाज में स्थित जाति-प्रथा को तोड़ा है और इसके साथ-साथ स्त्री सशक्तिकरण परिवार एवं समाज दोनों जगह पर हुआ है।' [54]

पंच सखा के बाद आये भीमभोई (1855-1895) आधुनिक प्रगतिशील कवि के रुप में जाने जाते हैं। वे अपनी प्रमुख रचना 'स्तुति चिंतामणी', 'स्तुति निषेध' ग्रंथ एवं

[54] उड़िया साहित्य का इतिहास, डॉ. मायाधर मानसिंह, पृ. सं. 295

'निर्वेद साधना' के लिए प्रसिद्ध हैं। उनके विचार जाति-प्रथा और ब्राह्मणवाद के खिलाफ थे। जब उनके समकालीन कवि स्त्री एवं प्रकृति के सौन्दर्य तथा रहस्य के बारे में लिख रहे थे, तब भीम भोई ने समाज का वास्तविक चित्रण किया। भीमभोई के बारे में लेखिका सुप्रिया मल्लिक का कहना है कि "उड़िसा में भीमभोई का साहित्य ही यथार्थ में दलित साहित्य है। इनकी रचनाओं में हिन्दू धर्म में सामाजिक वैषम्य, जातिप्रथा और अन्याय के विरोध में उग्र प्रतिक्रिया है। अस्पृश्यों के घरों में खाना उनकी कविताओं का एक नियम है किंतु ब्राह्मणों के घर में पानी स्पर्श न करने के लिए उन्होंने घोषणा की है।" [55] वह हमेशा सरल भाषा में अपने विचार व्यक्त करते थे जो कि साधारण जनता को समझने में आसान होता था। भीम भोई जाति से एक आदिवासी कंध थे। उनका भी समाज में जाति-प्रथा, छुआछूत और अस्पृश्यता को लेकर बहुत अपमान हुआ है।

भीम भोई ने यह सोचा है कि समाज में जो भेद-भाव है, उसका मुख्य कारण ब्राह्मणवाद ही है। इसलिए उन्होंने जाति उन्मूलन का समर्थन किया। भीम भोई जानते थे कि जाति के नाम पर समाज में फैले अमानवीय, जघन्य, अंधविश्वास आदि इन्सान-इन्सान में भिन्नता और घृणा भाव पैदा करेगा। उनका विश्वास यह था कि एक दिन जरूर समाज से जाति-प्रथा खत्म हो जाएगी। इसलिए उन्होंने यह लिखा है कि-

"हृदय और आत्मा में सब

एक जगह खाएगें

कर्म के आधार पर कोई भी भेद

[55] उड़िया दलित साहित्य, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 259

समाज में नहीं रहेगा।”56

भीम भोई संगीत के माध्यम से अपने विचारों को साधारण जनता तक पहुँचाने के लिए एक जगह से दूसरी जगह जाते थे। ब्राह्मणवाद के पीछे जो अंधविश्वास जुड़ा था, उन्होंने उसका खुलासा किया। साधारण जनता के मन में ब्राह्मणवाद के विरुद्ध चेतना जगायी। वह एक कवि और सामाजिक कार्यकर्ता थे, जिन्होंने एक पारंपरिक शिक्षानुष्ठान से शिक्षा प्राप्त किया था। उनका आन्दोलन राजा, जमींदारों, प्रशासन और ब्राह्मणों के लिए बड़ा चुनौतिपूर्ण था। महिमा गोसाईं के बाद उड़िशा में उन्होंने महिमा धर्म का प्रचार-प्रसार किया। यह धर्म ब्राह्मणवाद और हिन्दूवाद के खिलाफ था। इसलिए समाज में अछूत कहे जाने वाले दलित ने महिमा धर्म को ग्रहण किया और दैनंदिन जीवन में अत्याचार से मुक्त रहा। उन्होंने इस धर्म का प्रचार-प्रसार बड़े सिद्धत के साथ पूरे देश में जैसा छत्तीशगढ़, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र राज्य और नेपाल जैसे देश में किया।

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में उड़िया में दलित कवियों ने अपनी बात को दृढ़ता पूर्वक कहने लगे। इन कवियों ने स्वयं की अनुभूति के आधार पर काव्य रचना किया है। इनका विद्रोह किसी व्यक्ति या समूह के लिए नहीं है बल्कि उस पूरे अमानवीय समाज के विरोध है। ऐसे अनेक दलित कवि हैं जिन्होंने इस शोषित समाज के विरुद्ध आवाज उठा रहे हैं। उन कवियों में प्रमुख हैं बासुदेव सुनानी, कुमाणमणी तंती, संजय बाग, अंजुबाला जेना एवं मोहन जेना आदि।

बिचित्रानंद नायक एक उग्र शक्तिशाली कवि थे। उन्होंने गरीबी और शोषण को लेकर सत्ताधारी वर्गों के खिलाफ आवाज उठाई। इन्सानों में भेद भाव पैदा करने वालों के विरुद्ध उन्होंने हमेशा लड़ा और समानता लाने की कोशिश की। उनके द्वारा लिखित कविता संग्रह ‘अनिर्वाण’ है। जिसमें उन्होंने कविताओं के माध्यम से

56 उड़िया दलित साहित्य, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 255

ब्राह्मणवाद पर प्रहार किया और साथ-साथ अस्पृश्यता, छूआछूत, जाति-प्रथा के विरुद्ध अपनी कलम चलायी। बिचित्रानंद की कविताओं की विषयवस्तु और तथ्यों के बारे में ज्यादा चर्चा उड़िया साहित्य में नहीं हुई है। सवर्ण आलोचकों तथा साहित्यकारों ने उनको उतना महत्व साहित्यिक क्षेत्र में नहीं दिया क्योंकि वह एक दलित था।

उड़िया के दलित कवि बासुदेव सुनानी दलित जीवन को लेकर कविता लिखने में सिद्धहस्त है। उनके कविता संग्रह 'अस्पृश्य' से ही आधुनिक उड़िया दलित साहित्य का जन्म हुआ। इसके अलावा उन्होंने और भी काव्य संग्रहों का लेखन कार्य करके, उड़िया दलित कविता को विकसित किया है।

अंजुबाला जेना एक सशक्त दलित स्त्री लेखिका है। उनकी कविताओं में अन्याय, अत्याचार और शोषण का चित्रण हुआ है। एक स्कूल शिक्षक होने के नाते उन्होंने दैनंदिन जीवन में सवर्ण शिक्षकों के द्वारा अन्याय, अत्याचार को अच्छी तरह से जाना है। स्कूल में सरस्वती, गणेश पूजा के दिन दलित छात्रों के साथ जो दुर्व्यवहार होता है, उसका चित्रण उन्होंने अपनी कविताओं में किया है। दलित छात्रों को स्कूल में मूर्ति छूने का अधिकार नहीं दिया जाता है और प्रसाद दूर से दिया जाता है।

पीताम्बर तराई एक प्रगतिशील कवि है। उनके कई कविता संग्रह है। उनमें से कुछ कविता संग्रहों का नाम इस प्रकार है – 'इत्तर', 'शूद्रकर श्लोक', 'बुन्दे लुहर पिठीरि समुद्र' आदि । उनकी कविताओं में जो मूल समस्या है, वह है लोगों का विस्थापन और एक जगह से दूसरी जगह पर स्थानांतरण। हाल में उनका एक और कविता संग्रह 'अभाजन' नाम से प्राकाशित हुआ है।

अखिल नायक उड़िया दलित साहित्य में एक होनहार कवि है। उनके साथ बचपन में जो हादसा हुआ है, उसका खुलासा अपनी कविताओं में किया है। उनके द्वारा

लिखित चार कविता संग्रह हैं। उनके कविता संग्रह की विषयवस्तु हाशिए के समाज, शोषित वर्ग, उत्पीड़न और प्रेम आदि होता है। उनका एक कविता संग्रह 'धीक' में हम इन सारी समस्याओं को देख सकते हैं। दलित समाज में जो पढ़-लिख कर नौकरी पा लिया उनको एकत्रित करने और भोगे हुए पूर्व जीवन को याद दिलाने में अखिल नायक ने अपनी लेखनी के माध्यम से कोशिश किया है। केवल अवसर प्राप्ति के बाद नहीं बल्कि नौकरी में रह कर भी कुछ करने का सपना उन्होंने अपनी जाति के लोगों में जगाया।

श्री हृषिकेश मल्लिक एक प्रतिभा संपन्न कवि हैं। उनका काव्य संग्रह 'धान साऊंटा झिअ' (धान इकठा करने वाली लड़की) , 'उजुड़ा खेतर गीत' (उजुड़ा हुआ खेत का गीत) एवं 'बसुसेण' आदि प्रमुख हैं। इनकी कविताओं में विषमतावादी समाज व्यवस्था में पल रहे दलितों की आंतरिक पीड़ा का वर्णन है। 'बसुसेण' शीर्षक कविता में कर्ण की पीड़ा का अत्यंत मार्मिक रूप से वर्णन किया गया है। जाति के कारण कर्ण को कहाँ-कहाँ दंश झेलना नहीं पड़ा। कवि अपने क्रोध को कर्ण के माध्यम से कहते हैं कि-

'जाति पूछ रहे हो मनुष्य की
मैं तो हूँ सूतपुत्र
जीह्वा में हड्डी है तो अब बताओ
कौन है पिता कुंत पुत्र पार्थ का
मैं तो हूँ सूतपुत्र।'[57]

[57] दलित आन्दोलन और दलित साहित्य, डॉ. कृष्ण चरण बेहेरा एवं श्री रविन्द्र नाथ साहु, पृ. सं. 146

इस तरह कवि हृषिकेश की कविता में दलितों की वेदना के साथ-साथ दलितों का आक्रोश भी व्यक्त है।

अक्षय कुमार बेहेरा गेय कविता के लिए लोकप्रिय माने जाते हैं। उन्होंने अपनी रचना में हमेशा अस्पृश्यता और जाति-प्रथा के विरुद्ध अपना आक्रोश व्यक्त किया और अंबेडकरवाद को अपनाया। उनका योगदान कुछ पत्र-पत्रिकाओं में भी रहा है और इसका कोई प्रभाव या चर्चा मुख्य साहित्यिक क्षेत्र में देखने को नहीं मिलती है। रचना में हमेशा उनका सीधा प्रहार सामाजिक भिन्नता के विरुद्ध रहा है। समाज में व्याप्त भिन्नता से संबंधित सवाल भगवान से उन्होंने निम्न पंक्तियों के माध्यम से किया है-

"भगवान!

तुम कहाँ हो?

तुमने इन्सान को बनाया

या इन्सान ने तुमको

तुम इस सवाल का जवाब दो

एक बार इस महत्वपूर्ण सवाल का।"[58]

नरेन्द्र कुमार भोई एक युवा कवि है और उनके कविता संग्रह में सामाजिक शोषण, पूंजी, अस्पृश्यता आदि विषय का मार्मिक ढंग से वर्णन हुआ है।

इन सबके अलावा उड़िया दलित साहित्य में कई और लेखकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उनमें से सत्रुघ्न नायक, उपेन्द्र नाग, कांतिलाल मुगरी, सनातन जेना, कुमारमणी तंती, गजेन्द्र महानंद, हेमंत दालपति, मीनकेतन बारलेबड़िया, रमेश

[58] उड़िया दलित साहित्य, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 110

अली बेसांत, देवेंद्र लाल, सत्यानंद भोई और सह्देव जगत आदि प्रमुख हैं। जिनकी रचनाएँ भिविन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती है। वे सब दलित लेखकों के रुप में उड़िया दलित साहित्य में जाने जाते हैं।

1. 6 **निष्कर्ष**

उपर्युक्त तथ्यों का अवलोकन करने के उपरांत हम कह् सकते हैं कि हिन्दी और उड़िया साहित्य में दलित साहित्य की धारा 1960 ई. के बाद डॉ.अंबेडकर दर्शन को लेकर उभरी और धीरे-धीरे विकासोन्मुख हुई, जो आगे चलकर साहित्य की विभिन्न विधाओं में अपनी पह्चान बनाने लगी।

दलित साहित्य के प्रांरभिक दौर में ज्यादात्तर कविताएँ ही लिखी गई। हिन्दी और उड़िया दोनों भाषाओं की परंपरागत कविता शास्त्रीय विधानों के आलोक में लिखी गई। इस युग की कवियों ने दलितों की पीड़ा को उठाया मगर धर्म का आश्रय लेकर । इसलिए दलित रचनाकारों ने शास्त्रीय बंधनों से मुक्त साहित्य का सृजन किया। दलित साहित्यकारों ने संस्कृति और समाज से संघर्ष करते हुए अपने अधिकारों के लिए साहित्य के माध्यम से संघर्ष किया।

भारतीय समाज व्यवस्था में दलितों का स्थान अत्यंत निम्न स्तर का रहा है। दलित कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से दलित समाज के यथार्थ को प्रस्तुत किया है। दलित साहित्य को लेकर काफी वाद-विवाद है। दलित साहित्यकारों ने यही माना है कि दलित व्यक्ति के द्वारा रचा गया साहित्य ही दलित साहित्य है क्योंकि वह भुक्तभोगी होता है। अतः वह अपनी रचनाओं में दलितों की पीड़ा, व्यथा, आक्रोश को यथार्थता के साथ प्रस्तुत कर सकता है। जबकि गैर दलित साहित्यकार द्वारा वर्णित हुई पीड़ा भुक्तभोगी नहीं होती वह केवल अनुभूति का अंकन करती है।

सहानुभूति ही सही मगर सवर्ण रचनाकारों ने दलितों के प्रश्नों को अपनी शक्ति एवं सीमा में उठाया है। दलितों की करूणामयी कहानी को अनदेखा नहीं किया बल्कि उसे अपनी कविता का केन्द्र बिंदु बनाया उसकी अभिव्यक्ति की। दलित कविता उन

बेसहारा लोगों की आवाज है जो सदियों से धर्म आदि के भय से ग्रसित थे। उसका विरोध दलित कविता में दिखाई पड़ता है। दलित साहित्यकार अनेक संघर्ष से लड़ते-भिड़ते बेहतर साहित्य सृजन करने में जुटे हुए हैं जो भविष्य में दलित साहित्य को समृद्धि के पथ पर ले जाने में सहायक होगा।

उड़िया दलित कविता पर दृष्टिपात करते हुए हम कह सकते हैं कि 50 वर्ष बाद भी उड़िया दलित कविता की धारा में वह प्रवाह नहीं आ पाया जिसकी अपेक्षा की जाती है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि दलित साहित्य की चेतना सुप्त हो गयी, मगर चिंतन का सीमित दायरा और प्रतिक्रियावादी दृष्टि का परित्याग करके साहित्य की यह धारा कम समय में विकसित हो कर साहित्य के क्षितिज पर विराजमान हो सकती है। आज दलित साहित्य उड़िया साहित्य की विभिन्न धाराओं में आगे की तरफ बढ़ रहा। जिसमें चिंतन की अनंत गहराईयाँ दिखाई पड़ रही हैं, जो एक शुभ संकेत मानी जा सकती है।

द्वितीय अध्याय

ओमप्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी का व्यक्तित्व और रचना संसार

2. प्रस्तावना

2.1 ओमप्रकाश वाल्मीकि का व्यक्तित्व

2.1.1 जन्म-परिवार

2.1.2 शिक्षा

2.1.3 आजीविका

2.1.4 विवाह

2.1.5 रचना के प्रेरणा स्रोत

2.1.6 पुरस्कार

2.1.7 मृत्यु

2.2 ओमप्रकाश वाल्मीकि का कृतित्व

2.2.1 कविता-संग्रह

2.2.2 कहानी-संग्रह

2.2.3 आत्मकथा

2.2.4 आलोचनात्मक साहित्य

2.2.5 अनुवाद

2.2.6 पत्र-पत्रिकाएँ एवं संपादन

2.3 बासुदेव सुनानी का व्यक्तित्व

2.3.1 जन्म-परिवार

2.3.2 शिक्षा

2.3.3 आजीविका

2.3.4 विवाह

2.3.5 रचना के प्रेरणा स्रोत

2.3.6 पुरस्कार

2.4 बासुदेव सुनानी का कृतित्व

2.4.1 कविता-संग्रह

2.4.2 उपन्यास

2.4.3 आलोचनात्मक साहित्य

2.4.4 अनुवाद

2.4.5 पत्र-पत्रिकाएँ एवं संपादन

2.5 निष्कर्ष

द्वितीय अध्याय

ओमप्रकाश वाल्मीकि और बासुदेब सुनानी का व्यक्तित्व और रचना-संसार

2. प्रस्तावना

भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन के साथ-साथ कई सारे सामाजिक, राजनीतिक आन्दोलन हुए। डॉ. अंबेडकर ने दलित समाज के उत्थान के लिए जो संघर्ष किया, उसका व्यापक प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ा। डॉ. अंबेडकर के जो समतामूलक विचार थे, वे बाद में दलित साहित्य के रुप में स्थापित हुए।

दलित साहित्य की शुरूआत पहले मराठी में हुई। जिसमें अनेक दलित साहित्यकारों ने अपने समाज की पीड़ा और यातनाओं को साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्ति दी। मराठी के पश्चात भारत की विभिन्न भाषाओं में दलित लेखन का आरंभ हुआ। हिन्दी में भी दलित साहित्य का आरंभ आठवें दशक में हुआ। दलित साहित्य का केन्द्र बिंदु सामान्य मनुष्य है, जो शोषित, वंचित और पीड़ित दलित हैं। जिसका सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक शोषण किया गया है। दलित साहित्य मानव मुक्ति पर केन्द्रित है। वह एक तरफ भाग्य-भगवान, स्वर्ग-नर्क, पाप-पुण्य, धर्म-शास्त्र, यज्ञ, पूजा और कर्मकांड का विरोध करता है तो दूसरी तरफ समता, स्वतंत्रता, बंधुता, भाईचारा आदि पर समाज की स्थापना करना चाहता है।

दलित साहित्य को समृद्ध बनाने में हिन्दी के अनेक साहित्यकारों का योगदान रहा है। हिन्दी दलित साहित्य के समर्थ साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि का नाम इस दृष्टि से बड़े आदर के साथ लिया जाता है। उनका व्यक्तित्व एक साहित्यकार का ही व्यक्तित्व नहीं था, बल्कि एक क्रांतिकारी विचारधारा के व्यक्ति थे। वे डॉ. अंबेडकर के विचारों से प्रभावित थे। उनके साहित्य की पृष्टभूमि में दलित समुदाय का शोषण, अपमान, भोगा हुआ यथार्थ निहित है।

उड़िया दलित साहित्य में भी अनेक समर्थ साहित्यकार हुए। बासुदेव सुनानी उड़िया दलित साहित्य आन्दोलन के एक महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर माने जाते हैं। उड़िया दलित साहित्य में उनका महत्वपूर्ण योगदान है। अंबेडकर विचारधारा से प्रभावित होकर उन्होंने दलित साहित्य लेखन को अधिक समृद्ध बनाया। जिस प्रकार अंबेडकर की विचारधारा में मनुष्यता, समता, बंधुत्व आदि का महत्व है उसी प्रकार सुनानी के साहित्य का केंन्द्रबिन्दु मानवता ही है।

इन दोनों साहित्यकारों ने दलित होने की पीड़ा को स्वंय भोगा है। इसलिए इनके साहित्य में दलित समाज के कटु अनुभवों की प्रामाणिक अभिव्यक्त हुई है। ओम प्रकाश वाल्मीकि और बासुदेब सुनानी का साहित्य अपने रचनात्मक कौशल, संवेदना और शिल्प हर स्तर पर दलित साहित्य होते हुए भी यथार्थवादी साहित्य परंपरा की एक मज़बूत कड़ी है। ओम प्रकाश वाल्मीकि और बासुदेब सुनानी की रचित कृतियों में

हिन्दू समाज की वर्ण-व्यवस्था के प्रति संपूर्ण विरोध हुआ है, जो दोनों लेखकों के व्यक्तित्व की विशेषता है। अतः इन दोनों प्रमुख रचनाकारों के व्यक्तित्व को उनके कृतित्व के माध्यम से समझना आवश्यक हो जाता है।

2.1 ओमप्रकाश वाल्मीकि का व्यक्तित्व

हिन्दी साहित्य में जिन दलित लेखकों ने उल्लेखनीय लेखन कार्य किया है, उनमें चर्चित रचनाकार ओम प्रकाश वाल्मीकि का योगदान महत्वपूर्ण है। वाल्मीकि जी के साहित्य को पढ़े बिना हिन्दी जगत का दलित साहित्य अधूरा ही कहा जा सकता है। वे दुनिया के जाने माने साहित्यकारों में से एक हैं। उनकी सृजनात्मक शक्ति हिन्दी साहित्य में विशेष महत्व रखती है। उन्होंने हिन्दी के दलित साहित्य में अपनी समर्थ पहचान बनाई है। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व किसी भी परिचय का मोहताज नहीं है। हरिनारायण ठाकुर के शब्दों में "दलित साहित्य में ओमप्रकाश वाल्मीकि किसी परिचय के मोहताज नहीं हैं। सच पूछा जाए तो हिन्दी में शुद्ध रुप से दलित साहित्य की कथा-यात्रा ओम प्रकाश वाल्मीकि से ही शुरू होती है। ओम प्रकाश वाल्मीकि एक ही साथ कवि, कथाकार और विचारक हैं।"[1] फिर भी उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विषय में जानने के लिए उनके विषय में परिचय कर लेना आवश्यक

[1] दलित साहित्य का समाजशास्त्र, डॉ. हिरनारायण ठाकुर, पृ. सं. 422

है। ओमप्रकाश वाल्मीकि के व्यक्तित्व का विस्तृत अध्ययन विभिन्न पहलुओं के द्वारा निम्न प्रकार से किया जा सकता है-

2.1.1 जन्म-परिवार

आधुनिक दलित चितंकों में अपनी विशिष्ट पहचान बनाने वाले ओमप्रकाश वाल्मीकि का जन्म उत्तर प्रदेश के मुज़फ्फर नगर, बरला गाँव में 30 जून, 1950 को एक दलित परिवार में हुआ था। अपनी जन्म-तिथि के संदर्भ में उन्होंने कहा है कि "बचपन जिस परिवार में बीता वहाँ जन्म तिथि को संभाल कर रखना संभव नहीं था। जिस समय पिता जी स्कूल लेकर गये और दाखिले पर मास्टर साहब ने जो लिख दिया वहीं जन्म-तिथि बन गई।"[2]

अन्य दलित परिवारों की भांति ही ओमप्रकाश वाल्मीकि की पारिवारिक पृष्ठभूमि दयनीय थी। उनका परिवार तथा अन्य दलित परिवार वर्ण व्यवस्था की चोट से दबे हुए थे। लेखक का परिवार बहुत बड़ा था। उनके पिता का नाम छोटनलाल और माँ का नाम मुकुंदी था। वह सहारनपुर जिले के हिडंन नदी के किनारे खजूरी नामक गांव की रहने वाली थीं। छोटनलाल की पत्नी बन कर गांव में आईं तो उसे कोई उसके नाम से नहीं बल्कि सभी लोग 'खजूरिवाली' कहकर पुकारते थे। उनके पिताजी बरला में तगाओं के खेत में मेहनत-मजदूरी और बेगार करते थे। उनकी माँ

[2] जूठन, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 83

तगाओं के घरों में साफ-सफाई से लेकर खेती बाड़ी में मजदूरी करके अपना व परिवार का जीवन यापन करती थीं।

परिवार में पाँच भाई और दो बहने थीं। छोटी बहन की बचपन में मृत्यु हो गयी थी। जिसके कारण उनके परिवार की परिस्थिति कभी भी ठीक नहीं रही। परिवार में गरीबी के कारण सभी लोग काम करते थे, फिर भी सभी को दो वक्त की रोटी नसीब नहीं थी। घर के हालात बहुत कमजोर होने के कारण परिवार के प्रत्येक सदस्य को काम करना पड़ता था। गांव में कोई भी काम मिल जाए, उसे करने के लिए मजबूर थे। परिवार के सभी सदस्य अनपढ़ थे। परंतु लेखक के पिता जी उनको पढ़ाने के पक्ष में थे। माँ ओमप्रकाश वाल्मीकि को बहुत स्नेह-प्रेम देती थी। उनके लिए अपने पति से भी झगड़ा करती थीं। माँ ने पिता जी से साफ कह दिया था कि ओमप्रकाश सुअर काटने या खाल उतारने का काम बिल्कुल नहीं करेगा। लेखक के पिता जी और बड़े भाई जानवरों की खाल उतारने का घिनौना काम करते थे। भाई मदारन पूजा के समय बली पर सुअर काटकर भी लोगों को बेचने का काम करते थे। लेखक के परिवार वालों ने बहुत सारे सुअर पाल रखे थे। सुअर और मुर्गे अपने घर में लोग कुछ पैसे कमाने के लिए पालते थे क्योंकि लोग उनका अपनी मर्जी से दाम भी देते थे। सुअर को काटते समय घर के अन्य लोग मदद करते थे। इस प्रकार के काम करने से परिवार को थोड़ा सा आर्थिक सहारा मिल पाता था। लेखक ने अपने परिवार की दुर्दशा का चित्रण 'जूठन' आत्मकथा में इस प्रकार किया है- "बरसों बरस

चावल के मांड से बनी सब्जी खाकर अपने जीवन के अंधेरे तहखानों से बाहर आने का संघर्ष किया है। मांड पी-पी कर हमारे पेट फूल जाते थे। भूख मर जाती थी। यही गाय का दूध या हमारे लिए यही था स्वादिष्ट भोजन भी। यही था दारुण जीवन जिसकी दग्धता में झुलसकर जिस्म का रंग बदल गया है।"[3] इस प्रकार कहा जा सकता है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि की पारिवारिक स्थिति बहुत ही दयनीय रही है।

2.1.2 शिक्षा

ओमप्रकाश वाल्मीकि जिस बस्ती में रहते थे वहाँ सेवकराम मसीही नामक व्यक्ति आकर दलितों के बच्चों को पढ़ाने लगा था। लेखक ने भी आरंभिक शिक्षा उन्हीं के पास से प्राप्त की। एक दिन सेवकराम मसीही और लेखक के पिता जी के बीच कुछ झगड़े के कारण सेवकराम मसीही के पास लेखक का पढ़ना-लिखना बंद हुआ। परिणाम स्वरुप लेखक का दाखिला गांव के बेसिक प्राईमेरी स्कूल में कक्षा पांचवी तक पढ़ाई के लिए हो गया। जहाँ केवल गांव के त्यागियों के बच्चे ही पढ़ते थे। ओमप्रकाश वाल्मीकि का स्कूल में आना किसी को अच्छा नहीं लगता था। इसलिए सवर्ण लड़के और मास्टर जानबूझकर लेखक की जाति को लेकर उन्हें अपमानित करते थे। निरंतर उन्हें 'चूहड़ा' कहकर चिढ़ाते थे। उनसे पूरे स्कूल और स्कूल के मैदान में झाड़ू लगवाया जाता था। वे दिन कथाकार के लिए बहुत ही यातनापूर्ण रहे हैं। लेखक अपनी आत्मकथा 'जूठन' में लिखते हैं "त्यागियों के बच्चे चूहड़े का कहकर

[3] जूठन, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.सं. 13

चिढ़ाते थे। कभी-कभी बिना कारण पिटाई भी कर देते थे। एक अजीब-सी यातनापूर्ण जिंदगी थी, जिसने मुझे अंतर्मुखी और चिड़चिड़ा, तुनकमिजाजी बना दिया था। स्कूल में प्यास लगे तो हैंडपंप के पास खड़े रहकर किसी के आने का इंतजार करना पड़ता था। हैंडपंप छूने पर बवेला हो जाता था। लड़के तो पीटते ही थे। तरह-तरह के हथकंडे अपनाए जाते थे ताकि मैं स्कूल छोड़कर भाग जाऊँ और मैं भी इन्हीं कामों में लग जाऊँ, जिनके लिए मेरा जन्म हुआ था। उनके अनुसार स्कूल आना मेरी अनाधिकार चेष्टा थी। "[4]

लेखक ने बेसिक प्राथमिक विद्यालय में पांचवी पास करने के बाद छठी कक्षा में दाखिला गांव के ही त्यागी इंटर कॉलेज (जो अब बदल कर बरला इंटर कॉलेज हो गया है) में लिया। इसी कॉलेज में ओप्रकाश वाल्मीकि ने आगे की शिक्षा पूरी की। कथाकार ने छठी कक्षा से बारहवीं कक्षा तक इसी कॉलेज में पढ़ाई की। बारहवीं कक्षा में उन्हें जाति भेद का शिकार बना कर फेल करवा दिया गया। उनके बड़े भाई जसवीर उन दिनों 'सर्वे ऑफ इंडिया' देहरादून में नौकरी करते थे। उन्होंने वाल्मीकि को देहरादून के डी.ए.वी. कॉलेज में बारहवीं कक्षा में दाखिला दिलवाया। सन् 1967 में 65 प्रतिशत अंकों से उन्होंने 12 वीं कक्षा की परीक्षा उतीर्ण की। जब उनका तबादला ऑडिनेंस फैक्ट्री, चन्द्रपुर से देहरादून हो गया तब उन्होंने अधूरी पढ़ाई शुरु की। उन्होंने सन् 1990 में बी.ए. की परीक्षा 57 प्रतिशत अंक लेकर और 1992 में

[4] जूठन, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.सं. 13

एम्.ए (हिन्दी साहित्य) हेमबती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर से उतीर्ण की।

2.1.3 आजीविका

ओमप्रकाश वाल्मीकि हाई स्कूल पास करने के बाद बारहवीं के लिए देहरादून आ गये थे। वहाँ रहकर उन्हें पता चला कि रायपुर में कोई बम बनाने की ऑर्डिनेंस फेक्ट्री है। जहाँ हाई स्कूल पास अभ्यर्थियों को लिया जाता है। वहाँ लेखक ने फार्म भरा और उनकी नियुक्ति वहाँ हो गयी। वहाँ ट्रेनिंग करते समय उन्हें भत्ते के रुप में 107 रूपये मिलते थे। यहीं से ओमप्रकाश वाल्मीकि की नौकरी का आरंभ हो जाता है। तत्पश्चात आर्डेनेंस फेक्ट्री अमरनाथ मुंबई में ढ़ाई वर्ष ड्राफ्टमैन की ट्रेनिंग के बाद आर्डिनेंस फेक्ट्री चन्द्रपुर में नियुक्ति हो गयी। यहाँ 13 वर्षों तक नौकरी करने के पश्चात 22 जून 1985 को आर्डिनेंस फेक्ट्री चन्द्रपुर से देहरादून में स्थानांतरण हो गया। जहाँ वे अपने जीवन के अंत तक मैनेजर तकनीकि के पद पर कार्यरत रहे।

2.1.4 विवाह

मुंबई की ट्रेनिंग के बाद कथाकार की नियुक्ति चन्द्रपुर महाराष्ट्र में हो गयी थी। इन्हीं दिनों इनके भाई जसवीर ने कथाकार की इच्छा-अनिच्छा जाने बगैर उनकी शादि तय कर दी थी। थोड़ा बहुत विरोध के बावजूद उनका विवाह स्वर्णलता भाभी की छोटी बहन चन्द्रकला (चन्दर) से 27 दिसम्बर 1973 को संपन्न हुआ। उनकी पत्नी

चन्द्रकला ने उन्हें संघर्षों के दिनों में बहुत संभाला। ओमप्रकाश वाल्मीकि के साथ उन्होंने कई नाटकों में अभिनय भी किया।

2.1.5 रचना के प्रेरणा-स्त्रोत

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने बचपन में अपनी माँ से अनेक कहानियाँ सुनी थीं। उसने लंबी-लंबी कहानियाँ सुनायी थीं, जो कि कई रातों तक धारावाहिक रुप में चलती रहती थीं। वहीं से कहानियों के प्रति उनके मन में जो लगाव बना, वह अंत तक जारी रहा। माँ से सीखी कला का उपयोग उस वक्त हुआ जब राजेन्द्र यादव जी ने दिल्ली की दलित और मज़दूर बस्तियों में कहानी-पाठ का कार्यक्रम चलाया था। 1994 में हंस का वार्षिक कार्यक्रम कहानी पर हुआ था। उस कार्यक्रम में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने 'पच्चीस चौका डेढ़ सौ' कहानी का पाठ किया था।

वाल्मीकि ने स्कूल से पुस्तकें पढ़ना आरंभ किया था। कक्षा आठवीं में ही शरतचन्द्र, प्रेमचंद, रवीन्द्रनाथ टैगौर को पढ़ डाला था। ढिबरी की कम रोशनी में उपन्यास, कहानियाँ पढ़कर वे अपनी माँ को सुनाते थे। इस सिलसिले में उनका झुकाव साहित्य की ओर अनायास ही बढ़ गया। स्कूल तथा सार्वजनिक कार्यक्रमों में कथपोकथन करते थे। ओमप्रकाश वाल्मीकि अपने लेख 'मेरी रचना प्रक्रिया : अस्मिता की तलाश' में लिखते हैं कि "अपने स्कूली जीवन से ही मैंने कविताएँ, कहानियाँ

लिखना शुरू कर दिया था। बरला से देहरादून आया था, आगे पढ़ाई करने के लिए। लेकिन हालात ने पढ़ाई छुड़ाकर तकनीकी शिक्षा की ओर प्रवृत्त कर दिया। फिर भी देहरादून से जबलपुर, बंबई, चंद्रपुर तक मेरी साहित्यिक यात्रा थमी नहीं थी। कविताएँ और कहानियाँ ही नहीं रंगमंच भी इस यात्रा में साथ-साथ चल रहा था। डॉ. अंबेडकर के जीवन-संघर्ष से परिचय देहरादून में रहते हुए हो चुका था। यह परिचय बंबई प्रवास में और ज्यादा प्रगाढ़ हुआ। दलित आंदोलन से जुड़े लेखकों, कवियों, रंगकर्मियों को करीब से देखने का मौका मिला। उनकी जद्दोजहद और संघर्ष की अटूट भावना ने मुझे लिखने की प्रेरणा दी।" [5] महात्मा गाँधी की लिखी हुई कई पुस्तकें उन्होंने पुस्तकालय से पढ़ी थीं। गाँधी जी के अछूतोद्धार के लिए किये गये कार्यक्रमों ने उन्हें आकर्षित किया था। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने डॉ. अंबेडकर के समग्र जीवन को पढ़ा। महात्मा गाँधी और डॉ. अंबेडकर दोनों ने भी अछूतोद्धार का कार्य किया परंतु गाँधी जी से अधिक उन्हें डॉ. अंबेडकर के जीवन में अपना दर्द दिखाई देने लगा। ओमप्रकाश वाल्मीकि मराठी के बाबूराव बागूल और रुसी कहानीकार चेखव से सर्वाधिक प्रभावित हैं। बाबूराव बागूल की कहानियों में दलित अस्मिता और दलित चेतना का जो क्रांतिकारी रुप है उसे वाल्मीकि जी पसंद करते हैं। चेखव की कहानी कला में जो बारीकियाँ हैं, वह सब और कहीं नहीं हैं।

[5] मुख्यधारा और दलित साहित्य, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 17

2.1.6 मृत्यु

ओमप्रकाश वाल्मीकि पिछले डेढ़ वर्ष से बीमार थे। वे कैंसर बीमारी से पीड़ित थे। लगभग डेढ़ वर्ष पहले उनका ऑपरेशन सफल रहा और वह पूरी तरह से ठीक भी हो गये थे। लेकिन इस बीमारी के चलते 17 नवंबर 2013 को प्रातः काल देहरादून में उनका देहांत हो गया।

2.1. 7 पुरस्कार

प्रसिद्ध दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि को कई सम्मान प्राप्त हुए हैं। साथ ही वे बहुत से पदों पर कार्यरत भी रहे हैं। उन्हें प्रदान किये गए सम्मानों का विवरण इस प्रकार है-

a. 'प्रथम दलित लेखन साहित्य सम्मेलन', की अध्यक्षता (1993)

b. 'डॉ.अंबेडकर' राष्ट्रीय पुरस्कार (1993)

c. परिवेश सम्मान (1995)

d. जय श्री सम्मान (1996)

e. कथा क्रम सम्मान (2001)

f. न्यू इंडिया बुक प्राइज, 2004 (एक लाख रुपये)

g. साहित्य भूषण सम्मान, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थना, लखनऊ (2006)

h. 8वाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन सम्मान, न्यूयार्क, अमेरिका में (2007)

i. 28 वें अस्मितादर्श साहित्य सम्मेलन, चन्द्रपुर, महाराष्ट्र में अध्यक्ष (2008)

j. लगभग 60 नाटकों में अभिनय एवं निर्देशन, अनुवाद- सायरन का शहर

k. भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला (IIAS, Shimla) में रिसर्च फेलो थे।

2.2 कृतित्व

ओमप्रकाश वाल्मीकि का स्थान हिन्दी दलित साहित्य में सर्वोपरि है। उनके साहित्य में मनुष्य का यथार्थ चित्रण हुआ है। वे स्कूली जीवन से ही साहित्य सृजन करने लगे थे। उनको साहित्य जगत में पैर जमाने के लिए बहुत सारे संघर्षों का सामना करना पड़ा था। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने कहानी, कविता, नाटक, आलोचना, आत्मकथा एवं इतिहास ग्रंथ आदि विधाओं पर कलम चला कर साहित्य जगत में अपना नाम रोशन किया। उनके साहित्य में मनुष्य की चिंता व्यक्त हुई है। दलित जीवन का सच्चा और प्रामाणिक चित्रण उनकी कहानियों में, कविताओं में, आत्मकथा में और अन्य साहित्य में हुआ है। उनके साहित्य का संक्षिप्त परिचय यहाँ द्रष्टव्य है।

2.2.1 कविता संग्रह-

ओमप्रकाश वाल्मीकि के चार कविता-संग्रह प्रकाशित हैं। उनके चार काव्य-संग्रह इस प्रकार हैं 'सदियों का संताप', 'बस्स! बहुत हो चुका', 'अब और नहीं...' एवं 'शब्द झूठ नहीं बोलते'।

सदियों का संताप

'सदियों का संताप' ओमप्रकाश वाल्मीकि का पहला काव्य-संग्रह है। इस काव्य-संग्रह में 19 कविताएँ हैं। इन कविताओं में ऐसी कोई कविता नहीं है, जिसके मूल में जातिवाद और गरीबी न हो। ओम प्रकाश वाल्मीकि जी स्वयं लिखते हैं कि "इस संग्रह की सभी कविताएँ वर्ष 1980 से 1989 के बीच लिखी गयीं। जिनमें आक्रोश, विद्रोह, आग्रह, आक्रामकता, भाषिक विकास, दलित जीवन संघर्ष की पृष्ठभूमि, उत्पीड़न के संदर्भ बिंदु और उनसे उत्पन्न वेदनाओं के दंश, दलित संस्कृति की विशिष्ट जीवन-दृष्टि साफ-साफ देखी जा सकती है।"[6] इस कविता संग्रह की कविताएँ अनेक भौतिक समस्याओं से जुड़ी हुई हैं। परंपरागत रुप से दलितों का कुछ भी नहीं है, दलित हमेशा से गाँव के ठाकुरों पर आश्रित रहे हैं। तालाब, कुँआ, खेत, हल, गली-मुहल्ला सब कुछ ठाकुरों के हैं। अपना केवल मेहनत के अलावा कुछ नहीं रहता है। निम्न कविता इस भाव को व्यक्त करती है-

"चूल्हा मिट्टी का, मिट्टी तालाब की

तालाब ठाकुर का।

भूख रोटी की, रोटी बाजरे की

[6] सदियों का संताप, ओम प्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 10

बाजरा खेत का, खेत ठाकुर का।

बैल ठाकुर का, हल ठाकुर का

हल की मूठ पर हथेली अपनी, फसल ठाकुर की।

कुँआ ठाकुर का, पानी ठाकुर का

खेत-खलिहान ठाकुर के, गली-मुहल्ले ठाकुर के

फिर अपना क्या ? गाँव? शहर ? देश?” [7]

बस्स! बहुत हो चुका (1997)

‘बस्स! बहुत हो चुका’ का प्रकाशन सन् 1997 में वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से हुआ है। इसमें कुल 50 कविताएँ हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने यह कविता-संग्रह दलित चेतना के प्रखर कवि हीराडोम को सादर समर्पित किया है। अपने आप में संग्रह की सभी कविताएँ पठनीय हैं। छोटी-छोटी कविताएँ बहुत अर्थों को समेटे हुए हैं। इस कविता-संग्रह का केन्द्र बिंदु अस्पृश्यता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी कविताओं में घृणा, हिंसा, विषमता पर आधारित व्यवस्था को नकार कर समता, स्वतंत्रता और

[7] सदियों का संताप- ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 13

बंधुता वाले समाज की स्थापना करने के लिए कोशिश की है। इस कविता-संग्रह की कविताएँ ज्यादातर छोटी-छोटी हैं पर ये कविताएँ अपने आप में वृहद अर्थों को समेटे हुए हैं। इस संग्रह की हर एक कविता का विषय गंभीर तथा क्षेत्र व्यापक है। समाज पर प्रश्न चिन्ह लगाकर और अस्पृश्यता पर तीखा प्रहार करते हुए निम्न कविता में लिखते हैं कि-

"जिस रास्ते चलकर तुम पहुँचे हो, इस धरती पर

उसी रास्ते चलकर आया मैं भी

फिर तुम्हारा क़द, इतना ऊँचा

कि आसमान भी छू लेते हो, तुम आसानी से

और मेरा क़द इतना छोटा, कि मैं छू नहीं सकता

ज़मींन भी !" [8]

अब और नहीं...(2009)

ओमप्रकाश वाल्मीकि जी का यह तीसरा काव्य-संग्रह है जिसका प्रकाशन सन् 2009 में राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली से हुआ है। इसमें कुल 51 कविताएँ हैं। इस

[8] बस्स ! बहुत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 76

कविता संग्रह की कविताओं में ऐतिहासिक संदर्भों को वर्तमान से जोड़कर मिथकों को नये अर्थों में प्रस्तुत किया गया है।

शब्द झूठ नहीं बोलते (2012)

ओमप्रकाश वाल्मीकि का यह चौथा काव्य-संग्रह है जिसका प्रकाशन सन् 2012 में अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली से हुआ है। इस कविता-संग्रह में 44 कविताएँ हैं। लेखक ने यह कविता संग्रह दलित कविता को नया मोड़ देने वाले कवि लोकनाथ यशवंत को सादर समर्पित किया है। इस संग्रह की कविताओं में मनुष्य और प्रकृति के बीच जो गहरा संबंध है उसकी अभिव्यक्ति हुई है। 'शब्द झूठ नहीं बोलते' संग्रह की कविताओं का भावबोध मनुष्यता के साथ खड़ा है।

2.2.2 कहानी-संग्रह

ओमप्रकाश वाल्मीकि के तीन कहानी-संग्रह प्रकाशित हैं। जो इस प्रकार है 'सलाम', 'घुसपैठिये' और 'छतरी'।

सलाम (2000)

'सलाम' कहानी-संग्रह का प्रकाशन सन् 2000 में राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली से हुआ है। इसमें कुल 14 कहानियाँ संकलित हैं। 'सलाम' कहानी-संग्रह की सभी कहानियों में दलित जीवन के समाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और शैक्षणिक आदि का यथार्थ चित्रण है। दलित जीवन की व्यथा-कथा गरीबी, लाचारी का दारुण चित्रण इस संग्रह में हुआ है। ओमप्रकाश वाल्मीकि के इस संग्रह की कहानियाँ दलितों के जीवन-संघर्ष और उनकी बेचैनी के जीवन्त दस्तावेज हैं, दलित जीवन की व्यथा-कथा, छटपटाहट, भोगे हुए जीवन की यथार्थता और सरोकार इन कहानियों में साफ-साफ दिखायी पड़ते हैं। वाल्मीकि जी ने जहाँ साहित्य में वर्चस्व की सत्ता को चुनौती दी है, वहीं दबे-कुचले, शोषित-पीड़ित जन समूह को बड़ी के साथ मुखरता उनके इर्द-गिर्द फैली विंसगतियों पर भी चोट की है। जो दलित विमर्श को सार्थक और गुणात्मक बनाता है। समकालीन हिन्दी कहानी में दलित चेतना की दस्तक देने वाले कथाकार ओमप्रकाश वाल्मीकि की ये कहानियाँ अपने आप में विशिष्ट हैं। इन कहानियों में वस्तु जगत का आनंद नहीं, दारुण दुःख भोगते मनुष्यों की बेचैनी है।

घुसपैठिये (2003)

'घुसपैठिये' ओमप्रकाश वाल्मीकि का दूसरा कहानी-संग्रह है। इसे राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली ने सन् 2003 में प्रकाशित किया है। इस कहानी-संग्रह में कुल 12 कहानियाँ संकलित हैं। इस कहानी संग्रह की तमाम कहानियाँ दलित समस्याओं से जुड़ी हुई हैं। यह दलित जीवन का भोगा हुआ यथार्थ है जिसे कहानीकार ने इन कहानियों में यथार्थ रुप में चित्रित किया है। लेखक स्वयं 'घुसपैठिये' कहानी-संग्रह के बारे में लिखते हैं कि "सच तो यह है कि मैंने जैसा जीवन देखा-भोगा, महसूस किया, वैसा ही लिखने की दिखाने की कोशिश की है। मेरे ईर्द-गिर्द की दुनिया अश्लील है तो इस अश्लीलता को मैं शब्दों में किस आवरण से छिपाने की कोशिश करता। जीवन की नग्नता मात्र शब्दों से अभिव्यक्त नहीं होती है, स्थितियाँ और सामाजिक मान्यताएँ भी अश्लील होती हैं, जिसका सीधा ताल्लुक संस्कारों और परिवेश से होता है।"[9] अतः लेखक ने दलित होने के कारण भोगे हुए दुख-दर्द और पीड़ा को कहानियों के माध्यम से यथार्थ रुप में चित्रित किया है।

[9] घुसपैठिए, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 23

छतरी (2013)

यह वाल्मीकि का तीसरा कहानी-संग्रह है। यह कहानी-संग्रह भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन से सन् 2013 में प्रकाशित हुआ है। इसमें कुल 12 कहानियाँ संकलित हैं। इसमें संकलित कहानियों के माध्यम से हिन्दी जगत में चल रहे दलित विमर्श और साहित्य विमर्श के वैचारिक विचलन को समझने का प्रयास किया गया है। दलित जीवन के अनुभव, संघर्ष और जिजीविषा, इन कहानियों के केन्द्र में हैं।

2.2.3 आत्मकथा

जूठन (1997)

ओमप्रकाश वाल्मीकि की यह आत्मकथा दो खंडों में प्रकाशित हुई है। पहला सन् 1997 में और दूसरा खंड सन् 2015 में राधाकृष्ण प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है। 'जूठन' आत्मकथा में ओमप्रकाश वाल्मीकि जी के जातीय बोध की आत्मस्वीकृति का लंबा सफर है। यह आत्मकथा लेखक के जीवन अनुभवों की सफल अभिव्यक्ति है। जो लेखक की अपनी अभिव्यक्ति है वह निम्न जाति के लोगों की अभिव्तक्ति का माध्यम बनकर सामने आती है। इसलिए इस आत्मकथा में व्यक्त व्यथा-कथा स्वानुभूत है। लेखक ने अपने जीवन में जो भोगा, जिया उसको आत्मकथा में शब्दबद्ध किया। लेखक 'जूठन' आत्मकथा की भूमिका में लिखते हैं कि "तमाम कष्टों, यातनाओं, उपेक्षाओं,

प्रताड़नाओं, को एक बार फिर जीना पड़ा। उस दौरान गहरी मानसिक यंत्रणाएँ मैंने भोगीं। स्वयं को परत-दर-परत उधेड़ते हुए कई बार लगा-कितना दुखदायी है यह सब!"[10] इसका अनुवाद कई भारतीय भाषाओं में हो चुका है।

2.2.4 आलोचनात्मक साहित्य

दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र (2001)

लेखक का मानना है कि दलित साहित्य के एक अलग से सौंदर्यशास्त्र की परिकल्पना से हिन्दी साहित्य का विघटन नहीं बल्कि विस्तार ही होगा। जिसके कारण यह पुस्तक लिखी गई। दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र नामक आलोचनात्मक पुस्तक सन् 2001 में राधाकृष्ण प्रकाशन से प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक में दलित साहित्य की अवधारणा, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, दलित साहित्य की वैचारिकता एवं दार्शनिकता, दलित साहित्य की सामाजिकता, दलित साहित्य की शिल्पगत प्रवृतियाँ, भाषा आदि विभिन्न पहलूओं का अनुशीलन किया गया है।

मुख्यधारा और दलित साहित्य (2009)

आज के दलित चिंतकों में प्रमुख ओमप्रकाश वाल्मीकि की यह पुस्तक बताती है कि भारतीय जीवन में जाति के अस्तित्व ने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक,

[10] जूठन, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.सं. 8

शौक्षणिक जीवन को किस तरह प्रभावित किया है। साहित्य भी इससे अछूता नहीं है। दलित साहित्य आज मुख्य धारा के साहित्यिक से किस तरह भिन्न है। इस पुस्तक में इस सवाल के साथ जाति-व्यवस्था और बेगार प्रथाओं पर भी लेख मिलते हैं।

सफाई देवता (2008)

ओमप्रकाश वाल्मीकि की यह पुस्तक राधाकृष्ण प्रकाशन के द्वारा सन् 2008 में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में भंगी, वाल्मीकि समाज की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ-साथ मौजूदा वास्तविक स्थिति का वर्णन हुआ है।

अनुवाद

1.ओमप्रकाश वाल्मीकि ने मराठी कवि अरुण काले के कविता-संग्रह का अनुवाद हिन्दी में 'सायरन का शहर' नाम से किया।

2. लेखक कांचाआ इलैया की पुस्तक 'why I am not Hindu' का हिन्दी में अनुवाद किया।

पत्र-पत्रिकाएँ एवं संपादन

वाल्मीकि ने लेखन कार्य के साथ-साथ कई अंकों के संपादन भी किये हैं जैसे कि

1. प्रज्ञा साहित्य (दलित साहित्य विशेषांक), मार्च-जून, 1994 (अतिथि संपादन)
2. दलित हस्तक्षेप (रमणिका गुप्ता के दलित विषयक लेख) 2004, शिल्पायन प्रकाशन नई दिल्ली।
3. तीसरा पक्ष, त्रैमासिक, जबलपुर, सलाहकार संपादक

2.3 बासुदेव सुनानी का व्यक्तित्व

उड़िया दलित साहित्य में बासुदेव सुनानी का महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी विचारधारा और साहित्यिक योगदान के कारण उन्हें छोड़कर उड़िया दलित साहित्य का अध्ययन नहीं किया जा सकता। वे दरिद्रता भूख को भूल कर अपनी अस्मिता के लिए अंबेडकरी आन्दोलन में शामिल हैं। सुनानी ने दलित होने की पीड़ा को भोगा है। दलित समाज के दुःख, उनके प्रश्न इत्यादि का उन्होंने स्वयं अनुभव किया है। उनका लेखन स्वानुभूति पर आधारित है। उनके साहित्य के केन्द्र में पीड़ित, शोषित तथा अत्याचारी वर्ग के शोषण का शिकार दलित समाज है। उनके साहित्य में विद्रोही दर्शन मुख्यतः गौतम बुद्ध, डॉ.अंबेडकर और मार्क्सवादी दर्शन का प्रभाव दिखाई देता है। वे मनुष्यों को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हैं। इसलिए उनके साहित्य में विश्व मानवता की पक्षधरता विद्यमान है।

2.3.1 जन्म-परिवार

उड़िया साहित्य में आधुनिक दलित चिंतकों में अपनी विशिष्ट पह्चान बनाने वाले बासुदेव सुनानी का जन्म उस समय उड़िसा में कालाहांडी जिले के अंतर्गत कोमना ब्लाक के मानीगुड़ा गाँव में 27 सितंबर, सन् 1962 को एक दलित परिवार में हुआ था। उस समय कालाहांडी जिले के अंतर्गत कोमना ब्लाक में मानीगुड़ा गांव आता था। अब मानीगुड़ा कालाहांडी जिले में नहीं है, बल्कि बदल कर नुआपड़ा जिले के अंतर्गत आता है। लेखक के घर में भाई-बहन मिलकर कुल दस लोग हैं। उनमें से लेखक भाई-बह्नों में सातवाँ और भाईयों में मंझला है। इसलिए घर में उनको 'मंझला' बुलाते हैं। उनके पिता गुरूवारू सुनानी जो कि एक कृषक हैं और माता जाईफुल सुनानी जो कि घर की देखभाल करती हैं। दोनों माता-पिता अब इस दुनिया में नहीं रहे हैं। उनके पिता गुरूवारू सुनानी गाँव में चौकीदार थे। उस समय नुआपड़ा जिले कालाहांडि के सेंट्रल प्रोविजन के अधीन में था। इसलिए लेखक के पिता चौकीदार प्रशिक्षण के लिए पैदल रायपुत जाते थे और वहाँ प्रशिक्षण लेते थे। लेखक ने बचपन में देखा है कि उनके पिता के सिर पर सफेद रंग की टोपी में लाल रंग की एक पट्टी लगी हुई थी। और उसे वह यत्न में रखते थे। उनके पिता चौकीदार थे इसीलिए गाँव वाले तथा गाँव के आसपास के लोग उनके घर को चौकीदार घर बुलाते थे।

लेखक के पिताजी बहुत अच्छा शहनाई बजाते थे। आस-पास के गाँव में उनके पिताजी को लोग बहुत मानते थे जो कि शहनाई बजानेवाले दल में प्रधान थे। लेखक ने बचपन से देखा है कि किसी के घर में शादी के समय में जब पिताजी शहनाई बजाते थे तब उसी परिवार में दूल्हा के बाप ज्यादा भावुक बनकर पिताजी को सफेद धोती और सिर पर पगड़ी बांध कर संबोधित करते थे। इसलिए आस-पास के गाँव में लेखक के घर को शहनाई घर बुलाते थे। इस कला क्षेत्र में कलाकारों के द्वारा शहनाई, ढोल, नगाड़ा और तासा आदि चार यंत्रों का प्रयोग होता था। इन यंत्रों में शहनाई की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है, क्योंकि यह अन्य यंत्रों को ताल या दिशा प्रदान करती है।

2.3.2 शिक्षा

कवि बासुदेव सुनानी ने गाँव के स्कूल में सातवीं कक्षा के बाद बोडेन हाई स्कूल में दसवीं कक्षा पास किया। उस समय बोडेन प्रायः जंगल के भीतर था। कोई बस या गाड़ी-मोटर का आना-जाना नहीं था। यह स्कूल केवल अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बच्चों के लिए था। यह गाँव से तीस किलोमीटर दूर में था। बीच में एक नदी पड़ता था। लेखक और उनके गाँव के अन्य बच्चों को पैदल स्कूल जाना पड़ती थी। उनके गाँव से कुल तीन बच्चे लेखक को मिलाकर उसी स्कूल में पढ़ने जाते थे। दो बच्चे जब फेल होकर वापस आये तब लेखक दसवीं कक्षा में अकेला पास हुआ था। दसवीं के बाद लेखक ने बारहवीं के लिए विज्ञान कॉलेज, भवानीपाटणा में

दाखिला लिया। बारहवीं के बाद उसी कॉलेज में बी.एस.सी में भी दाखिला लिये थे। बी.एस.सी करते समय लेखक ने इंजीनियरिंग और डॉक्टरी विज्ञान के लिए प्रवेशिका परीक्षा दी थी। उसी प्रवेशिका परीक्षा में जब उनका चयन हो गया तब लेखक भवानीपाटणा से भुवनेश्वर आये और ओ.यू.ए. टी में प्राणी चिकित्सा-विज्ञान में दाखिला लिये थे। उसके बाद उन्होंने वहीं प्राणी चिकित्सा विज्ञान में पी. जी. किया और उन्हें पी.जी. में स्वर्ण पदक मिला था। बासुदेव सुनानी ने अपने परिवेश, समाज और वातावरण को अच्छी तरह से अनुभव किया है और उसे साहित्य की विभिन्न विधाओं जैसे कविता, निबंध, कहानी और उपन्यास आदि में अभिव्यक्त किया है।

2.3.3 आजीविका

लेखक अब उड़िसा सरकार के अधीन मत्स्य और प्राणी संपदा विकास विभाग में कार्यरत हैं। उड़िसा के मालकानगिरी, कालाहांडि, नुआपड़ा, बलांगिर. संबलपुर आदि विभिन्न जिलों के विभिन्न विभागों में कार्य करने के साथ-साथ उड़िसा राज्य निदेशालय में भी उन्होंने काम किया है। वह एक मात्र फील्ड ऑफीसर हैं जिन्होंने उड़िसा सचिवालय के मत्स्य और प्राणी संपदा विकास विभाग में एक तकनीकी ऑफीसर के रूप में दो साल काम किया है। भुवनेश्वर के लक्ष्मीसागर में प्राणी चिकित्सक प्रशिक्षण प्रतिष्ठान, जो कि उड़िसा राज्य में मत्स्य और प्राणी संपदा विकास विभाग का एक अग्रणी अनुष्ठान है। वहाँ लेखक अब निर्देशक के रूप में काम कर रहे हैं। और इसके साथ-साथ अपने लेखन कार्य से भी जुड़े हुए हैं।

2.3.4 विवाह

23 मई सन् 1993 को बासुदेव सुनानी का विवाह संध्यारानी भोई के साथ हुआ है। संध्यारानी भोई के माता-पिता श्रीमती चारूशीला भोई और श्री रामचन्द्र भोई हैं। संध्यारानी उनकी बड़ी बेटी थी। संध्यारानी के माता-पिता स्कूल शिक्षक थे। लेखक ने जब विवाह किया तब संध्यारानी एक सरकारी कॉलेज में अध्यापिका थीं। सरकार की कुछ यांत्रिक त्रुटियों की बजह से उनको अध्यापिका की नौकरी छोड़नी पड़ी। बाद में उड़िसा सरकार के अर्थविभाग में उनकी नियुक्ति ट्रेजेरी ऑफीसर के रूप में हुई है। अब लेखक और उनकी धर्म पत्नी भुवनेश्वर में रहते हैं। उनके दो बेटे हैं। बड़ा बेटा इशान अनुगत सुनानी, जो सरकारी इंजनियरिंग कॉलेज में द्वितीय वर्ष का विद्यार्थी है। और दूसरा इपसित तथागत सुनानी सरकारी चिकित्सा कॉलेज में चिकित्सा विज्ञान में प्रथम वर्ष का विद्यार्थी है। उनका परिवार अब मानीगुड़ा में हैं और परिवार के साथ उनका संपर्क बराबर है। जिस तरह उनका अपने गांव में परिवार के साथ नियमित आना-जाना रहता है , ठीक उसी प्रकार ससुराल वालों के गांव पाटनागड़ भी नियमित आना-जाना रहता है।

2.3.5 रचना के प्रेरणास्त्रोत

लेखक का कहना है कि उनकी रचनाओं के प्रेरणास्त्रोत उनके पूज्य पिताश्री हैं। उनके पिताजी की मुख्य वृत्ति कृषि थी। पूरे परिवार का भरण-पोषण इस कृषि कार्य पर निर्भर रहता था। उस समय लेखक के गांव में बहुत गरीबी थी। लगभग साठ

प्रतिशत लोगों के घरों में रात को चूल्हा नहीं जलता था। इस तरह दयनीय स्थिति थी कि रात में लोग दूसरों के खेतों से धान चुराकर चावल बनाकर खाना बनाते थे और पूरे परिवार उसे खाते थे। इसलिए लोग रात को धान के खेत में भारी ठण्ड में भी सोते थे, ताकि दूसरे लोग धान चोरी न कर पायें। लेखक की भी कुछ जमीन थी जिसमें धान की फसल होती थी। सुनानी के पिताजी खेत में धान को देखने के लिए बराबर रात को जाते थे। कभी-कभी लेखक भी पिताजी के साथ खेत में जाते थे। जहाँ लेखक अपने पिताजी से भजन-संगीत आदि सुनते थे। जिसके वारे में लेखक स्वंय कहते हैं "गाते समय वह बहुत खुश नजर आते थे और सुनकर मुझे बहुत अच्छा लगता था। उस संगीत को सुनकर मैंने एक दिन उनसे पूछ लिया था कि पिताजी ये गीत किसने लिखा है? मुस्कराहट में उनका उत्तर था कवि। कवि लोगों ने इस गीत को लिखा है। मैंने उससे पहले कभी कवि नाम नहीं सुना था, पहली बार मेरे पिताजी से सुना है। उस दिन से मैंने सोचा कवि कौन होते हैं? उनका शरीर का रंग, रूप कुछ अलग होगा। इस तरह के भ्रम मेरे मन में 9वीं कक्षा तक थे।"[11] आगे फिर लेखक कहते हैं कि "जब मैं आरम हाई स्कूल में 9 वीं कक्षा में पढ़ रहा था, तब उस स्कूल में एक मैगजीन निकालने की प्रस्तावना एक शिक्षक तपन कुमार पटनायक ने की थी। उन्होंने उसी दिन कक्षा में सारे विद्यार्थियों से कहा है कि तुम लोग कविता, कहानी, निबंध

[11] साक्षात्कार, बासुदेव सुनानी

आदि लिखो। मैंने तुरंत बोला सर कविता, कहानी, निबंध आदि कवि लोग लिखते हैं, वे हमें कहाँ मिलेंगे? ये वाक्य सुनते ही कक्षा में पूरे मेरे सहपाठी और शिक्षक लोग व्यंगात्मक ढंग से मेरा मजाक उड़ाने लगे। अंत में शिक्षक ने बोला तुम कविता, काहनी, निबंध आदि लिख सकते हो और ये सब लिखकर एक दिन तुम भी कवि बन सकते हो। मुझे पुरा याद है उसी दिन रात से मैंने लिखना शुरू किया और आज भी लिख रहा हूँ।"[12] इस तरह लेखक के रचना का प्रेरणास्त्रोत सबसे पहले उनके पिताजी, शिक्षक और बाद में डॉ.बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर, महात्मा ज्योतिबाराव फुले, भीम भोई आदि रहे हैं।

2.3.6 पुरस्कार

उडिशा में प्रसिद्ध दलित साहित्यकार बासुदेव सुनानी को कई सम्मान प्राप्त हुए हैं। उन्हें प्रदान किये गए सम्मनों का विवरण इस प्रकार है।

1. मुथामिज अरिगनर कलाईंनर एम्. करुणानिधी पोर्किजी सम्मान (2015)।
2. भुबनेश्वर पुस्तकमेला पुरस्कार, भुबनेश्वर ।
3. निर्माता कविता पुरस्कार, भबानीपाटना।
4. बसंत मुदुली पुरस्कार, भद्रक ।
5. सच्चीदानन्द कविता पुरस्कार, केन्द्रापड़ा।

[12] साक्षात्कार, बासुदेव सुनानी

6. दलित साहित्य कविता पुरस्कार, भुबनेश्वर।

7. खरियर साहित्य समिति पुरस्कार।

8. गदाधर साहित्य संसद पुरस्कार ।

9. ज्ञानदा कविता सम्मान ।

2. 4 कृतित्व

उड़िया दलित साहित्यकारों में बासुदेव सुनानी एक अग्रणी साहित्यकार के रूप में न केवल उड़िसा में प्रसिद्ध हैं बल्कि पूरे देश में जाने जाते हैं। उनके द्वारा लिखित कृतियाँ इस प्रकार हैं-

कविता संग्रह- 'अनेक किछि घटिबार अच्छि' (1995), 'महुल बण' (1999), 'अस्पृश्य' (2001), 'करड़िहाट' (2005), 'च्छी' (2008), 'कालिआ उवाच' (2011), 'बोधहुए भल पाइबा मोते जना नाहीं' (2013), 'ऑउटकास्ट' (अंग्रेजी में अनूदित कविता, 2008) आदि । उनके द्वारा संपादित किताब 'उडिया दलित साहित्य' 2014 में आई थी। उनके द्वारा लिखित निबंध संग्रह 'दलित-पूंजीवाद और भूंमडलीकरण' (2005), 'दलित संस्कृति का इतिहास' (2009), 'अंबेडकरिज़्म: ए वे ऑफ लाइफ' (2014), 'ब्राह्मणवाद और भारतीय नारी' (2014) है। 'दलित एन्कांउटर' (2009)।

'महात्मा फुले' उनके द्वारा लिखित एक जीवनी है। उनके द्वारा लिखित एक उपन्यास 'पड़ापोड़ि' (2014) है। इसके अलावा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उनके लेख छप चुके हैं। विभिन्न भाषाओं में उनके साहित्य का अनुवाद हुआ है। दलितों की संख्या उड़िसा में अधिक है और जहाँ जाति, छुआ-छूत, गरीबी, अन्याय-अत्याचार, शोषण आदि कई समस्याओं का सामना उनको करना पड़ता है।

बासुदेव सुनानी की कविताओं में यह देखा गया है कि आज के इस आधुनिक, कंप्यूटर युग में भी मनुष्य-मनुष्य में जाति को लेकर भेद-भाव कहीं न कहीं दिखाई देता है। फलस्वरुप सवर्ण लोग दलितों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। यह एक अद्भुत मानसिकता है कि दलितों के स्पर्श से सवर्ण लोग अपवित्र हो जाते हैं। एक तालाब में सवर्ण के साथ जानवरों को नहाने-धोने का अधिकार रहता है जबकि मनुष्य हो कर भी दलितों को नहीं। उन जानवरों, पशुओं को छूने से सवर्णों को पाप नहीं लगता, अपवित्र नहीं होते जबकि दलित के स्पर्श से अपने को अपवित्र महसूस करते हैं। दलितों को छूना और देखना अमंगल अशुभ आदि माना जाता था। सार्वजनिक कुँआ, तालाब से पानी लेना और मंदिर, मस्जिद में प्रवेश करना मना था। दलितों को कई अधिकारों से वंचित रखा गया था जैसा कि पक्का घर बनाना, साफ कपड़े पहनना, घुटनों के नीचे धोती पहनना, छाता लेकर निकलना, उनके औरतों को सोने-चाँदी के गहने, पहनना, गाँव में बारात को ले जाना, दूल्हे का घोडी पर सवार और बच्चों का

पढ़ना लिखना आदि है। यदि इस पाबंदी का उल्लंघन कोई एक आदमी करता है तो पूरे दलित गाँव को सज़ा भोगनी पड़ती है।

दलित सवर्ण के घर में चले जाने से उसे अपवित्र, अशुभ मानते हैं, जबकि कुत्ता, बिल्ली को अपने गोद में लेकर चुंबन देते हैं। गाय की गौ-माता के रुप में पूजा करते हैं। उसके गोबर को पवित्रता का प्रतीक मानते हैं। जबकि अपनी माँ जो संस्कार सिखाती है, उसे भूल जाते हैं। मृत्यु के समय में लाश उठाने वाले डोम को घृण्य दृष्टि से देखते हैं। दलित के स्पर्श से सवर्ण अपने आपको अपवित्र समझता है और पवित्र होने के लिए गंगा में डुबकी मारता है। इस प्रकार के अनेक उदाहरण छुआ-छूत को लेकर उड़िया साहित्य में दिये जा सकते हैं। दलितों का मंदिर, मस्जिद में प्रवेश करना मना है, जिसका खुल कर विरोध बासुदेव सुनानी ने अपनी कविताओं में किया है। साधारण दलित और चेतनाहीन ईश्वर के बीच दलाली का काम ब्राह्मण ही करते हैं और अनेक चीजें समाज से लूटते हैं, जिसका वर्णन सुनानी की कविताओं में देखने को मिलता है।

2.4.1 कविता-संग्रह

बासुदेव सुनानी जी आधुनिक उड़िया दलित साहित्य में एक सशक्त रचनाकार हैं। उनका महत्वपूर्ण योगदान कवि एवं कथाकार के रुप में है। उनके अब तक सात कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। उनके कविता संग्रह इस प्रकार हैं- ‘अनेक किछि

घटिबार अछि'(बहुत कुछ होने की संभावना है), 'महुलबण'(महुआ का जंगल), 'अस्पृश्य', 'करड़िहाट'(बांस अंकुर का बाजार), 'छीः', 'कालिआउवाच', 'बोध हुए भलपाइवा मोते जणा नांही'(शायद प्रेम करना मुझे नहीं आता)।

अनेक किछि घटिबार अछि (बहुत कुछ घटित होना है)

'बहुत कुछ घटित होना है' बासुदेव सुनानी का पहला काव्य-संग्रह है। इस काव्य-संग्रह में लगभग 31 छोटी-बड़ी कविताएँ हैं। जातिवाद, गरीबी, शोषण, अन्याय आदि के खिलाफ इन कविताओं में वर्णन मिलता है। 'बहुत कुछ घटित होना है' काव्य-संग्रह का प्रथम प्रकाशन 1995 में हुआ है। बासुदेव सुनानी ने अपने प्रथम कविता-संग्रह 'बहुत कुछ घटित होना है' में समाज के कटुहाल को व्यक्त करते हुए तथा कथित वर्ण-व्यवस्था की जड़ को काटने के लिए प्रयास किया है। जिसके कारण उनको अनेक समय में प्रताड़ना, अपमान और कुंठाग्रस्त जीवन जीना पड़ा है। 'बहुत कुछ घटित होना है' कविता-संग्रह की लगभग सभी कविताएँ में विद्रोही भावना ही दिखाई देती हैं। ये कविताएँ पुरानी रूढ़ि, परंपराओं. नौतिकताओं और आस्थाओं के प्रति विद्रोह करती हुई दिखाई देती हैं। अन्याय, अत्याचार और शोषण पर बनी हुई

संस्कृति, समाज और सभ्यता को यह कविताएँ नकारती हैं। इस कविता संग्रह की सभी कविताओं के मूल में जातिवाद, ब्राह्मणवाद और गरीबी, अभाव-गरीबी हैं।

महुलबण (महुआ जंगल)

'महुआ जंगल' बासुदेव सुनानी जी का दूसरा काव्य-संग्रह है। इसका प्रकाशन सन् 1999 में हुआ है। इस कविता संग्रह में कुल 42 कविताएँ हैं। इन कविताओं के माध्यम से लेखक ने यह बताया है कि प्रकृति के प्रति मानव का अटूट बंधन किस प्रकार है। बिना किसी जाति-पांति, छुआछूत, लिंग, रंग आदि भेद के बगैर मानव सदैव प्रकृति से आकर्षित रहता है। प्रकृति से प्रेम करता है। प्रकृति में मानव अपने आपको खोजना चाहता है। इस कविता संग्रह में भी गरीबी, अभाव, भूकमरी, दैवी विपत्ति, सूखा आदि के बारे में लेखक ने दर्शाया है।

अस्पृश्य

'अस्पृश्य' बासुदेव सुनानी का तीसरी काव्य-संग्रह है। इस काव्य-संग्रह का प्रकाशन सन् 2001 में हुआ है। इस कविता-संग्रह में कुल 31 कविताएँ संकलित हैं। इस कविता-संग्रह में समाज की जो दयनीय स्थिति है, उसे लेखक ने अभिव्यक्त करने की कोशिश की है। इस कविता-संग्रह में जाति-व्यवस्था के खिलाफ लेखक ने खुलकर विरोध किया है। जब सभी लोग एक धरती में रहते हैं, हवा, पानी, सांस सबका एक जैसा है, फिर जाति को लेकर इतना भेद-भाव क्यों? सबके लिए एक सूरज और एक

चाँद फिर मानव-मानव में भेद-भाव क्यों? जैसे कई सवालों को लेखक ने कविताओं के माध्यम से उठाया है।

बोध हुए भलपाइबा मोते जना नाहीं (शायद प्रेम करना मुझे नहीं आता)

'शायद प्रेम करना मुझे नहीं आता' बासुदेव सुनानी के द्वारा लिखित काव्य-संग्रह है। इस काव्य-संग्रह का प्रकाशन सन् 2013 में हुआ है। इस काव्य-संग्रह में बासुदेव सुनानी समाज में निम्न जाति के कहे जाने वाले अछूत को ही सेवक मानते हैं। उनका मानना है कि निम्न कही जाने वाली जातियाँ समाज में सेवक, गुलाम होते हैं पर वे भी मनुष्य होते हैं। उनके पास सोच-विचार करने की क्षमता होती है। वे जब बीमार पड़ते हैं या अन्य किसी कारण सवर्णों के घर में काम करने नहीं आते हैं तब उनके घर में गंदगी, रास्ते पर कूड़े और उनकी गाड़ी से मरे हुए जानवरों की भीड़ लग जाती है।

निष्कर्ष:

इस तरह से देखें तो ओमप्रकाश वाल्मीकि के बिना हिन्दी दलित साहित्य की चर्चा पूरी नहीं होती। वे हिन्दी दलित साहित्य के एक नायक हैं जिनके कंधों पर दलित साहित्य की नीव खड़ी है। वाल्मीकि जी ने दलित साहित्य के कवि रूप में ही नहीं बल्कि कहानी, आलोचना के क्षेत्र में भी अपनी समर्थ पहचान बनाई है। उन्होंने

दलित समाज के दुःख-दर्द, पीड़ा और आक्रोश को पहचाना है एवं उसे अपने साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है। उनकी कविताओं, कहानियों तथा वैचारिकी लेखों में दलित और दलित साहित्य की पक्षधरता विद्यमान है।

दलित परिवार में जन्मे बासुदेव सुनानी ने उड़िया दलित साहित्य को नई दिशा प्रदान की। आधुनिक काल में दलित साहित्य को जो ताक़त मिली, इस ताक़त के पीछे सुनानी के क्रांतिकारी विचारों का बहुत बड़ा योगदान है। सुनानी जैसे विचारकों के कारण उड़िया दलित साहित्य आन्दोलन को एक दिशा मिली है। सुनानी ने अपने जीवन के विभिन्न पहलुओं को उनके साक्षात्कार, उनके साहित्य के माध्यम से उद्घाटित किया है। उन्होंने दलित होने के अभिशाप को स्वंय झेला । इतनी यातनाएँ, दलित होने के कारण जाति व्यवस्था के कीचड़ में फसे भारतीय समाज में झेलनी पड़ती हैं। ये यातनाएँ ही शब्द-बद्ध होकर साहित्य में प्रस्फुटित हुई हैं। सुनानी का साहित्य शोषण, दलित, वंचित जनसमुदाय का पक्षधर रहा है। वे सदैव साहित्य के प्रति समर्पित रहे।

अतः कहा जा सकता है कि दोनों मूर्धन्य लेखकों ओमप्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी ने जाति-व्यवस्था के दंश को झेला है। भारतीय समाज में व्याप्त दलित समाज का नारकीय जीवन, उससे उपजा विद्रोह, नकार की भावना दोनों ही रचनाकारों में दिखाई देती है। फूले, अंबेड़कर के जीवन दर्शन और वैचारिकता ने उनमें चेतना जागृत कर समाज के प्रति अपने उत्तर दायित्व से अवगत कराया। दोनों

ही लेखकों ने अपने साहित्य के माध्यम से अपने सामाजिक उत्तर दायित्व को बखुबी निभाया है।

तृतीय अध्याय

ओमप्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी की कविताओं का परिवेश

3. प्रस्तावना

3.1 ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताओं का परिवेश

3.1.1 सामाजिक परिवेश

3.1.2 आर्थिक परिवेश

3.1.3 धार्मिक परिवेश

3.1.4 राजनैतिक परिवेश

3.1.5 सांस्कृतिक परिवेश

3.1.6 दलित स्त्री जीवन

3.2 बासुदेव सुनानी की कविताओं का परिवेश

3.2.1 सामाजिक परिवेश

3.2.2 आर्थिक परिवेश

3.2.3 धार्मिक परिवेश

3.2.4 राजनैतिक परिवेश

3.2.5 सांस्कृतिक परिवेश

3.2.6 दलित स्त्री जीवन

3.3 निष्कर्ष

तृतीय अध्याय

ओमप्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी की कविताओं का परिवेश

3. प्रस्तावना

वैदिक काल से अब तक हिन्दुस्तान में जो सामाजिकता है, उसमें वर्ण व्यवस्था एक पुरानी संस्था है। इसका बढ़ावा हिन्दू धर्म ग्रन्थों जैसा वेद, पुराणों, श्रीमद्भगवत गीता, महाभारत, रामायण और मनुस्मृति आदि से मिलता है। देश में अनेक बदलाव आये, विचारों में परिवर्तन हुए। समाज में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा धार्मिक परिवर्तन हुआ परंतु जाति-प्रथा खत्म नहीं हुआ। यह आज भी गांव से लेकर शहर तक कहीं न कहीं महजूद है।

भारतीय समाज में दलित सदियों से हर क्षेत्र में शोषित, पीड़ित, वंचित और उपेक्षित रहा है। शिक्षा, स्वास्थ्य, ज्ञानकौशल, विज्ञान-तकनीकि आदि क्षेत्र में दलितों को मुख्यधारा में जोड़ने के लिए आजादी से अब तक अनेक प्रयत्न किए गए हैं किंतु उनकी स्थिति में कोई भी परिवर्तन नहीं हुआ है। दलित समाज गांवों, बस्तियों, दूरदराज अंचलों में बसा है, जहाँ अब तक विकास के साधन नहीं पहुँच पाये हैं। दलितों के जीवन में अनगिनत समस्याएँ आज भी विद्यमान हैं। दलित समाज आज भी दयनीय स्थिति में अपना जीवन यापन कर रहा है। इसके पीछे अशिक्षा, अंधविश्वास, सवर्णों द्वारा किया जा रहा शोषण, दमन, अन्याय, अत्याचार, हीनताबोध आदि कारण विद्यमान है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी ने अपनी कविताओं के माध्यम से दलितों के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं दलित स्त्रियों के परिवेश का यथार्थ चित्रण किया है। काव्य के माध्यम से उन्होंने अपनी भोगी हुई

जिंदगी के हर पल को अभिव्यक्त किया है। सवर्णों के द्वारा समाज में दलितों पर होनेवाले शोषण, अन्याय, अत्याचार आदि को दर्शाने के साथ-साथ वर्णवादी व्यवस्था पर कड़ा प्रहार कर उसके प्रति आक्रोश और विद्रोह व्यक्त किया है।

प्रस्तुत अध्याय में ओमप्रकाश वाल्मीकि एवं बासुदेव सुनानी की दलित कविता में निरूपित सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक आदि विभिन्न पहलुओं का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया जा रहा है।

3.1 ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताओं का परिवेश

3.1.1 सामाजिक परिवेश

भारतीय समाज का निर्माण चतुर्वर्ण व्यवस्था पर आधारित है। जन्म से मृत्यु पर्यंत प्रत्येक हिन्दू के विभिन्न सांस्कृतिक कार्य वर्णभेद के अनुसार ही होते हैं। अनेक राजनीतिक, आर्थिक परिवर्तन हुए हैं। नये-नये धर्मों की उन्नति और अवनति होती रही, परंतु वर्ण व्यवस्था का लोप न हो सका। यह आज भी अपने नये रूप के साथ विद्यमान है। हिन्दू धर्म शास्त्रों के अनुसार भारत में मुख्यतः चार वर्ण है। जो इस प्रकार है ब्राह्मण,क्षत्रीय, वैश्य और शूद्र। सबसे निम्न वर्ण शूद्र यानी दलित ही रहा है। इस वर्ण व्यवस्था के कारण ही शूद्रों को अनेक अत्याचारों का सामना करना पड़ा है। इसी अत्याचार और दलित समाज की दयनीय स्थिति का चित्रण ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी कविताओं के माध्यम से करते हैं। अपनी एक कविता 'कभी सोचा है' में वे ब्राह्मणवादी समाज से सवाल करते हुए लिखते हैं

"कभी सोचा है

गन्दे नाले के किनारे बसे

वर्ण-व्यवस्था के मारे लोग

इस तरह क्यों जीते हैं ?

तुम पराये क्यों लगते हो उन्हें

कभी सोचा है?"[1]

यहाँ दलित होने की, अछूत होने की जो पीड़ा है उसे अवगत कराते हैं। भारतीय समाज के अंतर्गत जातीय भेदभाव सदियों से चला आ रहा है। हर एक जाति दूसरी जाति को दबाना चाहती है। भारतीय समाज में दलित जाति को सदियों से अछूत माना गया है। उन्हें सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक सभी दृष्टियों से वंचित रखा गया है। एक जमाने से आज तक उन्हें पाप समझा जाता है। इस वर्ण व्यवस्था के कारण ही मनुष्य-मनुष्य में भेद-भाव है। सदियों से दलितों ने सवर्णों का अत्याचार और शोषण सहा है। उनके साथ हमेशा से ज्यादती हुई है। उन्हें हमेशा से हर तरह के बुनियादी अधिकारों से वंचित रखा गया है। उन्हें धन-दौलत, जमीन-जायदाद, घर-द्वार, खेत-खलिहान आदि साधनों के अधिकार से वंचित रखा गया है। इन साधनों के ऊपर सिर्फ सवर्णों का अधिकार देखने को मिलता है और दलित लोग उनके यहाँ गुलामी करते हैं। उनके हिस्से में कुछ भी नहीं है। भारत में आज भी जल और जमीन पर सवर्णों का अधिकार है। दलित आज भी अभाव की जिंदगी जी रहे हैं। अस्पृश्यता के कारण उन्हें पानी के लिए तरसना पड़ता है। इस देश में उनका अपना कुछ भी नहीं है। कवि सवाल करते हैं कि हर चीज के ऊपर अगर सवर्णों का अधिकार है तो इस समाज में दलितों का फिर क्या है। यहाँ कवि कहते हैं

"कुँआ ठाकुर का

पानी ठाकुर का

[1] बस्स ! बुहत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 51

खेत-खलिहान ठाकुर के

गली-मुहल्ले ठाकुर के

फिर अपना क्या?

गाँव?

शहर?

देश?"[2]

इस देश में दलितों के साथ दुर्भावनापूर्ण व्यवहार किया जाता है। जो वर्ग मेहनत करता है, समाज को स्वस्थ एवं उन्नत रखने में सहायक सिद्ध होते हैं, ऐसे मेहनतकश दलित समाज को इस देश में हीन और अछूत समझा जाता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं- " भारतीय समाज व्यवस्था में हाथ से काम करना, परिश्रम से रोजी-रोटी कमाना, हीनता का पर्याय है। एस व्यक्ति जो घर, दफ्तर, शौचालय, सड़कें, स्कूल, कॉलेज को हर पल स्वच्छता प्रदान करता है, वह अपवित्र और अस्पृश्य कहलाता है। समाज उनके प्रति दुर्भावनापूर्ण व्यवहार करता है। उसे हीन मानता है।"[3] इस भयावह वर्ण व्यवस्था ने मनुष्य को मनुष्य से अलग कर दिया है। जबकि सब मनुष्य माँ की कोख से जन्म लेते हैं। सारे मनुष्यों के प्रजनन-क्रिया एक जैसी ही है, फिर इतना भेद-भाव मनुष्य-मनुष्य में क्यों? सब मनुष्य एक जैसे हैं, सबका खून का रंग एक जैसा है फिर भी सवर्णों ने कभी दलितों को मनुष्य नहीं माना है। ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी 'वह दिन कब आएगा' शीर्षक कविता में कहते हैं-

[2] सदियों का संताप, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 13

[3] दलित साहित्य : अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 102

"मेरी माँ ने जने सब अछूत ही अछूत

तुम्हारी माँ ने सब बामन ही बामन।

कितने ताज्जुब की बात है

जबकि प्रजनन क्रिया एक ही जैसी है।"[4]

इस तरह हर मानव एक ही प्रक्रिया में जन्म लेता है और समाज में पैर रखता है। फिर भी एक ऊँचा और एक नीचा कहलाता है। एक को जब सारी सुख-सुविधाएँ उपलब्ध होती है, दूसरे के नसीब में सिर्फ दुख ही दुख रहता है। जब एक आदमी लखपति बनकर घर में बैठता है, दूसरा आदमी रोड़ पर मजदूरी करके एक एक पैसे के लिए तरसता है। इस विषमतावादी समाज पर लेखक का यह कहना है कि-

"यहाँ भी लोकतंत्र है

जिसमें सभी को जीने का पूरा हक है

यह अलग बात है

कुछ लोग पैदा होते ही लखपति हैं

और कुछ तमाम उम्र नहीं देख पाते

एक हजार रूपये एक साथ।"[5]

इस विषमतावादी व्यवस्था के कारण दलितों ने बहुत ही सामाजिक उत्पीड़न सहा है। विषमताएँ झेली है, भेद-भाव, जाति-पांति, छुआछूत आदि का शिकार हुएँ हैं। भारतीय समाज के अंतर्गत जातीय भेद-भाव सदियों से चला आ रहा है। हर एक

---

[4] बस्स ! बुहत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 103

[5] वही, पृ. सं. 86

जाति दूसरी जाति को दबाना चाहती है। भारतीय समाज में दलित जाति को सदियों से अछूत माना गया है। उन्हें सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक सभी दृष्टियों से वंचित रखा गया है। एक जमाने से आज तक उन्हें पाप समझा जाता है। आज भी दलित पिछड़ा ही रहा है। आज भी वह सफाई का काम कर रहा है। गरीबी उसका पीछा नहीं छोड़ती है। शहर में भी उसकी जगह झुगी-झोंपडियों में हैं। सुबह शहर में फैली गंदगी को हाथ में झाड़ू लेकर साफ करते हुए लोगों को जगानेवाली दलित महिला की सामाजिक स्थिति और उसकी दयनीयता पर विचार व्यक्त करते हुए कवि 'झाड़ू वाली' कविता में लिखते हैं कि-

"सुबह पांच बजे

हाथ में थामे झाड़ू

घर से निकल पड़ती है

रामेसरी

लोहे की हाथ गाड़ी धकेलते हुए

खडंग-खडांग की कर्कश आवाज

टकराती है

शहर की उनींदी दीवारों से

गुजरती है

सुनसान पड़े चौराहों से

करती हुई ऐलान

जागो !

पूरब दिशा में लाल-लाल सूर्य

उगने वाला है।"[6]

भारतीय समाज व्यवस्था में दलितों पर कई प्रकार के सामाजिक अयोग्यताएँ थोपी गई थी। अस्पृश्य समझीजाने वाली जातियों के सामाजिक संपर्क पर एक प्रकार से रोक लगा दी गई थी। अस्पृश्यता की समस्या के कारण उन्हें एक पृथक समाज के रुप में रहना पड़ता था। उनके लिए मंदिरों में प्रवेश निषिद्ध था। उनके मुहल्ले या बस्तियाँ प्रायः गांव के बाहर होते थे। वाल्मीकि की कविताओं में गाँव से लेकर शहर तक के दलितों की सामाजिक स्थिति का वर्णन हुआ है। कवि यहाँ कल्पना की उड़ान नहीं भरते बल्कि यथार्थ का बयान करते हैं। जिसे उन्होंने खुद ही भोगा है और अनुभव किया है। उनकी कविताओं के केन्द्र में अस्पृश्यता ही है। इस अस्पृश्यता का शिकार होकर जो सामाजिक विषमताओं, विद्रुपताओं को उन्होंने झेला है और जो सामाजिक कठोरता का वह भुक्तभोगी है, उसी असहनीय जाति व्यवस्था पर प्रहार करते हुए कवि ने लिखा है-

"जिस रास्ते चलकर तुम पहुँचे हो

इस धरती पर

उसी रास्ते चलकर आया मैं भी

फिर तुम्हारा क़द

इतना ऊँचा

कि आसमान भी छू लेते हो

[6] सदियों का संताप, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 31

तुम आसानी से

और मेरा क़द इतना छोटा

कि मैं छू नहीं सकता

ज़मीन भी !”[7]

जातिगत भेदभाव की यह अत्यंत घृणास्पद लेकिन बड़ी कुशलता से निर्मित रचना है। इस व्यवस्था में व्यक्ति पहले अपनी मनुष्यता खो देता है।

भारतीय समाज में चौथा वर्ण शूद्र माना गया है। शूद्रों को पारंपरिक रूप से शारीरिक कष्ट से संबंधित काम करने पड़ते हैं। गांव की साफ-सफाई करना, खेतों में बंधुआ मजदूर के रुप में काम करना या मरे हुए पशुओं को उठाकर गाँव के बाहर फेंकने जैसे कार्य करता रहा है। ये काम करने के लिए उन्हें सवर्णों द्वारा मजबूर किया जाता है। समाज में शूद्र या अछूत की स्थिति आज भी दयनीय है।

जाति व्यवस्था भारतीय संस्कृति के लिए कलंक है। यह कलंक जितना जल्दी छूटे उतना अच्छा है। अछूतों को हिन्दू समाज में दूषित एवं अपवित्र माना गया है। जिसके लिए उन्हें कुएँ और तालाब में से पानी तक नहीं पीने दिया जाता। हिन्दू समाज का मानना है कि दलितों का जन्म सिर्फ गंदे काम करने के लिए हुआ है। इसकी दर्दनाक स्थिति का वर्णन कवि यहाँ इस तरह करते हैं-

“जब भी देखता हूँ मैं

झाडू या गंदगी से भरी बाल्टी-कनस्तर

किसी हाथ में

[7] बस्स ! बुहत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 76

मेरी रगों में

दहकने लगते हैं

यातनाओं के कई हजार वर्ष एक साथ

जो फैले हैं इस धरती पर

ठण्डे रेतकणों की तरह।"[8]

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी कविताओं में सदियों से लेकर आज तक दलितों की दयनीय स्थिति का वर्णन किया है। इन कविताओं में दलितों का सामाजिक परिवेश अत्यंत स्पष्ट है। अतः इन कविताओं में दलित जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति है।

3.1.2 आर्थिक परिवेश

प्राचीन काल से दलितों के ऊपर अनेक प्रतिबंध लगाए गए थे। उन्हें धनोपार्जन का कोई अधिकार नहीं दिया गया था, जिसके कारण वे सदियों से लेकर आज तक आर्थिक रूप से विपन्न स्थिति में जीवन गुजार रहे हैं। सवर्णों ने उनसे अर्थोपार्जन का सभी मार्ग छीन लिये , जिसके कारण दलित सदियों से उपेक्षा के पात्र बन कर रह गये। आर्थिक विषमताओं ने दलितों की जिंदगी को नर्क जैसा बनाया है। स्वतंत्रता के बाद बाबा साहेब डॉ. अंबेडकर ने उनके लिए संविधान में अलग प्रावधान करके उन्हें संवैधानिक आरक्षण दिया। जिसके फलस्वरूप आज दलित वर्ग के लोग आर्थिक रूप से विकसित हो रहे हैं। इस पर भी सवर्ण समाज का विरोध है। वे नहीं चाहते हैं कि दलित उनके साथ बराबर रहें। जिसके फलस्वरूप जातिवादी संगठनों वाले जानबुझकर दलितों के आरक्षण का विरोध करते हैं।

[8] बस्स ! बुहत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 79

दलित वर्ग सवर्णों से हमेशा से शोषिण का शिकार होते आ रहे हैं। उन्हें साधारण जीवन जीने के लिए रोजमर्रा की बुनियादी सामग्री रखने का अधिकार भी नहीं था। यहाँ तक कि खाने के लिए रोटी, पहनने के लिए कपड़े और रहने के लिए घर। इन सबके लिए उन्हें सवर्णों के घर से ठोकर खानी पड़ती थी। जिसके लिए वे कभी सुख के दो पल भी व्यतीत नहीं कर पाते थे। दलितों की इस स्थिति का चित्रण करते हुए कवि यहाँ लिखते हैं कि-

"जब तुम्हें प्रेम करना था

आलिगंन में बाँधकर,

अपनी पत्नियों को।

तुम तलाशते रहे

मुट्ठी भर चावल

सपने गिरवी रखकर।"[9]

जब दलित समुदाय के लोग थक हार कर घर लौटते हैं तो उसे अपनी पत्नी के साथ प्रेम करने के लिए भी अवकाश नहीं मिलता। वह मुट्ठी भर चावल की तलाश में निकल पड़ता है। यह गरीबों की कारूणिक गाथा का सच्चा प्रतिबिंव कहा जा सकता है।

भारतीय समाज में दो वर्ग हैं। एक शोषक तो दूसरा शोषित वर्ग। शोषक वर्ग ने हमेशा से शोषित वर्ग को प्रताड़ित किया है। शोषित वर्ग जिसे दलित कहा जाता है और जिन्होंने सवर्णों के लिए अनाज उगाया पर खुद एक एक दाने के लिए तरसता रहा। खुदको गंदगी में डालकर सफाई का काम करता है ताकि सवर्ण अच्छे से रह

[9] बस्स ! बुहत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 15

सके। सवाल यह है कि इन सबके बावजूद दलितों को समाज में मिला क्या? सिर्फ पीड़ा, जिस पीड़ा को सवर्ण लोग कभी समझ नहीं सके। ओमप्रकाश वाल्मीकि का कहना है कि दलित आज भी शोषण का शिकार हो रहा है, आज भी वह झोंपडियों में रहता है। वाल्मीकि की कविताओं में शोषण का नंगा चित्र दृष्टव्य है-

"मैं खटता खेतों में

फिर भी भूखा हूँ

निर्माता मैं महलों का

फिर भी निष्कासित हूँ

प्रताड़ित हूँ।

इठलाते हो बलशाली बनकर

तुम मेरी शक्ति पर

फिर भी मैं दीन-हीन जर्जर हूँ। "[10]

यहाँ वाल्मीकि दलितों का श्रम शोषण को दर्शाते हैं, जिसमें दलित वर्ग जी तोड़ मेहनत तो करता है मगर उसका फल नहीं पाता। न उसे भरपेट भोजन मिलता है, न रहने के लिए आवास और न पहन ने के लिए वस्त्र। दिन रात मेहनत करने के बाद भी जीवन की मौलिक आवश्यकता रोटी, कपड़ा और मकान से वंचित है। उसका जीवन कष्टमय है। उनका जीवन श्रम से भरा है परंतु वह भूखा है। धूप में पसीने से लथ-पथ होकर वह श्रम करता है, किन्तु उस पसीने का मूल्य कुछ नहीं हैं। गांव और शहर दोनों जगह दलितों की स्थिति समान है। गांव में जब उनके ऊपर उत्पीड़न

---

[10] सदियों का संताप, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 24

होता है तो वह शहरों की तरफ पलायन करता है, जहाँ उसे सुरक्षा और रोजी-रोटी की गुंजाइश ज्यादा दिखाई पड़ती है। वहाँ कलकारखानों में मजदूर बनकर दलित एक नया जीवन शुरू करते हैं। लेकिन वहाँ भी उत्पीड़न उनका पीछा नहीं छोड़ता। दलित श्रमिकों के दुर्लभ जीवन का वर्णन करते हुए कवि कहते हैं-

"मशीनों पर आकार ग्रहण करता लोहा

छिल-छिल कर गिरता है

गड़ता है अक्सर जूते, चप्पलों में

गर्म कतरनों की चुभन

महसूस होती है तलवों में

कारीगर की उँगलियों से

रिसते लहू को देखकर

मेरी बेचैनी

मशीनों की घरघराहट से मिलकर

ढलने लगती है शब्दों में एकाकार होकर।"[11]

इस तरह एक दलित का श्रम बहुत ही कष्टदायक होता है। कलकारखानों में श्रम करते हुए उसे मशीनों के बीच लोहे को गलाना पड़ता है। उस समय उसके पैरों पर गरम लोहे के टुकड़े गिर कर घाव बना देते हैं। फिर भी वह काम करता रहता है। जैसे उसे कुछ हुआ ही नहीं हो। इतनी मेहनत, मजदूरी करने पर भी उसे न ढंग का

[11] अब और नहीं.., ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 37

खाना मिलता है, न रहने के लिए ढंग का घर। उसकी इस स्थिति का वर्णन करते हुए कवि अपने कोलाहल जीवन को कविता में यूं व्यक्त करते हैं कि-

"घर था

छत नहीं थी

खटिया थी

बिस्तर नहीं था

लीपा-पुता चूल्हा था

जो बदलता रहता था

अपनी जगह

मौसम के साथ।"[12]

दलितों की आर्थिक विपन्नता का और एक कारण है 'बेगार प्रथा'। 'बेगार प्रथा' यानी बिना मूल्य के श्रम करना। पहले सवर्णवादी समाज ने उसके साथ क्रूर व्यवहार किया। उसे आर्थिक रूप से ऊपर उठने का अवसर ही नहीं दिया। उसे सम्मानित कार्य करने के बदले सिर्फ साफ सफाई का काम करना पड़ा। इस सफाई काम के लिए भी उसे उचित मूल्य नहीं दिया गया। बल्कि उसे यह काम बेगार पद्धति से ही करना पड़ा। इस बेगारी प्रथा ने दलितों को बहुत ही विपन्नता की स्थिति में ढकेल दिया है। इस तरह दलित दिन भर काम करके भी भूखे सोते हैं। यह उनके लिए किसी अभिशाप से कम नहीं है। दलितों की इस अवस्था को देखकर किसी का भी दिल पिघल जाएगा, परंतु सवर्णों का नहीं। सवर्णों के इस व्यवहार को इस पत्थर दिल को देख कर कवि कहते हैं

[12] अब और नहीं.., ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 18

“आग में तपकर

लोहा नर्म पड़ जाता है

ढल जाता है

मन चाहे आकार में

हथौड़े की चोट से।

एक तुम हो,

जिस पर किसी चोट का

असर नहीं होता।”[13]

समाज के दबाबों के कारण दलित अभावों से जूझता रहा है। सामंतवादी प्रभाव का शिकार दलित भी हुआ है। रोजी-रोटी की तलाश में निकले दलितों के श्रम पर उच्च वर्ग के लोग खुशियाँ मनाते हैं। दलितों का जीवन हमेशा संघर्षशील रहा है। उनके घरों में खाने का अभाव हमेशा बना रहता है। भूखे-नंगे रह कर वे अपना जीवन जीने के लिए विवश हैं। वाल्मीकि दलितों की दयनीय आर्थिक स्थिति का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि-

“नहीं मिला दूध उसे

सफेद-काली गाय का

नहीं खाया उसने

दही और मक्खन कभी

[13] सदियों का संताप, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 19

नहीं सोया गद्देदार बिस्तर पर।

लगातार लड़ा है वह

बेहया मौसम से।"[14]

दलित एक सुखमय जीवन जीने के लिए परिश्रम करता है पर उसे बदले में गाली मिलती है। परिश्रम के बदले अपमान, उपेक्षा, उपहास और असहाय जीवन मिलता है। इस सबके पीछे और कोई नहीं केवल वही सवर्ण समाज है जिसकी सेवा उसके पूर्वजों ने किया और आज वह कर रहा है। लेखक इस संदर्भ में लिखते हैं कि-

"वे रहे बेख़बर

उस दुश्मन से

जिसकी सेवा-टहल में

खप गयीं पीढियाँ

बिक गयी भूखी-नंगी

मर गयी बेमौत

बेनाम

चिर-परिचित गलियों में।"[15]

आज शिक्षा के कारण दलितों में परिवर्तन आ रहा है। वे अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए प्रयत्नशील हैं और अपने स्वर्णिम दिन की प्रतीक्षा में हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि भी उसी दिन का इंतजार कर रहे हैं कि कब समाज में समानता आयेगी

[14] बस्स ! बुहत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 20

[15] अब और नहीं.., ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 56

और किसी के मन में किसी दूसरे के प्रति भेदभाव नहीं रहेगा। और यह तब संभव होगा जब पैदायशी भेदभाव खत्म हो जायेगा। इसी बात को कवि अपनी कविता 'वे दिन कब आयेगा' शीर्षक कविता में व्यक्त करते हैं-

"वह दिन कब आयेगा

जब बामनी नहीं जनेगी बामन

चमारी नहीं चनेगी चमार

भंगिन भी नहीं जनेगी भंगी।

तब नहीं चुभेंगे

जातीय हीनता के दंश।"[16]

अतः दलितों की आर्थिक दुर्दशा का कारण ही जाति-व्यवस्था है। सवर्णों की घृणा और द्वेष ही उनकी आर्थिक दुर्दशा का कारण है। दलितों का जीवन संघर्षपूर्ण है। उसे जीवनभर संघर्ष करना पड़ता है। और इसी संघर्ष को ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने भी भोगा है। जिसके कारण उनका संघर्ष कविता के माध्यम से उभर कर सामने आया है। वे कोई सपनों की कविता नहीं लिखते बल्कि भोगे हुए जीवन के यथार्थ को कविता में लिखते हैं। इसलिए दलित कविता भोगे हुए जीवन के यथार्थ की कविता है। कँवल भारती के शब्दों में "दलित कविता उस तरह की कविता नहीं है, जैसे आमतौर पर कोई प्रेम या विरह में पागल होकर गुनगुनाने लगता है। यह वह कविता भी नहीं है, जो पेड़-पैधों, फूलों, नदियों, झरनों और पर्वतमालाओं की चित्रकारी में लिखी जाती है। यह किसी का शोक गीत और प्रशस्तिगान भी नहीं है। दरअसल यह वह कविता है, जिसे शोषित, पीड़ित, दलित अपने दर्द को अभिव्यक्त करने के लिए

[16] बस्स ! बुहत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 103

लिखता है। यह वह कविता है जिसमें दलित कवि अपने जीवन के संघर्ष को उतारता है।"[17]

3.1.3 धार्मिक परिवेश

धर्म के नाम पर मनुष्य का बंटवारा सदियों से चलता आ रहा है। हमारे समाज में मनुष्य से ज्यादा महत्व पशु और धर्म को दिया जाता है। धर्म आज सांप्रदायिकता का रूप ले लिया है। निम्न और निचले तबके के लोगों को आकर्षित करने के लिए एक साधन बनकर रह गया है।

हिन्दू धर्म दलितों का शोषण और अत्याचार का प्रतीक है। हिन्दू धर्म ग्रंथ ने भाग्य और नियति का झूठा प्रपंच रचकर दलितों को ठगा है। इसी नियति और भाग्य के कारण दलितों की स्थिति को बदलने वाले लोगों से सवाल करते हुए कवि यहाँ लिखते हैं-

" 'नियति' के बहाने

अच्छा प्रपंच रचा है तुमने

जख्मों से पटे चेहरे

अब पहचाने नहीं जाते।

अरे,

अब तो मान लो

किस सभ्यता के वंशज हो तुम !"[18]

---

[17] दलित कविता का संघर्ष, कँवल भारती, पृ. सं. 13

[18] बस्स ! बुहत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 89

आज दलितों की जो स्थिति है इसका मुख्य कारण है धर्म। धर्म ने दलितों के ऊपर अनेक तरह के प्रतिबंध लाद दिया है, जैसे सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक आदि। दलितों के ऊपर आज जो प्रतिबंध है, इसका मूल कारण धर्म ही है। इस हिन्दू धर्म ने दलितों को कभी आगे बढ़ने का मौका ही नहीं दिया। वाल्मीकि 'जो मेरा कभी नहीं हुआ' शीर्षक कविता में कहते हैं-

"मेरी इस असमर्थता में

बहुत बड़ा हाथ था

मेरे धर्म का

जो मुझे बाँध कर तो चाहता है

रखना

लेकिन वह मेरा कभी नहीं हुआ।"[19]

मंदिरों में हिन्दुओं के द्वारा पूजे जाने वाले ईश्वर को दलित बहुत अच्छी तरह से जानता है। जानने का यह कारण है कि मंदिर और उसमें पूजी जा रही मूर्ति को इसी ने गढ़ी है। सिर्फ मंदिर और मूर्ति ही नहीं बल्कि मंदिर में रखी गयी हर एक वस्तु का निर्माता दलित ही है। यहाँ तक कि भगवान के पास लगाया गया प्रसाद भी दलित ने ही उगाया है। विड़बंना यह है कि सबका निर्माण करने पर भी उसी मंदिर की वस्तुओं को स्पर्श करना, भोगना तो दूर मंदिर में प्रवेश करने का भी उसे अधिकार नहीं है। जिस वस्तु का निर्माण दलित करता है वह सवर्णों के घर पहुँच जाने से ही पवित्र बन जाती है। एक ही क्षण में दलितों के हाथों से ली हुई वस्तु पवित्र बन जाती है और उसके बाद दलितों को उसे छूने नहीं दिया जाता। ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी

[19] अब और नहीं.., ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 19

कविता 'तुम्हारी गौरवगाथा' शीर्षक कविता में उस भगवान से सवाल पूछते हैं कि क्यों इस अन्याय को देखकर ईश्वर की आस्था जागृत नहीं होती।

"क्यों लगता है हमेशा

परायापन तुम्हारी संस्कृति से

क्यों उद्वेलित नहीं करते

तुम्हारे अमूर्त भाव।

क्यों नहीं जगातीं आस्था

देवों की पाषाण मूर्तियाँ

जो गढ़ी है मैंने ही

छैनी-हथौड़े के सधे वार से।"[20]

धर्म के ठेकेदारों ने दलितों को यह समझाते और विश्वास दिलाते आ रहे हैं कि ईश्वर जिंदा है। दुनिया में जो कुछ भी होता आ रहा है या जो कुछ हो रहा है वे सब ईश्वर की इच्छा और आदेश के अनुसार हो रहा है? अगर ईश्वर की इच्छा के अनुसार सब कुछ हो रहा है तो क्यों धर्म को लेकर दंगा हो रहा है, क्यों गरीबों की मृत्यु हो रही है? और दलितों के ऊपर अन्याय, अत्याचार हो रहा है? क्या इसका कारण भी ईश्वर है! सवर्ण ईश्वर की पूजा करते हुए मरे हुए लोगों को भूल जाते हैं। यह क्या ईश्वर की ही इच्छा है। वाल्मीकि जी ने अपनी कविता 'कभी सोचा है' में सवर्णों पर व्यंग्य करते हुए लिखा है कि

[20] बस्स ! बुहत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 52

"हाँ, सचमुच तुम सहिष्णु हो

जब दंगों में मारे जाते हैं

अब्दुल और कासिम

कल्लू और बिरजू

तब तुम सत्यानारायण की कथा सुनते हुए

भूल जाते हो अखबार पढ़ना।"[21]

दलितों के साथ अन्याय, अत्याचार और शोषण होना ईश्वर की अगर मर्जी हो तो कवि उस ईश्वर को नकारते हैं। अगर ईश्वर भी मनुष्य की पहचान जाति से करते हैं तो कवि उस ईश्वर के अस्तित्व को ही नकारते हैं। उन्हें न ईश्वर चाहिए न ईश्वर का दिया हुआ कोई दान। कवि ईश्वर को संवोधित करते हुए लिखते हैं कि

"स्वीकार्य नहीं मुझे

जाना,

मृत्यु के बाद

तुम्हारे स्वर्ग में।

वहाँ भी तुम

पहचानोगे मुझे

मेरी जाति से।" [22]

---

[21] बस्स ! बुहत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 51

[22] वही, पृ. सं. 78

दलित अगर अपने हिस्से की रोटी मांगता है तो उस पर जुल्म किया जाता है। क्या यह भी ईश्वर की इच्छा है। वह अपना हक तक नहीं मांग सकता। इस पर कवि ईश्वर के अस्तित्व को ही नकारते हुए लिखते हैं कि-

"मैंने माँगी

अपने हिस्से की रोटी

वे उठ खड़े हुए

हाथों में अँगारे लेकर

हवा में फैल गयी चिरायँध

कोई देवता नहीं पसीजा

नहीं हुई आकाशवाणी

ईश्वर ने भी नहीं लिया अवतार

ओ, हजारों साल पुराने देवताओं

मैं नकारता हूँ

तुम्हारे अस्तित्व को।"[23]

अपने हिस्से की रोटी माँगने पर दलितों को दबाया गया। उनके ऊपर जुल्म किये गये। इस पर न कोई देवता पसीजा, न कोई देवता दलितों की सहायता के लिए अवतार लिया। कवि कहते हैं कि ईश्वर को मैं नकरता हूँ जो मेरे शोषण का कारण है। कवि इस संदर्भ में कहते हैं

---

[23] अब और नहीं.., ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 96

“मेरी आँखों में बसी दहशत

घृणा में बदल रही है

उन धर्म ग्रथों के विरुद्ध

जो रास्ते में खड़े हैं

कँटीले झाड़-झंखाड़ की तरह।”[24]

हिन्दू समाज पहले भी धर्म का चोला पहन कर साधारण लोगों को ठगता था और आज भी ठग रहा है। धर्म के नाम पर अपनी-अपनी रोटी सेकते हैं। दूसरों को बली चढ़ाते हैं। धर्म के नाम पर चोरी करना, लोगों को लूटना आज साधारण बात हो गई है। और ऐसे धार्मिक लोगों को पहचानना भी मुस्किल हो गया है। यह समझना मुस्किल है कि यह लोग धर्म के नाम पर लोगों का हित कर रहे हैं या अहित कवि ‘धर्म के भाई लोग’ शीर्षक कविता में लिखते हैं-

“सुना है शहर में डेरा डालकर

बैठ गये हैं धर्म के भाई लोग

जिनके शालीन चेहरे

देख कर कोई नहीं कह सकता

उनकी मंशा क्या है?

उनके मुंह और बगल में क्या छिपा है?” [25]

[24] अब और नहीं.., ओमप्रकाश वाल्मीकि , पृ. सं. 28

[25] शब्द झूठ नहीं बोलते, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 65

3.1.4 राजनैतिक परिवेश

सन् 1947 में देश आजाद हुआ और आजाद भारत में आज लोकतंत्र है। पर इस आजादी का, इस लोकतंत्र का फायदा साधारण जनता को नहीं मिला है। यह आजादी उस करोड़ों भूखी, नंगी जनता की आजादी नहीं थी, बल्कि यह आजादी भूस्वामी और पूंजीपतियों के लिए थी। इस वर्णव्यवस्थित समाज में ऊँचे कहे जाने वाले लोगों के पास ही समाज की बागडोर थी। उनके पास सत्ता और संपति भी थी। जिसके फलस्वरूप वे लोग भारतीय लोकतंत्र पर हावी हो गये। दलित लोगों का अनपढ़ और गरीबी जैसी असहायता का फायदा उठाकर उनके कीमती वोट से चुनाव में अपनी सत्ता हासिल कर लिया। इसलिए राजनीति में न दलितों का स्थान है और न उनके हाथ में सत्ता। यह लोकतंत्र गरीब, मजदूरों और दलितों का कल्याण करने में सफल नहीं हो पाया है।

डॉ.अंबेडकर दलितों को समाज में एक सम्मनापूर्ण स्थान दिलाना चाहते थे। उनका मानना था कि जाति और अस्पृश्यता की समस्या सिर्फ सामाजिक नहीं बल्कि आर्थिक और राजनीतिक भी है। फलस्वरूप उन्होंने दलितों को सिर्फ सामाजिक न्याय ही नहीं बल्कि राजनीतिक क्षेत्र में भी सक्रिय बनाया। अंबेडकर ने दलितों को रानैतिक दृष्टि से संगठित करने तथा अपने अधिकारों के लिए लढ़ने के लिए उनके मन में साहस पैदा किया। फलस्वरूप दलित भी राजनीति में आने लगे पर उनको उतना अधिकार नहीं मिला, जितना मिलना चाहिए था। स्वतंत्रता के बाद भी वर्णव्यवस्था का प्रभाव कम नहीं हुआ, क्योंकि जिनके हाथ में सत्ता थी आज उन्हीं का सरकार है। आज राजनैतिक व्यवस्था साधारण जनता का विशेषकर दलितों का अधिक से अधिक शोषण कर रही है। और इस राजनैतिक तंत्र के पीछे जाति व्यवस्था ही है। जिसको कवि अपनी कविता में इस तरह कहते हैं-

"यह कैसा लोकतंत्र है भाई?

जहां चुनाव, नौकरी, इज्जत

योग्यता, शिक्षा

सब जाति तंत्र तय करता है ! ” 26

अब राजनीति अपनी विकृत अवस्था में पहुँच चुकी है। आज भी राजनीति में दलित मजदूरों का स्थान नगण्य है। दलित कवि तथा लेखकों ने हिन्दू समाज की घिनौनी राजनीति को अपनी रचनाओं के माध्यम से उजागर किया हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि इस गंदी राजनीति का यथार्थ वर्णन करते हुए अपनी कविता ‘कभी सोचा है’ में कहते हैं

“वर्ण व्यवस्था को तुम कहते हो आदर्श

खुश हो जाते हो

साम्यवाद की हार पर

जब टूटता है रूस

तो तुम्हारा सीना 36 हो जाता है

क्योंकि मार्क्सवादियों ने

छिनाल बना दिया है

तुम्हारी संस्कृति को।”27

---

[26] शब्द झूठ नहीं बोलते, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 33

[27] बस्स ! बुहत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 50

देश आजाद होने के इतने साल बाद भी दलित जीवन में उतना परिवर्तन नहीं आया जितना आना चाहिए था। जब देश आजाद हुआ सब सपना देखने लगे थे कि उनके साथ न्याय किया जायेगा और उनके विकास के लिए प्रयत्न किया जायेगा। परंतु हुआ इसका विपरीत। आज भी दलित आजाद नहीं है। वे स्वतंत्रता से पहले भी गुलाम थे और स्वतंत्रता के बाद भी गुलाम रहे। गंदा काम करना, बेगार करना, बंधुआ मजदूरी करना आदि आज भी दलितों के साथ है। आज भी दलित भूख से आत्महत्या कर रहे हैं। आज भी उन्हें रोटी, कपड़े, मकान आदि बुनियादी चीजें ढंग से उपलब्ध नहीं हैं। इस वर्ण व्यवस्था में एक वर्ण के पास सब कुछ है तो दूसरे वर्ण के पास कुछ भी नहीं है। इस विड़ंबना को उजागर करते हुए कवि यहाँ लिखते हैं कि-

"काटे जंगल

खोदे पहाड़

बोये खेत

फिर भी रहे भूखे।

बनायी नहरें

खोदे कुएँ

लगाये नल

फिर भी रहे प्यासे।

लड़े युद्ध

जीते भूखंड

बदले राज

फिर भी रहे दास।

हाथों में अथाह शक्ति

सीने में धैर्य

मन में विश्वास

फिर भी सही दुत्कार।"[28]

इस आजाद भारत में दलितों की स्थिति में कोई सुधार ढंग से नहीं आया है। न ही गाँव में और न ही शहर में उनकी स्थिति में बदलाव आया है। गाँव से लेकर शहर तक राजनैतिक दलों ने केवल गरीबों का इस्तेमाल किया है। उन्हें कुटिलता भरे शब्द सुनाकर, उन्हें बहलाकर, झूठे वादे दिलाकर कहते हैं कि विकास करेंगे । उनसे वोट मिलने के बाद उनका विकास तो क्या उन्हें याद भी नहीं रखते हैं। राजनीतिज्ञों के व्यवहार को कवि ने यहाँ इस प्रकार व्यक्त करते हैं कि-

"उनकी बारीक मुस्कुराहटें

संत बैरागी-सा चोला

उन्हें जरायमपेशा घोषित नहीं करता

स्वच्छ श्वेत परिधानों पर

गुनाहों का लालचोला

दिखाई नहीं पड़ता

कुछ आँखें देख रही हैं

[28] बस्स ! बुहत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 53

खामोशी के साथ

अँधेरे की गहरी परतों में

खतरनाक साजिश

जो कड़ुवे धुएँ का चक्रव्यूह बनाकर

फँसा रही असंख्य अभिमन्यु।”[29]

कल भी दलित जो गंदे काम करने के लिए विवश थे आज वही गंदे काम करने के लिए विवश हैं। मैला ढोने वाले और झाड़ू मारने वालों की वही परंपरा जारी है। कल उनके पूर्वजों ने वही काम किया था, आज उनकी पीढ़ी वही काम कर रही है। दलितों के लिए लोकतंत्र एक गाली बन गयी है। ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी ‘झाड़ूवाली’ शीर्षक कविता में लिखते हैं कि-

“साल-दर-साल गुजरते हैं

दीवारों पर चिपके चुनावी पोस्टर

मुँह चिढ़ाते हैं।

जब तक रामेसरी के हाथ में

खड़ांग-खांग घिसटती लौह गाड़ी है

मेरे देश का लोकतंत्र

एक गाली है !”[30]

[29] बस्स ! बुहत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 59

[30] सदियों का संताप, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 33

संविधान लिखते समय डॉ. बाब साहेब अंबेडकर ने भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र बनाया। ताकि इस समाज में कोई भी जाति या धर्म का प्रभुत्व न हो। सब अपने-अपने मर्जी से धर्म ग्रहण करें और आपस में सब भाईचारे की भावना रखकर मिलजुलकर रहे। किन्तु आज भी भारत में जाति और धर्म का प्रभुत्व कम नहीं हुआ है। आज भी दंगे, धार्मिक संघर्ष और उनकी राजनीति चलती रहती है। इन दंगों में बलि का बकरा बनता है बिचारा गरीब दलित वर्ग। इसका यथार्थ चित्रण कवि ने 'दंगों के बाद' शीर्षक कविता में इस प्रकार किया है।

"गर्म सलाखों से बिंधे

धुआँ-धुआँ जलते शहर में/बीचों-बीच खड़ा आदमी

संविधान की धाराओं सा/संदर्भ हीन हो गया है

लगता है-अँधेरे और उजाले की

संधि-रेखा/वृत्ताकार बनकर

आदिम गुफा में परिवर्तित हो गयी है।"[31]

हिन्दूओं की इस छुआछूत की राजनीति के कारण आज तक जाति, धर्म-भेद, वर्ण-भेद जैसी बीमारियाँ समाज में फैली हुई है। जाति व्यवस्था और इस उत्पन्न घृणा ही एक कारण है जिसके लिए हमारे समाज में सभी वर्ग मिलकर देश के लिए लड़ नहीं पाये। सवर्णों की इस घृणा के कारण आज भी दलित रोज कहीं न कहीं पीटे जा रहे हैं और दलित स्त्रियों का बलात्कार किया जा रहा है। इसी घृणा के कारण ही प्रशासन व्यवस्था में सवर्ण चपरासी एक दलित को पानी पिलाने में मना करता है।

[31] बस्स ! बुहत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 67

जिसे घृणा के कारण दलित बरसों से असहाय, वेदना और पीड़ा को सहन करता आया है। उस घृणा को सवर्ण एक बार परख कर देखें तभी पता चलेगा घृणा क्या होती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने 'घृणा तुम्हें मार सकती है' अपनी कविता में कहा है-

"घृणा तुम्हें मार सकती है

तोड़ सकती है

पर अपने ही दायरे में

जिंदा नहीं रख सकती

ताजा हवा देकर

और, नहीं सुना सकती

प्रेम कविता

मौसम के रंगीन पंखों पर बैठाकर !"[32]

आजादी के इतने सालों बाद भी सवर्णों के मन में दलितों के प्रति जो घृणा है वह कम नहीं हुई है। कवि ने दलितों के राजनीतिक परिवेश को अपनी कविताओं में अत्यंत सटीक और यथार्थ चित्रण किया है।

3.1.5 सांस्कृतिक परिवेश

भारत अलग-अलग या भिन्न संस्कृतियों का देश है। पर कहने के लिए तो एक ही मूख्य संस्कृति है। और वह संस्कृति है सनातनी संस्कृति। इस सनातनी संस्कृति के विरोध में एक दूसरा संस्कृति है जिसे हम ब्राह्मणेत्तर या दलित संस्कृति कह सकते हैं।

---

[32] बस्स ! बुहत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 31

दलितों की यह संस्कृति सनातन संस्कृति के विरोध का कारण है क्योंकि दलित सनातनी संस्कृति को नहीं मानते हैं। वह उस संस्कृति को एकांगी मानते हैं। "दलित साहित्य की स्पष्ट मान्यता है कि ऐसी संस्कृति संपूर्ण भारतीय समाज का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती, जिसमें समाज की सारी सहूलियतें, सारी सुख-सुविधायें किसी खास वर्ग के लिए ही जुटा दी गयी हो। इसलिए तथाकथित मुख्यधारा की संस्कृति एकांगी है।"[33] दलितों की अपनी संस्कृति होते हुए भी हिन्दूओं के साहित्य में और इतिहास में मुख्य रूप में दिखाया नहीं गया। अगर कहीं दिखाई दिया तो विकृत रूप में। प्राचीन काल में सवर्णों के इतिहास में दलितों को अत्यंत नीच और विकृत दिखाया गया है। आज दलित उस सनातनी संस्कृति के विरोध में खुद की संस्कृति को उचित ढंग से उपस्थित कर रहे हैं। "दलित साहित्य के संस्कृति-विमर्श को गहराई से देखने पर पता चलता है कि वह केवल अपनी खोई संस्कृति की पड़ताल चाहता है। दलित साहित्यकारों का कहना है कि यह साहित्य न तो वैकल्पिक साहित्य है और न यह कोई समानान्तर परंपरा या संस्कृति ही गढ़ना चाहता है। दलित साहित्य केवल संस्कृति की पुनर्व्याख्या द्वारा उसका परिष्कार चाहता है।"[34]

संस्कृति किसी भी समाज की अमूल्य धरोहर है। तो दलितों की संस्कृति भी उनके लिए अमूल्य है। दलितों की अनेक जातियाँ, उपजातियाँ प्रत्येक प्रदेश में निवास करती हैं। उन सभी जाति-उपजातियों का अपनी-अपनी संस्कृति है। वे अपनी संस्कृति के प्रति श्रद्धा रखते हैं। दलितों की संस्कृति सवर्णों की संस्कृति से अलग है और जिस संस्कृति का निर्माण खुद दलित समाज ही कर सकता है। दलित साहित्य केवल पीड़ा का ही बखान नहीं करता बल्कि अपनी संस्कृति का रक्षक भी है, जिसे नष्ट करने का प्रयास सदियों से सनातन धर्म ने किया है। दलित साहित्य केवल अपनी संस्कृति की लड़ाई लड़ रहा है। सवर्ण साहित्यकारों की संस्कृति दलित संस्कृति नहीं बन पाती,

---

[33] दलित साहित्य का समाजशास्त्र, डॉ.हरिनारायण ठाकुर, पृ. सं. 87

[34] वही, पृ. सं. 88

जिसके कारण दलित तमाम सवर्ण लेखकों की रचनाओं को नकारता है। क्योंकि सवर्णों की संस्कृति दलित संस्कृति नहीं हो सकती । इसका कारण यह है कि दलित संस्कृति के मूल में मानव है। वह ईश्वर के स्थान पर मनुष्य के महत्व को प्रतिपादित करती है। डॉ. हरिनारायण ठाकुर के शब्दों में "दलित चेतना भारतीय संस्कृति और इतिहास की व्याख्या भाग्य और भगवान की दृष्टि से नहीं, बल्कि तर्क और ज्ञान की कसौटी पर करती है।"35

निर्धनता एवं शोषण के कारण रीत-रिवाज, खान-पान, वेश-भूषा आदि के मामले में दलित दरिद्र है। भले ही वह गरीब, दरिद्र है, पर उनमें एक बात विशेष रूप में देखी जा सकती है और वह है मानवीयता। आज अगर कहीं मानवीयता के गुण जीवित हैं, तो वह दलितों में देखा जा सकता है। आज भी दलित लोग झुगी-झोंपड़ियों में रहते हैं। वे बड़े बदहालती से जीवनयापन करते हैं। वे दिन भर काम करने के बाद शाम को अपने घास-पुस से बनी झोंपड़ियों में विश्राम करते हैं। संपति के नाम पर उनके पास चार-छह सूअर होते हैं। इससे ज्यादा संपति की वह कल्पना ही नहीं कर सकते हैं। फिर भी वे संतुष्ट खुस रहते हैं। सवर्णों की तरह दूसरों के पेट पर लात नहीं मारते हैं। आज तक भलाई को ही अपना कर्तव्य मान कर जीवन निर्वाह कर रहे हैं। पर सनातनी धर्मी समाज ने दलितों के इस रूप को कभी अपनी रचनाओं में जगह नहीं दिया है।बल्कि इसके विपरीत उनके साधारण से जीवन को विकृत रूप देकर समाज के सामने रखा है। इसलिए भारतीय संस्कृति उन दलित पिछड़े जो सिर्फ सवर्णों की सेवा करने को अभिसप्त है उनकी नहीं है। यह संस्कृति कुछ मुट्ठीभर सवर्णों की सुविधा, सुख, ऐय्यासी, वैभव के लिए रची गयी संस्कृति है। यह संस्कृति सभी के लिए नहीं बल्कि कुछ मुट्ठीभर वर्गों के लिए हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि अपनी 'सत्य की परिभाषा' शीर्षक कविता में लिखते हैं कि-

[35] दलित साहित्य का समाजशास्त्र, डॉ.हरिनारायण ठाकुर, पृ. सं. 89

“सत्य की अनेक परिभाषाएँ

बन्द हैं तुम्हारी पुस्तकों में

अनेक व्याख्याएँ दर्ज हैं

मस्तिष्क के कोष्ठकों में।

कैद कर रखा है तुमने तहखानों में

संस्कृति को

मैं पूछता हूँ-

“संस्कृति क्या तुम्हारी रखैल है”?”[36]

कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि अपने समाज का संघर्ष, दुख और उनके संस्कृति को अपनी कविताओं में अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। अब दलित सवर्णों की चिकनी-चुपड़ी बातों में नहीं फंसते। वे जान गये हैं कि यह सनातनी धर्मी समाज उन्हें संस्कृति, रीति-रिवाज और परंपराओं में फंसाकर रखना चाहते हैं। दलित अब सवर्णों के खोखले शास्त्रों की बात पर भी भरोसा नहीं करते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी कविता में जो लोग विश्व की सर्वश्रेष्ट संस्कृति कहकर जिस विषमतावादी संस्कृति का ढोल पीटते हैं उन सभी पर कड़ा प्रहार किया है। वाल्मीकि ने अपनी कविताओं में इस संस्कृति को मुर्दा संस्कृति कहा है।

“मुर्दा संस्कृति की लाश पर

मँडराती चील जश्न मनाएगी

जिसके पंखों के साये में

[36] बस्स ! बुहत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 102

संस्कृति का तकिया बनाकर

शिकारगाह में अधलेटा आदमखोर

निकाल रहा है

दाँत में फँसे मांस के रेशे

नुकीले खंजर से।”[37]

आज तक जो परंपराएँ चली आ रही हैं वह दलितों के लिए ठीक नहीं है। कट्टरपंथी हिन्दूओं द्वारा दलितों के निरंतर प्रताड़ित करना, उनका आर्थिक एवं सामाजिक शोषण करना, उसके साथ अस्पृश्यता का व्यवहार करने की परंपरा रही है। भले ही वे आज बीसवीं सदी में प्रवेश कर चुके हैं, पर आज भी उनके साथ वही व्यवहार हो रहा है। दलितों के लिए सनातनी संस्कृति और परंपरा खोखले नारों जैसा हैं। कवि अपनी कविता ‘वसुधैव कुटुंबकम’ में लिखते हैं-

“सुनता रहा

हर रोज घृणा और द्वेष के मंत्र

कितना खोखला लगता है शास्त्रीय भाषा का

यह शब्द !

वसुधैव कुटुंबकम !”[38]

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने विषमतावादी ब्राह्मण संस्कृति के मानवता विरोधी चरित्रों को उद्घाटित करके समाज को अपनी संस्कृति और सभ्यता से परिचित कराया

[37] बस्स ! बुहत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 46

[38] शब्द झूठ नहीं बोलते, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 25

है। हिन्दू संस्कृति में समानता का अभाव है। यह संस्कृति सिर्फ छुआछूत और असमानता को ही जन्म देती है। सिर्फ ढोंगी संस्कृति का यसगान करना ही सनातन धर्म का काम है। इसके अलावा कभी किसी के विकास के लिए यह संस्कृति प्रयत्नशील नहीं रही है। बल्कि इस संस्कृति के कारण लोग और भी परेशान होते हैं। कवि कहते हैं कि-

"संस्कृति का ढोल

और जोर-जोर से बजने लगा है

जिसके शोर में

हो गया है जीना दुश्वार

एक भूखे और बेरोजगार इंसान के लिए !"[39]

इस सनातन धर्मी समाज में यज्ञों में पशुओं की बलि चढ़ाई जाती है और दूसरी ओर अपनी संस्कृति की रूढ़ि और परंपरा को श्रेष्ठ बताया जाता है। इस पर व्यंग्य करते हुए कवि कहते हैं कि-

"यज्ञों में पशुओं की बलि चढ़ाना

किस संस्कृति के प्रतीक हैं

मैं नहीं जानता

शायद आप जानते हों !"[40]

---

[39] शब्द झूठ नहीं बोलते, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 64

[40] बस्स ! बुहत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 12

दलितों को हमेशा से मारा-पीटा जाता है, गाली दी जाती है। उसके बाद भी उनसे सवर्णों के सारे काम करवाये जाते हैं।

सवर्णों के सभी काम करने पर भी उन्हें अछूत, नीच जाति मानकर उपेक्षा की जाती है। तो यहाँ दलित सवाल कर रहा है क्या आप बता सकते हैं कि यह किस सभ्यता और संस्कृति की देन है। आखिर उनकी संकृति है क्या? किस तरह की है। क्योंकि इस पाखंडी संस्कृति को मार्क्सवादियों ने पूरी तरह से खोखला कर दिया है। इसलिए यहाँ कवि कहते हैं कि-

"वर्ण-व्यवस्था को तुम कहते हो आदर्श

खुश हो जाते हो

साम्यवाद की हार पर

जब टूटता है रूस

तो तुम्हारा सीना 36 हो जाता है

क्योंकि मार्क्सवादियों ने

छिनाल बना दिया है

तुम्हारी संस्कृति को।"[41]

हिन्दूओं के धर्म और संस्कृति में दलितों की कोई आस्था नहीं है। हिन्दू संस्कृति में पूजा के बहाने ईश्वर की निर्जीव मूर्ति को दूध से नहलाते हैं पर जो जिंदा है उसे भूखे मरने के लिए छोड़ देते हैं। जिसे वे संस्कृति का नाम देते हैं। उसी संस्कृति के

[41] बस्स ! बुहत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 50

कारण ही आज दलित वर्ग कंगाल है। इसका यथार्थ चित्रण कवि 'तुम्हारी गौरव गाथा' कविता में करते हैं।

"क्यों लगता है हमेशा

परायापन तुम्हारी संस्कृति से

क्यों उद्धेलित नहीं करते

तुम्हारे अमूर्त भाव।

न जाने कितना दूध

बहा दिया तुमने नाली में

भूखे बच्चों से छीन कर

अरे, तुम्हारे इन्हीं कुकर्मों ने हमें

कंगाल बनादिया है।"[42]

दलितों ने आजीवन सवर्णों की सेवा की है और चुपचाप उनका आदेश का पालन किया। फिर भी इस संस्कृति ने उन्हें अछूत माना है। उनकी छाया से भी घृणा की है। इस संस्कृति के कारण दलितों की क्या स्थिति रही है। इसका चित्रण कवि 'मेरे पुरखे' कविता में इस तरह करते हैं

"तन पर कपड़े नहीं

पेट में अन्न नहीं

[42] बस्स ! बुहत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 52

जख्म इतने फिर भी

वे हँसते थे

तुम्हें हँसता देखकर

कितने मासूम थे वे

मेरे पुरखे

जो इन्सान थे

लेकिन अछूत थे!"[43]

इस प्रकार वाल्मीकि ने दलितों के संस्कृतिक परिवेश का वर्णन करते हुए समाज को दलितों का संस्कृति और सभ्यता से परिचित कराया है।

3.1.6 दलित स्त्री जीवन

स्त्री के अनेक रूप हैं। जैसे माँ, बहन, पत्नी, बेटी, बहू आदि। स्त्री के इन सभी रूपों को दलित कविता केन्द्र में रखती हैं। पुरूष प्रधान समाज ने स्त्री का सदियों से अनेक स्तरों पर शोषण किया है। आज भी उसकी स्थिति में कोई खास अंतर नहीं आया है। दलित महिलाओं की स्थिति और भी भयानक है। समाज में सबसे निचले स्तर पर होने के कारण दलित स्त्री को तमाम अमानवीय यातनाओं से गुजरना पड़ता है। दलितों की आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण दलित लड़कियों को अनेक असुविधाओं का शिकार होना पड़ता है। जहाँ उन्हें एक वक्त की रोटी जुगाड़ करने में मुस्किल हो जाता है वहाँ समाज में प्रचलित दहेज प्रथा के कारण लड़कियों की शादी करना और भी मुस्किल होता है। जिसके फलस्वरूप लड़कियों की उम्र बढ़ने लगती है। फिर उन्हें कोई शादी करने के लिए तैयार भी नहीं होता। ऐसा नहीं है कि दलित,

[43] बस्स ! बुहत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि , पृ. सं. 99

गरीबी होने कारण उन लड़कियों की आँखों में सपने नहीं आते, पर गरीबी के कारण उनके सपने आँखों में ही रह जाते हैं। गरीबी के कारण वे शिक्षा से भी वंचित होते हैं। ऐसी दलित लड़कियों के जीवन की दास्तान वाल्मीकि जी की कविता 'कच्ची मुँडेर पर' में देखने को मिलती है-

"कबूतर की तरह बैठी लड़की

सपनों भरी आँखों में

बुनती है दहशत

हथेली की ओट से

ताकता है दूर जाते पाहूणे को

बूढ़े दिनों का प्रलाप।"[44]

आज समाज में दहेज के कारण स्त्रियों के साथ ज्यादा अन्याय हो रहा है। इस दहेज के कारण दलित स्त्रियों को पीटा जाता है और जलाया भी जाता है। इस दहेज प्रथा के कारण ही लड़कियाँ माता-पिता के ऊपर बोझ बन जाती हैं। आर्थिक परिस्थिति कमजोर होने के कारण लड़कियाँ कई साल तक घर में रहती हैं। लड़कियों की इस स्थिति को उजागर करते हुए वाल्मीकि जी लिखते हैं कि-

"लड़की उदास है-

कब तक छिपाकर रखेगी जन्मतिथि।"[45]

---

[44] बस्स ! बुहत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 25

[45] वही, पृ. सं. 24

इस गरीबी के कारण ही दलित लड़कियाँ शिक्षा के क्षेत्र में भी पीछे हैं। उनकी इच्छा आगे पढ़ने और समाज को अच्छी तरह से जानने को रहती है। वह भी खूबसूरत जिंदगी जीने के लिए चाहती है। परंतु समाज उसे यह सब करने नहीं देता। समाज ने उस पर अनेक आरोप लगाता है। इस पर विचार प्रकट करते हुए कवि लिखते हैं कि-

"बाहर एक दुनिया है

जिसे वह पकड़ना चाहती है

भीतर एक दुनिया है

जिसे वह जानना चाहती है

आँगन में

पेड़ की तरह खड़ा भय

उसे शक्तिहीन कर देता है।"[46]

समाज में दलितों की स्थिति तो बदतर है। उससे कही गुण ज्यादा बदतर दलित स्त्रियों की स्थिति हैं। दलित स्त्री घर में तो काम करती है साथ में बाहर भी मजदूरी करने जाती है। अगर मजदूरी करने नहीं जायेगी तो उसके बच्चों को भूखे सोना पड़ता है। कभी-कभी तो उसे मजबूरन में अपने नन्हें बच्चों को घर पर छोड़कर भी जाना पड़ता है। और तब उस बच्चों की स्थिति क्या होती होगी उसका अंदाजा लगाना मुस्किल है। कवि उस स्थिति का वर्णन यहाँ करते हैं-

"हाथ में लिये झाड़ू

---

[46] बस्स ! बुहत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 58

और टूटा-फूटा कनस्तर

सुबह मुँह अँधेरे

घर से निकलती माँ को देखकर

कभी नहीं रोया बच्चा

डरा नहीं अकेले घर में

अँधेरे कोने से

या गली में गुर्राते कुत्ते से।"[47]

जगह-जगह पर गंदे काम करने के लिए, झाड़ू लगाने के लिए, किसीका झूठा साफ करने के लिए दलित स्त्री सुबह भोर के समय में उठकर घर में छोटे बच्चे को छोड़ निकल पड़ती है। गली-मुहल्ले में गंदगी साफ करते-करते अपने मासूम बच्चे को भूल जाती है, जिसे वह घर पर छोड़कर आयी है। बच्चा भूख से रोता है और उसके आने के इंतजार में रहता है। कवि यहाँ लिखते हैं-

"गली-मुहल्लों की गंदगी ढोते-ढोते

भूल जाती है माँ

पीछे छोड़ आयी दो मासूम आँखों को

जो टकटकी लगाये

देख रही हैं राह

उसके लौट आने की।"[48]

---

[47] बस्स ! बुहत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 81

दलित स्त्री को मजबूरन घर से बाहर मजदूरी करने जाना पड़ता है। वह खेत-खलिहान और इंट की भट्टि में मजदूरी करने जाती है। जहाँ सवर्णउसके साथ क्रूर व्यवहार करते हैं। उसे सरेआम बलात्कार करके निर्वस्त्र करते हैं। और इस व्यवहार के लिए वे कभी शर्मिंदा नहीं हुए हैं। सवर्णों ने कभी दलित स्त्रियों को प्रेम की नजर से या सम्मान की नजर से नहीं देखा है। सिर्फ उसके शरीर को भोगने के लिए सर्वदा इच्छुक रहता है। इस अन्याय को सहकर भी कुछ नहीं कर पाती। बस शोषण का शिकार होकर उसे तिलतिल मरना पड़ता है। वाल्मीकि जी दलितों की इस स्थिति का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि-

"याद करो,

उस बेटे का चेहरा

जिसके सामने फेंक दिये हों

नोचक-नोचकर

उसकी माँ के वस्त्र

याद करो,

उस बूढ़े बाप का चेहरा

जिसने खेत जोता दिन भर

काटी फसल।"[49]

कल भी ये सवर्ण समाज के लोग दलित महिलाओं के साथ अश्लील व्यवहार करते थे और आज भी कर रहे हैं। इस व्यवहार के लिए उन्हें कोई पछतावा भी नहीं

---

[48] बस्स ! बुहत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 81

[49] बस्स ! बुहत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 42

है। यह भी कहा जा सकता है कि यह लोग कभी बदलना नहीं चाहते। यह जो सब गंदे व्यवहार वह दलित महिलाओं के साथ करते हैं इसका सिर्फ एक ही कारण है और वह है जाति का अंहकार। ऊँची जाति के अंहकार में वह इतना विभोर हो जाते हैं कि उन्हें याद भी नहीं आता कि क्या सही और क्या गलत है। दुनिया में निर्जिव वस्तु भी बदलना जानते हैं पर ये जातिवादी लोग बदलना नहीं जानते। कवि इनकी इस स्थिति को देखते हुए लिखते हैं कि-

"वृक्षों ने डर कर

छोड़ दिया है उगना

नदियाँ सूखने लगी हैं

या फिर मुड़ गई हैं

रास्ता बदल कर

तुम्हारी बस्तियों से दूर

वे जानती हैं

तुम कभी नहीं बदोलोगे

तुम्हारी जाति ही ऐसी है।"[50]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि वाल्मीकि की कविताएँ दलित स्त्रियों के जीवन में व्याप्त विभिन्न समस्याओं को उजागर करती है।

[50] शब्द झूठ नहीं बोलते, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 23

3.2 बासुदेव सुनानी की कविताओं का परिवेश

3.2.1 सामाजिक परिवेश

समाजशास्त्र के अनुसार 'मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है'। किंतु क्या प्रत्येक मनुष्य वास्तव में सामाजिक प्राणी होता है? अगर हाँ तो फिर समाज में कुछ ही वर्गों के लोगों के साथ असामाजिक जैसा व्यवहार क्यों किया जाता है। शूद्र समूह पर सभी का नियंत्रण है। वह सबका दास है। वह भी समाज में जन्म लेता है और मृत्यु तक समाज के अंदर अपना जीवन व्यतीत करता है। क्या उसे जीने का हक नहीं है? समानता का अधिकार नहीं है? उसे उस कुएँ से अपनी प्यास बुझाने का हक नहीं, जिस कुएँ के निर्माण में लगी एक-एक इंट उसके हाथ से लगायी गयी है। दलित गांव के बाहर रहें, उनके नाम अमंगल हो, वे संपत्ति जमा न करे, केवल गधे, कुत्ते या सुअर पाले, वे कफन का वस्त्र पहनें, वेद न पढ़े, संस्कृत न सीखे, क्योंकि इससे शूद्रों को अपने शोषण की जानकारी मिले। उनको अमंगल, अभद्र और अस्पृश्य जीवन जीने को मजबूर किया गया। वे अगर इस तरह चुपचाप न जिएं तो उनके लिए कठोर सज़ा का प्रावधान भी किया गया। किसी देश की सामाजिक स्थिति के लिए स्वतंत्रता, समता, भाईचारा अनिवार्य अंग है। क्या भारतीय समाज में इन तीनों अगों का अस्तित्व है? इस संदर्भ में रूपचंद गौतम का कहना है "यह बात सही है कि मनुष्यों के समूह को समाज कहा जाता है, पर यह बात भारत में अभी तक तय नहीं हो पाई है कि मनुष्यों के कर्तव्यों के आधार पर समाज का वर्गीकरण हो। देश में साक्षरता भी बढ़ी है और मशीनीकरण का ग्राफ भी ऊँचा हुआ है। दलितों के रंग रूप व कारोबार बदले हैं,

लेकिन उनके सिर से जातिवाद का सांचा अभी तक नहीं उतरा है। आज भी मनुष्य के जन्म के आधार पर समाज का वर्गीकरण हो रहा है।" [51]

भारतीय समाज में स्पृश्य और अस्पृश्य का भेद भाव सदियों से प्रचलित है। जन्म के कारण लोग अस्पृश्य माने जाते हैं। वे अन्य लोगों से नहीं मिल सकते। उनको समाज से दूर रहना पड़ता है। सामाजिक क्षेत्र में उन पर तरह-तरह के अत्याचार होते हैं। उनकी बात सुननेवाला कोई भी नहीं होता। वे गांव से या शहर से दूर हो जाते हैं। उनका कोई आदर नहीं होता। हिन्दू धर्म व्यवस्था ने दलितों की छाया, स्पर्श और वाणी को अस्पृश्य माना है। जन्मतः मनुष्य को अस्पृश्य और गुनहगार माना है। इसीलिए दलितों को हमेशा गांव से बाहर रखा गया है। इस विषमतावादी समाज व्यवस्था का उदाहरण हम बासुदेव सुनानी की कविता में देख सकते हैं। बासुदेव सुनानी ने (गाँ मुंडकु जाअ) 'गाँव के अंत में जाओ' कविता में यह दर्शाते हैं कि किस तरह सवर्णों ने दलितों को गाँव के बाहर रहने के लिए आदेश दिया है-

"जाओ

गाँव के अंतिम छोर पर घर बनाओं

अलग जगह में घाट

चलते समय दूर होकर चलना

हम रास्ता बनायें हैं।"[52]

इस तरह दलितों पर अनवरत रूप में जुल्म और अत्याचार होते रहे। सवर्ण ठाकुर या जमींदार अपनी इच्छा के अनुसार दलितों को दंड देते थे। दलितों को न

[51] आजाद भारत में दलित, रूपचन्द गौतम, पृ. सं. 61

[52] अस्पृश्य, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 20

मंदिर में जाने देते थे न विद्यालय में। अगर वे जाते तो उन पर हमले किये जाते। दलितों पर दबाब डालकर गंदे काम करने के लिए मजबूर करते हैं और दलितों को कड़ा आदेश भी दिया जाता है कि जब कभी तुम्हें काम के लिए बुलाया जायेगा तब तुम्हारी उपस्थित अनिवार्य है। इस संदर्भ में बासुदेव सुनानी लिखते हैं कि-

"गंदा मैला साफ करने के लिए

जब तुम्हें बुलाया जायेगा

आकर बैठना तब

आँगन के बाहर

तुम्हें काम करने के लिए बोला जाएगा।"[53]

इस तरह सदियों से दलितों ने सामाजिक उत्पीड़न सहा है, विषमताएँ झेली है। हिन्दू समाज व्यवस्था में अनेक तरह के भेदभाव दिखाई देते हैं। जैसे सवर्ण-अवर्ण का भेद, छूत-अछूत का भेद, जाति-जाति में भेद स्त्री और पुरूष के सामाजिक दर्जे का भेद आदि। सवर्ण दलितों के साथ जैसा व्यवहार करते हैं वैसे पशु से भी नहीं करते हैं। पशु-पक्षि को अपने घर में जगह देते हैं। उन्हें प्यार से खाना खिलाते हैं, गोद में सुलाते हैं पर दलितों की छाया से भी नफरत करते हैं। एक पशु के मोल को भी आदमी से श्रेष्ट मानते हैं। पशु के मल-मूत्र को पीते हैं पर दलितों को छूने से वे अछूत हो जाते हैं। इससे कवि व्यथीत हो उठते हैं और लिखते हैं कि-

"थोड़ा सा पैर रख दिया

तुम्हारे आँगन में

[53] अस्पृश्य, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 20

मिट्टी को गोबर पानी से

शुद्ध कर रहे हो।"[54]

सवर्णों के इस व्यवहार से दलित दुखी हैं। आज तक वे यह नहीं समझ पाये आखिर उनका पाप क्या है? क्यों उनके साथ पशु से भी बदत्तर व्यवहार किया जाता है। इस असमानता के कारण लोग पीड़ित है। इस प्रकार सामाजिक क्षेत्र में शोषण की प्रवृत्ति के विभिन्न रूप प्रत्यक्ष रूप से परिलक्षित होते हैं।

कुछ मुट्ठी भर लोगों को सभी प्रकार के मानवीय अधिकार प्राप्त होते हैं और बहुंसख्यक समाज इससे वंचित होता है। सभी प्रकार के मानवीय अधिकार जैसे-शिक्षा ग्रहण करना, संपत्ति अर्जित करना, आत्मरक्षा के लिए शस्त्र रखने का अधिकार दलितों को नहीं था। बासुदेव सुनानी अपनी कविता में लिखते हैं कि-

"घर ऊँचा मत बनाओ

बनाओ गोशाला जैसा

पता चलेगा लोगों को दूर से जैसे

यह तो अस्पृश्य का घर है

तुम्हारी पत्नी हमारा गोबर फेंकेंगी

तुम बनोगे हमारे घर में बारह महिने के दास

बच्चे तुम्हारे बकरा पालेंगे

हम होगें तुम्हारे अन्नदाता"।[55]

---

[54] अस्पृश्य, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 12

इस हिन्दू समाज व्यवस्था ने न सिर्फ अवर्ण या अछूत समाज की स्वाधीनता को छीना बल्कि उसकी स्वतंत्रता को भी छीन लिया। परंपरागत हिन्दू समाज की बुनियाद ही विषमता है, सामाजिक असमानता है।

भारतीय समाज में विषमतावादी व्यवस्था का जड़ जाति व्यवस्था है। भारतीय समाज में जाति एक महत्वपूर्ण घटक है। वर्ण व्यवस्था ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि चार वर्णों पर आधारित समाज व्यवस्था है जो भारतीय समाज में प्राचीन काल से आज तक किसी न किसी रूप में चली आ रही है। इसी से जाति व्यवस्था निकली। अधिकांश विद्वानों के अनुसार यह व्यवस्था प्रथमतः कर्म के आधार पर निर्मित थी। बाद में इसे धर्म ग्रंथों का हवाला देकर जन्मता बना दिया गया। ब्राह्मणों का काम समाज के लिए ज्ञानार्जन था। वे शिक्षण, पुरोहिती, यज्ञादि अनुष्ठानों का कार्य करते थे। क्षत्रियों का कार्य अपने बाहुबल से समाज की रक्षा करना था। वैश्य उत्पादन एवं पशुपालन आदि के कार्य करते थे और शूद्रों का कार्य सेवा था। वे अन्य सभी वर्गों की सेवा करते थे और बदले में समाज के अन्य वर्गों द्वारा उनका भरण-पोषण होता था। किंतु धीरे-धीरे इस व्यवस्था में विकृतियाँ आती गयी और यह भारतीय समाज के लिए घातक हो गया। बाद में इस व्यवस्था पर श्रेष्ठ-अश्रेष्ठता का भाव हावी होते चला गया और इसमें कोई अत्यंत नीच तो कोई अत्यंत उच्च बन गया। जाति प्रथा इसीसे उत्पन्न हुई। शूद्र सामाजिक संरचना के सबसे निचले स्तर पर अवस्तित था अतः सबसे निकृष्ठ और उपेक्षित वर्ग था। मनुस्मृति में उसकी स्थिति को और भी दयनीय और निकृष्ठ बतायी गयी है। छूत-अछूत की परंपरा ने दलितों की स्थिति को और लाचार बना दिया। इस छूत-अछूत की भावना से कवि बासुदेव सुनानी अत्यंत आहत है। अपनी कविता में वे अपनी वेदना को इस तरह से दर्शाते हैं कि-

[55] अस्पृश्य, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 20

“प्रति दिन साबुन मारकर

डुबकि लगा कर

रगड़ रगड़ कर

तैरते तैरते नाहते हो

फिर भी अस्पृश्य छोड़ा नहीं

शरीर में लगा हुआ है।”[56]

आज हिन्दू समाज का सबसे बड़ा अभिशाप यह जाति प्रथा ही है। जो दीमक की भांति हमारे समाज को लगी हुई है और इस समाज को खोखला बना रही है। आज यह देखा जा रहा है कि यह जाति व्यवस्था सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में भी एक अहम भूमिका निभा रही है। इस संदर्भ में लोहिया ने कहा था “जाति और योनि समाज के दो कटघरे हैं, जिससे बाहर निकले बिना इस देश का विकास नहीं हो सकता।”[57] और अंबेडकर कहते हैं कि “आप किसी भी दिशा में देखें, जाति एक ऐसा दैत्य है जो आपके मार्ग में खड़ा है। आप जब तक इस दैत्य को नहीं मारेगें, आप न कोई राजनीतिक सुधार कर सकते हैं, न कोई आर्थिक सुधार।”[58]

उच्च वर्ग हमेशा से ही अपना वर्चस्व कायम रखना चाहता है। उसे यह मान्य न था कि उसे कोई नीचा दिखाए। इसलिए उसने जाति भेद, छुआ-छुत आदि की आड़ में निम्न वर्ग को अपना गुलाम बनाये रखने का ही प्रयास किया। खुद को शुद्ध करने के लिए सवर्णों ने तरिका निकाल दिया। पर दलितों को ऐसे कोई तरीका नहीं सिखाया

[56] अस्पृश्य, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 4

[57] भारत में पिछड़ा वर्ग आन्दोलन और परिवर्तन का नया समाजशास्त्र, हरिनारायण ठाकुर, पृ. सं. 215

[58] अपेक्षा, जनवरी-मार्च 2011, पृ. सं. 59

जिससे वह भी शुद्ध हो जाये। दलित वर्ग हमेशा से ही अछूत रहेंगे पर सवर्ण अनेक तरीके से शुद्ध हो जायेंगे। कवि लिखते हैं कि-

"सुद्धि जन!

तुम लोग जानते हो क्या?

सब स्पर्श

अस्पृश्य हो जाता

सवर्ण जब पानी में डुबकि मारता

कपड़े बदल देता।"[59]

कवि को यह बात कचोटती है कि अगर सवर्ण कपड़े बदल कर, पानी में डुबकी लगा कर शुद्ध हो जाते हैं तो फिर दलित वर्ग क्यों नहीं। दलित यह सब करने पर भी अस्पृश्य क्यों रहता है? क्या दलित मनुष्य की श्रेणी में नहीं आता? मानव होते हुए भी मानवीय व्यवहार दलितों के साथ नहीं किया गया। दलितों के लिए शूद्र-अतिशूद्र, चांडाल, अस्पृश्य शब्दों का प्रयोग किया गया। शूद्र अर्थात दलितों को भारतीय समाज के उच्च वर्ग द्वारा अस्पृश्य अपवित्र समझा गया। डॉ.धर्मवीर के शब्दों में "भारत में वह कौन सी बुराई है, जो दास प्रथा से भी अधिक खतरनाक और घिनौनी है? एक शब्द में बताया जाए कि वह अस्पृश्यता है।"[60] छुआ-छुत, अस्पृश्यता भारतीय समाज का एक कलंक है। निम्नजातिवालों के लिए अलग बस्ती होना, उनके साथ बुरा बर्ताव करना यह सब जाति व्यवस्था की समस्या को दर्शाता है। एक ही

59 अस्पृश्य, बासुदेव सुनानी, पृ.सं. 4

60 दलित उत्पीड़न की परंपरा और वर्तमान, मोहनदास नैमिशराय, पृ. सं. 21

समाज में एक आदमी मेहनत करके पूरी तरह दुःख भोगता है और दूसरा आदमी मेहनत न करने पर भी सभी सुख-सुविधाएँ भोगता है। सवर्णों के पास सभी मानवीय अधिकार हैं पर दलितों के पास कुछ नहीं सिवाय दुःख के। न खाने के लिए भोजन न रहने के लिए एक ढंग का घर। दलित एक ऐसी झोंपड़ि में रहते हैं जहाँ सवर्ण अपने पालतू जानवरों को भी न रखे। उनका घर कैसे रहता है, उसका वर्णन करते हुए कवि लिखते हैं कि-

“घर में घुसा

हे, शिर लगेगा

बाबू जरा झुक कर चलो

एक जीता-जागता ड़र

हमारा घर

हाँ...विश्वास कीजिए

देखने में चौकीदार घर

गणा बस्ति में सबसे बड़ा हमारा घर

पर छोटा द्वार

बस्तियों में

अन्य सबका घर

सूअर शाला जैसा घर।”[61]

[61] सायद प्रेम करना मुझे नहीं आता, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 27

देश में आज के संदर्भ में देखा जाए तो एक बड़ा समुदाय विद्यमान है जो दो वक्त की रोटी के लिए तरसता है। उसके पास न पहनने के लिए कपड़े है न रहने के लिए झोंपड़ी। आज भी वह गंदी जगह में रहते हैं, जूठन खाकर पेट भरते हैं। दलितों की दयनीयय स्थिति का वर्णन कवि बासुदेव सुनानी इस तरह करते हैं-

"अति सामान्य बात है

कि यहाँ

बिल्ली-कुत्ते के समान

ऐसा कौन प्राणी है

जो फ्रेस खाना छोड़कर

जूठन खाना पसंद करता है

सड़ी गंदगी में

पेट भरता है

खाना रहने पर

कौन लालायित है

मल खाने को "[62]

इस तरह दलितों की स्थिति को देखकर कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं होगा जिसका हृदय नहीं पिघलेगा। पर दलितों की इस स्थिति से सवर्णों का कोई मतलब नहीं है, न कोई ग्लानी भी है।

---

[62] अस्पृश्य, बासुदेव सुनानी, पृ.सं. 56

भारत में आजादी के बावजूद दलितों को लगातार शोषण और अत्याचारों का सामना करना पड़ रहा है। आज भी भारतीय समाज का सबसे मजबूत आधार सामाजिक श्रेणीक्रम ही है, जो जाति और वर्ण व्यवस्था से बनता है। आज भी जाति व्यवस्था किसी न किसी तरह जिंदा है। इस संदर्भ में मैनेजर पाण्डेय का कहना है "हिन्दू समाज की जाति व्यवस्था रबर से भी अधिक लचीली और इस्पात से भी अधिक मजबूत है। वह भारतीय समाज के इतिहास की प्रत्येक अवस्था के अनुरूप बनकर आज तक जीवित है।"[63] आज भी पंडितों को जाति और धर्म के नाम पर सलाम करना पड़ता है। आज भी अधिक संख्या में जनता गरीबी, असमानता और सामाजिक-सांस्कृतिक रूढ़ियों में कैद है। आजादी के पहले और आजादी के बाद खास परिवर्तन नहीं हुआ है। लेखक अपनी कविता में कहते हैं कि-

"एक शताब्दी बीती है

नारसेना नाईडू फिर भी जिंदा है

फिर भी

वह अस्पृश्य रहा है

गांव के आरंभ में अस्पृश्य बस्ति में

रह रहा है।"[64]

यहाँ एक प्रश्न उठता है कि आखिर ये आज़ादी किसे और क्यों ? आज़ादी क्या उच्च वर्ग वालों के लिए हैं? आखिर हम आजादी किसको समझे? दिनभर धूप-गर्मी में

[63] दलित चेतना सोच, रमणिका गुप्ता (भूमिका)

[64] अस्पृश्य, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 59

काम करने पर भी दो वक्त की रोटी न देने वाले इस समाज की देन को आजादी समझे? अत्याचार के खिलाफ उठते आवाज को दबा देनेवाली इस व्यवस्था को आजादी समझे? क्या आज दलितों के पास अपनी कोई जमीन है? क्या आज गांव में दलितों को सार्वजनिक कुएँ से पानी भरने दिया जाता है? आधुनिक भारत में भी जातिवाद की खाई कम नहीं हुई है। आज भी गांव में दलितों को छूने से परहेज किया जाता है। अब दलित वर्ग इन सबसे परेशान हो गया है और इन सबसे मुक्ति चाहता है। आज दलित सवर्णों से सवाल कर रहा है।

"किस गंगा में धोऊँगा

मल भरा मेरा शरीर

कितनी मात्रा में तुलसी

कितनी मात्रा में चंदन

आवश्यक है

शरीर शुद्धि के लिए

शरीर महक के लिए।"[65]

हिन्दू सामाजिक व्यवस्था ने दलितों को इस तरह दबाया है कि वे सवर्णों के खिलाफ कुछ नहीं कर सकते। जो सवर्णों का आदेश होता उसे खुशी-खुशी मान लेते हैं, कभी कोई सवाल-जवाब नहीं करते। फिर भी सवर्णों के शोषण का शिकार होते हैं। तब कवि का मन कचोटता है तो कवि 'नबकलेवर' कविता में कहते हैं कि-

[65] सायद प्रेम करना मुझे मालूम नहीं है, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 133

“तुम जहाँ से बोले थे

मैं वहीं खड़ा हूँ

पीठ खुजलाने की इच्छा होती है

जंभाई मारने को मन करता है

पर मैंने कुछ किया नहीं,

मैंने कुछ इसलिए नहीं किया कि

तुम्हारे आदेश को मैंने माना है

चुपचाप खड़ा हूँ।”[66]

दलितों ने सदियों से इसी तरह सवर्णों के आदेश का चुपचाप पालन किया है। न कोई सवाल और न कोई जवाब। उनकी गंदगी साफ किया, उनका जूठन खाया, उनके शादी व्याह में नाच-गान कर उनका मनोरंजन किया। उनके बाराती के साथ-साथ लाईट पकड़ कर चला। लाईट पकड़ते-पकड़ते खुद गिरा पर बारात को अंधेर से बचाया। ये काम करते हुए कभी कोई सवर्ण उनकी प्रसंसा नहीं किया। उनके ढोल के ताल से खूब नाचा और खुशी में विभोर हो गया। पर एक बार भी नहीं सोचा कि दलितों को भी ये सब करने का एक अवसर मिलना चाहिए। ये सोचना तो दूर उसे खाना तक खिलाने में भी उसके आगे जाति और छुआछूत का भाव आ गया। दलितों की इस स्थिति को दर्शाते हुए कवि लिखते हैं कि-

“मैं कहता हूँ

राय सिंह !

[66] सायद प्रेम करना मुझे मालूम नहीं है, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 110

तुम एक अच्छा ढोल बजानेवाला हो

विवाह समय में

तुम्हारे ढोल आवश्यक है सबको

तुम्हारे ढोल-ताल में

हो जाते हैं सब विभोर, नाचते हैं, गाते हैं

पर

खाते समय बन जाते हो अस्पृश्य, अछूत

दूर दूर भागते हैं, चिड़ते हैं सब।"[67]

दलित भी इसी समाज का एक हिस्सा है। उन्हें भी उतना अधिकार है जितना सबको है। फिर भी उनके साथ अन्याय और भेद क्यों। इससे कवि बहुत दुखीत है। कवि लिखते हैं-

"दुःख यह है कि

अपनी मिट्टी में

अपने परिवेश में

अपने समाज में

अपने गाँव में

मैं खुद ही अस्पृश्य हूँ

खुद ही अस्पृश्य

[67] बांस अंकूर का बाजार, बासुदेव सुनानी, पृ.सं. 25

सारे के सारे वर्ष

सारी की सारी उम्र

सारी की सारी पीढ़ी

अस्पृश्य !

अस्पृश्य !

अस्पृश्य !"[68]

सुनानी अपनी कविताओं में गाँव के परिवेश का यथार्थ वर्णन करते हैं। वे खुद गाँव में रहनेवाले थे। उनकी ज्यादा अनुभूति गाँव की ही है। गाँव का परिवेश उनकी कविता में ज्यादा मुखरित हुआ है। उन्होंने अपनी कविता 'गाँव का वर्णन' शीर्षक में एक भारतीय गाँव का सुन्दर वर्णन किया है। गाँव की सुन्दरता के वर्णन के साथ-साथ उन्हेंने गाँव में प्रचलित जाति-व्यवस्था को भी नहीं भूले हैं। वे इस गाँव का वर्णन करते हुए कहते हैं कि-

"मित्रों

प्राचीन काल से अस्पृश्यता को

जाति के नाम पर

बस्ति, गली, मुहल्ला बनाकर

रगड़-रगड़ कर बचानेवाला

जिंदा जमींन का नाम ही

[68] अस्पृश्य, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 74

भारतीय गाँव।"[69]

अंत में यह कहा जा सकता है कि सुनानी ने दलितों के सामाजिक परिवेश को अपनी कविताओं में कथानक बनाकर समाज के सामने लाने की कोशिश की है।

3.2.2 आर्थिक परिवेश

एक लोकोक्ति 'धनम् मूलम इहम जगत' के अनुसार धन ही सबका मूल है। किंतु डॉ.अंबेडकर ने इस वाक्य को नकारते हुए कहा कि भारत में अन्य चीजों के साथ धन के मूल में भी जाति ही है। निम्न जातियों को विपन्न व गरीब बनाने वाली व्यवस्था ही भारत की जाति व्यवस्था है। जाति के कारण ही उच्च जाति के लोगों के हाथ में समस्त अधिकार व सत्ता केन्द्रीत है तो उसी जाति के कारण निम्न व पिछड़ी जातियाँ गरीबी में त्रस्त हैं। ये पीड़ित जाति के लोग अधिकार व सत्ता से वंचित हैं। इस देश में गरीबी के कारण लोगों को निम्न जाति नहीं कहा जा रहा है। निम्न जातियों में पैदा होने के कारण गरीब होते जा रहे हैं। निम्न जातियों में पैदा होने के कारण ही वे संपत्ति, सत्ता और समादार के समीप नहीं पँहुच पा रहे हैं। ऐसे ही अमीरों के रूप में पैदा होने के कारण लोग उच्च जाति के नहीं बन रहे हैं, अतः जाति व्यवस्था के नींव पर आर्थिक व्यवस्था का भवन खड़ा हुआ है। दलितों के विकास में सबसे बड़ा रोड़ा है वर्ण व्यवस्था और उससे उत्पन्न जातिवाद। जब तक यह व्यवस्था रहेगी तब तक समाज में समता, समानता लाना कठिन है। इस संदर्भ में एम.एल. खोबरागड़े का कहना है कि "जब तक वर्ण व्यवस्था जीवित रहेगी, जातिवाद भी तब तक जीवित रहेगा। जब तक ब्राह्मणवाद का अस्तित्व है अछूतपन का भी अस्तित्व बना रहेगा। यदि जातिवाद को समाप्त करना है तो वर्ण व्यवस्था को पहले समाप्त करना होगा। वर्ण व्यवस्था के अस्तित्व में जातिवाद का समाप्त होना संभव नहीं है।

[69] सायद प्रेम करना मुझे मालूम नहीं है, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 80

जातिवाद के कारण सामाजिक एकता, समता, समानता और राष्ट्रीयता की भावना का विकास कभी हो ही नहीं सकता।"[70] सामाजिक प्रतिष्ठा और आर्थिक विकास दोनों को प्राप्त करने पर ही दलित मुक्ति संभव है। लेकिन इसे प्राप्त करने के मार्ग में सबसे बड़ा अवरोध जाति है।

दलितों को सामाजिक न्याय के साथ आर्थिक न्याय भी चाहिए। दलित केवल अछूत है ऐसा नहीं है वह गरीब भी हैं। और उनकी इस अवस्था का कारण है हिन्दू जाति व्यवस्था। आज दलित के पास खुद की जमीन नहीं है, उत्पादन का कोई साधन नहीं है। वह दूसरों के ऊपर निर्भर रहता है। क्योंकि पहले से ही उसको इन सब अधिकारों से वंचित रखा गया। उसे धन संग्रह का कोई अधिकार प्राप्त नहीं था। दलितों को संपत्ति जमा करने के अधिकार से वंचित किया गया। उनके ऊपर अनेक आर्थिक, प्रतिबंध लगाये गये। उन्हें एक घृणित एवं अभिशप्त जीवन जीने के लिए बाध्य किया गया। आर्थिक पिछड़ेपन के कारण दलितों के समस्त राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार छीन लिये गये। मनुस्मृति के अनुसार "ब्राह्मण ही विश्व का जन्मदाता है। यह संहारक और शिक्षक है, इसलिए उसे किसी भी मनुष्य को कटु वचन अथवा अपमानकारक बात नहीं कहनी चाहिए। शूद्र को चाहिए कि ब्राह्मण की सेवा करें जो ब्राह्मण का सेवक होगा, उसे ही दूसरे जन्म में भी अच्छी गति प्राप्त होगी। ब्राह्मण की सेवा शूद्र का सबसे सुन्दर व्यवसाय है। इसके अतिरिक्त कोई व्यवसाय वह करेगा, उसे इच्छित फल नहीं मिलेगा। यदि शूद्र धन संग्रह में सक्षम हो, तो भी उसे नहीं करना चाहिए। जो शूद्र धन संग्रह कर लेता है, वह ब्राह्मण को पीड़ित

[70] दलित चेतना सोच, रमणिका गुप्ता, पृ. सं. 82

करता है।" [71] इस तरह इनका अधिकार दूसरों की सेवा करने के सिवाय कुछ नहीं माना गया है। इस प्रकार आर्थिक क्षेत्र में जहाँ दलित समाज शोषण का शिकार हो गया है, वहाँ उसको अन्य क्षेत्रों में आगे बढ़ने के लिए अवसर भी नहीं मिलते। दलितों को सिर्फ सामाजिक और आर्थिक शोषण का ही शिकार नहीं होना पड़ता है, बल्कि इस शोषण के साथ-साथ वे सामंती उत्पीड़न का शिकार भी होते हैं। सीधे तन कर चलना, साफ धोती पहनना और जमींदार के सामने खटिया पर बैठना उनके लिए नामुमकिन था। दलितों को यह इजाजत नहीं थी कि वह घोड़ों पर बैठकर शादि करने के लिए आये। दलित स्त्री को बजने वाली चीज पहनने की मना ही थी। अगर दलित यह जाति आधारित अमानवीय परंपरा का विरोध करते थे या उल्लंघन करते थे तो उनको दंड दिया जाता था। ऐसे ही सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और सामंती शोषण को झेलते हुए समाज में कौन सा ऐसा मनुष्य होगा जो अपनी आर्थिक उन्नति कर सकेगा। 'मनुस्मृति' में कहा गया है कि धनोपार्जन में समर्थ होकर भी शूद्रों को धन संग्रह नहीं करना चाहिए। मनुस्मृति के रचनाकारों ने दलितों के कर्म केवल सेवा करना मानकर उसे ज्ञान प्राप्ति के सामान्य अधिकारों से वंचित कर दिया। सिर्फ सवर्णों को सेवा के लिए ही नियुक्ति किया गया। इस संदर्भ में सुनानी लिखते हैं कि-

"जाओ जाओ तुम अस्पृश्यों

गाँव के अंतिम भाग में

हमेशा तुम काम पर आना

वहाँ घर बनाकर रहो।"[72]

---

[71] डॉ.भीमराव अंबेडकरः व्यक्तित्व के कुछ पहलू, मोहन सिंह, पृ. सं. 127

[72] अस्पृश्य, बासुदाव सुनानी, पृ. सं. 20

आदिकाल से ही दलितों को उत्पीड़ित किया गया। उसे गंदे और भद्धे कार्य करने के लिए बाध्य किया गया, जिसके कारण आज दलित वर्ग आर्थिक विपन्नताओं में जी रहा है।

दलित समाज को सदियों से अंधेरे में ढ़केल दिया गया। उन्हें पशुवत जीवन जीने के लिए अभिशप्त किया गया। रात दिन मेहनत करने पर भी उनका दो वक्त का गुजारा नहीं होता था। ऐसी अवस्था में दलितों की प्रगति कहां संभव थी। ऐसे ही हज़ारों सालों से दलित दीनावस्था में रहा और आज भी वह दो वक्त की रोटी जुटाने में परेशान है। आज भी दलितों के पास भूमि और भवन का घोर अभाव है। दलितों की सबसे बड़ी समस्या उसकी गरीबी है। गरीबी का मुख्य कारक असमानता। चाहे वह ज़मीन हो, संपत्ति हो या अधिकार हो।

बासुदेव सुनानी ने 'रोना सहज नहीं है' शीर्षक कविता में दलितों के प्रति उच्च वर्ग के वैमनस्य भाव एवं दलितों की गरीबी का बड़ा मार्मिक चित्रण किया है। दलितों की आर्थिक स्थिति इस कदर कमजोर है कि वे जीवन भर के परिश्रम से अपना सिर छिपाने के लिए ढंग की झोंपड़ी भी नहीं बना पाते हैं और एक-एक दाने के लिए तरसते हैं पर वे खुश रहते हैं। उनकी गरीबी को दर्शाने वाले चित्रण निम्न प्रकार है-

"भूख में

पेट में आग लगने पर भी

पसीने पीते-पीते

मन में बुहत हँसी।"[73]

---

[73] सायद प्रेम करना मुझे मालूम नहीं है, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 128

दलितों की हालत देख कर केवल यही कहा जा सकता है कि वे अमानवीय हालात में किसी तरह ज़िंदगी गुजार रहे हैं। उन्हें ढंग का भोजन नहीं मिलता है, रहने को आवास भी नहीं है। जब दलित कहीं भी गंदगी साफ करता है और वहाँ से उससे सवर्णों का फेंका हुआ खाना मिलता है तब वह सोचने के लिए मजबूर होता है कि जो खाना पाने के लिए उन्हें इतनी मेहनत करनी पड़ती है, उसी खाने को सवर्ण कैसे फेंक सकते हैं। यह कैसा समाज है जहाँ एक वर्ग अन्न फेंक देता है वहीं दूसरा वर्ग उसी अन्न को खाने के लिए तरसता है। यह कैसी विडंबना है ? कवि लिखते हैं कि-

"अंततः

मेरा परिवार चलाने के लिए

जितने अंगूर और भात की जरूरत

जो उतना फेंकदेता है

वह कौनसा द्रव्य

ठीक ठीक खाता है।"[74]

दलित जातियों के टोले मुख्यतः गांव से दूर स्थित होते हैं और वह जिस दिशा में रहते हैं उस दिशा को अशुभ माना जाता हैं। उनके जो घर होते हैं सूअरों के लिए बनाये जानेवाले बाड़ों से खास बेहतर नहीं होते। दलित मजदूरों को एक नजर में पहचाना जा सकता है। वे खेतों में मजदूरी करते हैं, सूअर पालते हैं। उनके चेहरे, हाथ, पैर, मुद्रा और भाव सभी उनकी गरीबी का बयान करते हैं। उनके मिट्टी के घरों में किसी तरह का मामूली दरवाजा तक नहीं होता है। दलित लोग दिनरात मेहनत

[74] अस्पृश्य, बासुदाव सुनानी, पृ. सं. 18

करते हैं। दूसरों का घर बनाते हैं। आज जो बड़े-बड़े भवनें में धनी लोग रह रहे हैं, उसकी एक-एक ईंट भी दलितों ने बनायी है। पर खुद के लिए एक ढंग का घर बनाने के लिए उनके पास सामर्थ्य नहीं है। कवि बहुत ही दुखी मन से लिखते हैं कि-

"गाँव में ईंट बनाने वाला आदमी

जुगाड़ नहीं कर पाता ईंट-पत्थर

अपने घर बनाने लिए

पांच-दश हजार।

हमेशा मन में उठता है प्रश्न

हमारे बस्ति, गाँव के बाहर क्यों

हमारा छोटा दरवाजा क्यों

छोटा दरवाजे में

हमेशा चूहे जैसा घुसना

पड़ता है घर के अंदर।"[75]

गरीबी इन्सान को हर तरह का काम करने के लिए मजबूर कर देती है जिससे उसकी अस्मिता पर सवाल उठे। कभी उन्हें ठाकुरों की खुशामद करने पर मजबूर कर देती है तो कभी बेगारी करने पर, कभी जूठन उठाने पर तो कभी मरे हुए पशु की खाल निकालने को। यह सब काम दलितों को अपनी भूख मिटाने के लिए करना पड़ता है। कवि को दलितों का यह हाल कचोटता है तो वे लिखते हैं कि-

[75] सायद प्रेम करना मुझे मालूम नहीं है, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 28

"मैं नहीं जानता

कितने दशक से सब तुम्हारे काम

थोड़े सढ़े चावल-पानी

मुठ्ठीभर टूटी चावल के लिए

कर रहा हूँ, कर रहा हूँ।"[76]

इन सब आर्थिक विपन्नताओं का कारण है बेरोजगार होना। गांव में दलित पशुवत जीवन जीते हैं। रोजगार का कोई निश्चित माध्यम न होने के कारण वे हमेशा एक अनिश्चितता का जीवन जीते हैं। आर्थिक विपन्नता इसकी कमर तोड़ देती है। और ठेकेदार और शोषक वर्ग दलितों की आर्थिक मजबूरी का नाजायज फायदा उठाते हैं। दरिद्रता के कारण वे खुलकर विरोध भी प्रकट नहीं कर पाते हैं। दलितों को मजबूरन बेगारी करनी पड़ती है। एक वक्त का खाना दिलाकर दलितों से मजदूरी वसूल किया जाता है। कवि 'गणा बस्ति में सब सस्ता' शीर्षक कविता में लिखते हैं कि-

"गणा बस्ति में मजदूरी माफ

एक बार बोलने से

किसी को भी ले जा सकते हैं

थोड़े से चावल-पानी में

गंदगी साफ।"[77]

---

[76] अस्पृश्य, बासुदाव सुनानी, पृ. सं. 63

[77] सायद प्रेम करना मुझे मालूम नहीं है, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 118

बेगार प्रथा के कारण दलित दिन भर मेहनत मजदूरी करने पर भी भूखा रहता है। यह आर्थिक शोषण भारतीय ग्रामीण व्यवस्था का हिस्सा है जिसके कारण दलितों का शोषण होता चला आया है। कवि इस बेगार प्रथा का उल्लेख करते हुए लिखते हैं कि-

"खेत में काम करना है

गणा बस्ति में मजदूर सस्ता

सौ रुपये के बदले पचास में काम होता

समाज में सबसे विश्वासी और सत्यवादी पुरूष

तुम्हारा काम सब हो जाता।"[78]

ऐसे कम दाम में काम करने के लिए दलित लोग विवश हैं। शारीरिक श्रम के बदले उन्हें कोई आर्थिक लाभ तो नहीं मिलता ऊपर से जरा सी देर होने पर मिलती है सिर्फ गालियाँ। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से यह सामाजिक भेदभाव ही उनकी कमजोर आर्थिक स्थिति का कारण है। आर्थिक विषमता ही समस्त समस्याओं की जड़ है। समाज में जो छुआछूत एवं भेदभाव आदि हैं उसका कारण भी कहीं न कहीं आर्थिक विपन्नता से जुड़ा हुआ है।

3.2.3 धार्मिक परिवेश

भारतीय समाज धर्म प्रधान समाज है। भारतीय समाज में धार्मिक प्रवृत्ति का जितना महत्वपूर्ण स्थान है उतना महत्वपूर्ण स्थान और किसी को नहीं मिल सकता। यहां धर्म एक प्राचीन परंपरा है। आदिम काल से लेकर आज तक भारतीय समाज के लोग अपने प्रत्येक कार्य में धर्म को महत्व देते हैं। धर्म के आधार पर समाज में किसी

[78] सायद प्रेम करना मुझे मालूम नहीं है, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 119

न किसी रूप में अनादि काल से शोषण की प्रवृत्ति चली आ रही है। वास्तव में हिन्दू धर्म ही तमाम बुराईयों एवं शोषण का केन्द्र है। इसी धर्म के कारण ही दलितों को सदियों से अनेक यातनाओं का शिकार होना पड़ा। मंदिरों में उनके प्रवेश पर प्रतिबंध, खानपान तथा मिलने-जुलने में छुआछूत ब्राह्मणों के समान रीति-रिवाजों, त्योहारों आदि के न मानने पर रोक आदि अनेक कारणों से दलितों की स्थिति समाज में जानवरों से भी बदतर रही है। इसलिए डॉ.अंबेडकर ने कहा था कि "इस भूमि को मैं कैसे अपना देश कहूँ और इस धर्म (हिन्दू) को कैसे अपना धर्म मानूं, जहां हमसे पशुओं से भी बुरा व्यवहार किया जाता है, जहां हमें पीने का पानी भी नहीं मिल पाता... मेरा अपना कोई देश नहीं है।"[79] धार्मिक कारणों से समाज में असमानता का भाव प्रस्फूटित होता है। जातिवाद का आधार धार्मिक प्रवृत्ति है। हिन्दू धर्म के अनुसार ही कोई उच्च है तो कोई नीच। धर्म ने ही श्रम करने वालों को शूद्र और अछूत कह दिया और जो दूसरों के श्रम पर पलता है उसे उच्च या श्रेष्ठ नाम दे दिया। हिन्दू धर्म ने जाति के नाम पर मनुष्य का बंटवारा किया है। जिस धर्म में मनुष्यता ज़िंदा नहीं है उस धर्म को तिरष्कृत करने का आह्वान करते हुए अंबेडकर ने कहा था "आप लोगों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि मैं धर्म परिवर्तन करने जा रहा हूँ। सभी सुने मैं हिन्दू हूँ और हिन्दू रहूँगा। मैं हिन्दू धर्म में पैदा हुआ लेकिन हिन्दू धर्म में रहना नहीं चाहता। इस धर्म से खराब दुनिया में कोई धर्म नहीं हैं। इसलिए इसे त्याग दो। इस धर्म में लोग पशुओं से भी गये बीते हैं। सभी धर्मों में लोग अच्छी तरह रहते हैं। लेकिन इस धर्म में अछूत समाज से बाहर है। स्वतंत्रता और समानता प्राप्त करने का एक रास्ता है धर्म परिवर्तन। यह सम्मेलन पूरे देश को बतायेगा कि महार जाति के लोग धर्म परिवर्तन के लिए तैयार हैं। महार को चाहिए कि हिन्दू त्यौहारों को मानना बंद करें, देवी

[79] दलित उत्पीड़न की परंपरा और वर्तमान, मोहनदास नैमिशराय, पृ. सं. 32 पर उद्धृत

देवताओं की पूजा बंद करें। मंदिर में भी न जाएं। जहां सम्मान न हो उस धर्म को सदा के लिए छोड़ दे।”[80]

हिन्दू धर्म दलितों के लिए नरक का काम करता है पर इस धर्म में ब्राह्मणों को विशेषाधिकार प्राप्त हैं। इस देश में धर्म के नाम पर ब्राह्मणों ने अपने आप को सुरक्षित रखा और दलितों को दास बनाया। ब्रह्मणों का असली मुद्दा है शूद्रों को गुलाम बनाए रखना, उनकी कमाई पर जीना। धर्म की आड़ लेकर ब्राह्मणों ने शूद्रों के प्रत्येक क्रियाकलाप में हस्तक्षेप किया है उन्हें बुद्धू बनाकर स्वर्ग-नरक के, पाप-पूण्य के, विभिन्न देवीदेवता के किस्से गढ़ कर भयभीत कर रखा है। हजारों बरसों से ब्राह्मण गरीबों को ठगते आये हैं। साधारण लोगों को पाप पुण्य दिखाकर भय और प्रलोभन देते हैं। भगवान के नाम पर समाज में शोषण की प्रवृत्ति अत्यंत उग्र रूप से चलती है। आम आदमी धर्म ग्रन्थों में लिखी झूठी बातों को परम सत्य मान लेते हैं। उन लोगों की धारणा बन गई है कि वह बात झूठ-मूठ की नहीं हो सकती और यह लोग अंधविश्वास, रूढ़ि-रिवाजों में फंसते जाते हैं। आज भी कहीं-कहीं लोगों में अंधश्रद्धा दिखाई देती है। आज भी लोग बीमार होने पर डाक्टर को बुलाने के बदले भगत को बुलाते हैं। देवी-देवताओं पर सूअर, मुर्गे, बकरे की बली चढ़ा दी जाती है। हिन्दू धर्म ग्रंथों की इसी बात को अपनी अज्ञानता और अशिक्षा के कारण दलित लोग सत्य मान लेते हैं। उनके लिए यह भेद करना मुश्किल हो जाता है कि क्या सही है और क्या गलत। इस संदर्भ में दलित कवि बासुदेव सुनानी कहते हैं कि-

“न जंगल की डाली

न चमार की तलवार

[80] डॉ.भीमराव अंबेड़करः व्यक्तित्व के कुछ पहलू, मोहन सिंह, पृ. सं. 39

न जाति न धर्म

न मंदिर न मस्जिद

किसी को न पहचाना

जिसने जो कहा

मान लिया

एक ठेट बकरे की तरह।"[81]

इस कविता में कवि पूरे दलित वर्ग को एक बकरी के रूप में संवोधित कर रहे हैं। दलित वर्ग के लोग एक बकरे के समान तो थे। उन्हें जिसने जो सिखाया वे मान लिये। उन्हें धर्म, मंदिर, जाति आदि के नाम पर फंसा कर बकरे के समान बलि चढ़ा दिया गया। अपनी अज्ञानता के कारण वे इन सबसे अनजान रह गये।

हिन्दू धर्म में रीति रिवाज के नाम पर अंधविश्वास व पाखंड का प्रदर्शन ज्यादा होता है। हिन्दू धर्म अंधविश्वास पर चलने वाला धर्म है। यह धर्म नहीं आम आदमी के ऊपर एक संकट है। जो धर्म निर्धन को निर्धन, अज्ञानी को अज्ञानी और निर्बल रहने पर मजबूर करता है पर आम आदमी इसको नहीं समझ पाता है बल्कि अपना भाग्य मान कर रह जाता है और सब रूढ़ी-रिवाजों को निभाने को मजबूर होता है। क्योंकि यदि वे धर्म के विरूद्ध जाकर किसी भी रीति-रिवाज को नहीं मानेंगे तो उनका गुजारा नहीं होगा। वे दो वक्त की रोटी के लिए सवर्णों के ऊपर निर्भर हैं। अगर उनके द्वारा कही गयी बात को सिरोधार्य नहीं करेंगे तो उन्हें मिलेगा सिर्फ मार और गाली। इस सनातन धर्मी समाज ने धर्म के नाम पर दलितों को हमेशा से डराया, धमकाया। उन्हें समाज से बहिष्कृत करने के लिए और उनकी रोजी-रोटी छीनने के लिए धमकाया। कवि अपनी कविता में लिखते हैं-

[81] सायद प्रेम करना मुझे मालूम नहीं है, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 56

“अरे, बाबू!

जिसने छूत-अछूत

पहले बनाया

वह क्या मूर्ख था?

वह क्या जानवर था?

धर्म को पहचानों जरा

क्यों होते हो उतना उग्र

अस्पृश्यों

तुम अस्पृश्य ही रहो

नहीं तो

शादी-विवाह में नहीं मिलेगा खत्त

लगेगी पेट में आग।”[82]

इसी तरह सवर्णों ने छूआछुत को धर्म का नाम देकर दलितों को डराकर अपने वश में किया। इसी धर्म ने दलितों की सोच को नष्ट कर दिया। दलित समाज कर्मकांड में उलझ कर अपने विकास का रास्ता ही भूल गया। और इसकी वजह पंडे और पुरोहित है जो इस तरह के कर्मकांड में दलितों की मानसिकता को जकड़ कर रखा। किसी भी तरह सामाजिक चेतना के बल पर दलितों को समानता प्राप्त हो यह वे बिलकुल पसंद नहीं करते। पुरोहित वर्ग अपने धर्मशास्त्र के आधार पर लोगों में

[82] अस्पृश्य, बासुदाव सुनानी, पृ. सं. 28

अंधविश्वास की भावना फैला रहा है और दलित समाज के लोग अशिक्षा के कारण इस आध्यात्मिक मायाजाल में जकड़े हुए हैं। इन पंडे और पुरोहितों को और उनके भारी-भारी शब्दों के मायाजाल को पहचानना मुस्किल है। इन्होंने अपने इसी मायाजाल रूपी शब्दों से दलितों के लिए अनेक नीति-नियम बना दिया। इसी नीति-नियम को ईश्वर का नाम दिया। इन पुरोहित वर्गों ने अपने शब्दों के मायाजाल में फंसा कर विकास के तमाम स्तरों को अवरूद्ध कर रखा हैं। इनके नियती की चर्चा करते हुए कवि लिखते हैं कि-

"तुलसी पैधे में देवी है

उसे नहीं लगाना

परिवार में लगता कलंक

फलों में नरियाल श्रेष्ठ

ईश्वर के विशिष्ठ

नहीं लगाना मिट्टी में

सपने में भी अ.. आ.. विद्यालय मंत्र

नहीं करना उच्चारण

जीभ कट सकती है।

नहीं करना प्रवेश

मंदिर में

देवता के अभिशाप से

नष्ट हो सकता है वंश

इस प्रकार विस्फोट शब्दों

की पहचान

नहीं होता आसान।"[83]

इस तरह इन पंडे पुरोहितों ने अपनी बातों से दलितों को गुमराह कर उनके विकास के सारे पथ बंध कर दिये हैं। जिसके फलस्वरूप दलित वर्ग शिक्षा से और अर्थ उपार्जन से वंचित हो गये। आज भी इसी बात पर विश्वास कर अंध श्रद्धा के आवरण से मुक्त नहीं हो पा रहे हैं।

हिन्दू धर्म में इतनी बुराईयाँ हैं कि उस धर्म में रहते हुए दलितों की उन्नति की कामना करना संभव नहीं है। जब तक हिन्दू धर्म बना रहेगा तब तक न लोकशाही की स्थापना हो सकती है न सामाजिक न्याय की। इस संदर्भ में धर्मकीर्ति का कहना है "जब कोई व्यक्ति, समाज अथवा राष्ट्र अंधविश्वासों से घिरा रहता है और ईश्वर आदि के ज़ंजीरों से जकड़ा रहता है तब तक वह किंचित मात्र भी किसी क्षेत्र में उन्नति एवं विकास नहीं कर सकता। अंधविश्वासों से शोषण, उत्पीड़न, अन्याय और अत्याचारों में वृद्धि होती है। अंधविश्वास से समाज और देश में संपत्ति, प्रकृति और समाज का संतुलन बिगड़ जाता है जिससे गरीब-गरीब और अमीर-अमीर होता चला जाता है।"[84]

भारत अनेक धर्मों का उदय स्थल रहा है और समाज धर्म से बहुत प्रभावित है। इसका ही एक परिणाम है सांप्रदायिकता। पुराने जमाने में धर्म का अर्थ था न्याय की वकालत करना पर आज इसका अर्थ और स्वरूप बदल गया है। धर्म का अर्थ सांप्रदायिकता बन गया है। इस सांप्रदायिकता की भावना के कारण मनुष्य अपना

---

[83] अस्पृश्य, बासुदाव सुनानी, पृ. सं. 8

[84] आजाद भारत में दलित, रूपचंद गौतम, पृ. सं. 115

धर्म, समाज और राष्ट्र के बारे में नहीं सोचता। यह सांप्रदायिकता की भावना ही है जो मानवता को खत्म करके मनुष्य को पशु से बदतर ज़िदगी जीने के लिए मजबूर करा रही है। यह भावना आज देश तथा देश की एकता को खोखला बना रही है। धर्म के नाम पर दंगे होना, समाज में आतंक फैलाना, क्रूरता, धोखाधड़ी करना आज सामान्य बात हो गयी है। जो लोग एक पल में अपनेपन से जीते हैं वहीं लोग दूसरे पल में दुश्मन बन जाते हैं। जहाँ कहीं भी सांप्रदायिक दंगे होते हैं उसके प्रणेता अधिकांशतः पुरोधा वर्ग से होते हैं पर हत्या, जुल्म आदि पीड़ा और संताप झेलने वाले अधिकतर गरीब लोग ही होते हैं। इस हिन्दू धर्म ने सदियों से गरीब और दलितों का ही शोषण किया है। इस धर्म ने गरीब, दलितों को कुछ नहीं दिया है सिवाय दुख के। इस धर्म में ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे दलितों को लाभ हो। इसलिए आज दलित वर्ग के लोग अपने आप को हिन्दू नहीं मान रहे हैं। क्यों रहे ऐसे धर्म में जहाँ सदियों से उन्हें नहीं अपनाया गया। इस धार्मिक व्यवस्था से क्रोधित होकर कवि लिखते हैं कि-

"मेरा धर्म से मुझे

मिलता है क्या

केवल घृणा

अस्पृश्यता, अंधविश्वास

जैसे छी छी भावना।

सोच लीजिए

अगर शूद्र, अस्पृश्यों हिन्दू होते

धार्मिक स्थलों में प्रवेश क्यों नहीं करते

उन्हें अनुमति क्यों नहीं दी जाती।"[85]

बासुदेव सुनानी की कविताओं में सांप्रदायिकता व धर्म के असली चेहरे का वर्णन हुआ है और वे अंबेडकर की वाणी 'धर्म के लिए मनुष्य नहीं है, वास्तव में धर्म मनुष्य के लिए है' को अपनी कविताओं के माध्यम से समझाने की कोशिश करते हैं।

3.2.4 राजनैतिक परिवेश

स्वतंत्रता पूर्व भारत पर अंग्रेजों का शासन था। अंग्रेजों के हाथों से स्वतंत्र होकर भारत जनतंत्र प्रणाली पर आधारित देश बन गया है। अब हमारा देश जनतांत्रिक देश है। इसे जनता के द्वारा, जनता के लिए, जनता की सरकार कहते हैं। क्या वास्तव में यह सब हुआ है? क्या जनता के द्वारा, जनता के लिए, जनता की सरकार बनी है? वास्तविकता यही है कि भारत में जनतंत्र सिर्फ दिखावा है। यहां कहते कुछ और करते कुछ और है। वास्तव में आज भी जनतंत्र पर अमीरों का राज है। सांसदीय जनतंत्र सिर्फ अमीरों का भला करता है न कि गरीब, मजदूरों और दलितों का। इसका कारण बताते हुए अंबेडकर ने कहा "समस्त राजनैतिक समाज दो वर्गों में विभाजित है शासक और शासित। यह एक बड़ी बुराई है। इसका दुर्भाग्यपूर्ण भाग यह है कि शासक हमेशा शासक वर्ग से आते हैं और शासित वर्ग कभी शासक वर्ग नहीं बनता। संसदीय लोकतंत्र कभी भी जनता द्वारा जनता की सरकार नहीं होती। बावजूद इसके यह एक लोकप्रिय सरकार होती है, सच यह है कि यह वंशगत शासक वर्ग द्वारा वंशगत शासित वर्ग की सरकार है। यही राजनीतिक जीवन का वह दोष है, जिसमें संसदीय लोकतंत्र का वह दोष है, जिसने संसदीय लोकतंत्र को निराशाजनक

[85] अस्पृश्य, बासुदाव सुनानी, पृ. सं. 50 पर उद्धृत है

रूप से विफल किया है। यही कारण है कि संसदीय लोकतंत्र स्वतंत्रता, संपत्ति, सुख पाने की आम आदमी की अभिलाषा को पूरा नहीं कर सका।"[86] राजनीति में भी सवर्णों का वर्चस्व है। दलितों का राजनीति में सिर्फ एक ही काम है और वह काम यह है कि चुनाव के समय में होने वाले प्रचार में योगदान। कहीं चुनाव की रॉली होती है तो बहुसंख्यक जनता की उपस्थिति को दर्शाने के लिए राजनीतिज्ञ इन गरीब दलितों को बहलाके ले जाते हैं। इन गरीब दलितों को कुछ पैसे देकर रॉली में शामिल करवाते हैं। उन मासूम लोगों को यहाँ तक भी मालूम नहीं होता कि वे इस प्रचार में किस लिये आये हैं। इस संदर्भ में कवि बासुदेव सुनानी लिखते हैं कि-

"बाबू गये थे गाँव को

हाथ जोड़कर बोले थे

काम नहीं है कुछ

लोगों के साथ ताल देकर

कतार में चलना

हाथ में झंडा लेना

मन में इच्छा आयी तो

ऊँची आवाज में

जय-जय कार बोलना ।"[87]

[86] दलित चेतना सोच, रमणिका गुप्ता, पृ. सं. 45
[87] छीः, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 58

दलितों का राजनीति में सिर्फ यही योगदान है इसके अतिरिक्त और कुछ प्रतिनिधित्व नहीं है। इसका एक ही कारण है अशिक्षा और गरीबी। शिक्षा से वंचित होने के कारण उन्हें राजनीति का ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ। गरीबी के कारण वे हमेशा अभाव से लड़ते रहे। राजनीति आदि चीजों को समझने के लिए उन्हें समय ही नहीं मिला। देश स्वतंत्र होने पर भी दलितों की बेबसी, लाचारी, गरीबी कम नहीं हुई। तो उन्हें स्वतंत्र होना और राजनीति जैसे शब्दों से क्या मतलब? कवि अभिमान से लिख रहे हैं कि-

"सुवर्ण जयंति के आनंद में

एक दिन भी बकरे चराना

नहीं छोड़ते

एक दिन भी भूख में

नहीं रह पाते

जल्दि जल्दि

बकरे को ले जाते हो

कि टूटा हुआ स्कूल घर के सामने

लहराते हुए पवित्र तिरंगे में

धूल लग जाती है।"[88]

गरीब दलित को अपनी भूख मिटाने के लिए श्रम करना पड़ता है। अगर एक भी दिन काम नहीं करेगा तो भूखा रहेगा। इसके लिए यह स्वतंत्रता दिवस या

[88] महुआ जंगल, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 77

राजनीति कोई मायने नहीं रखती। इसलिए कवि कहते हैं इससे अगर तिरंगे को धूल लगती है तो दोष किसका है?

चुनाव के समय नेता लोग सिर्फ भाषण देते हैं। यह लंबा भाषण सिर्फ दलित लोगों को फंसाने का माध्यम है और दलित यह नहीं समझ पाते। आखिर जो सवर्ण नेता कल अंबेडकर के नाम से नाक मुंह सिकोड़ते थे और अब उनकी आरती उतारते हैं। इसके पीछे उनकी साजिश है वे सिर्फ दलितों का समर्थन पाकर, उनके वोट से सत्ता हासिल करना चाहते हैं। वे जनता से सिर्फ उतना ही संबंध रखते हैं, जितनी राजनैतिक आवश्यकता होती है। एक बार चुनाव जीतने के बाद वे देश को भूल जाते हैं और मौज-मस्ति में दिन काटते हैं। अतः राजनेताओं को संबोधित करते हुए कवि लिखते हैं कि-

"देश के बारे में सोचकर

क्यों अपनी उम्र कम करना

बल्कि ब्लू फिल्म देख कर

पूरी रात गुजारना

जिंदेगी वास्तव में सुन्दर है

आईये मिलकर करेंगे उपभोग।"[89]

स्वतंत्रता के बाद से लेकर आज तक की सरकारी नीतियों में कहीं भी दलित वर्गों के साथ न्याय नहीं किया गया है। चुनाव पूर्व घोषणाएं तो बहुत होती रही हैं मगर उसे व्यवहार में लानेवाले बहुत कम ही हैं। चुनावों की प्रक्रिया के द्वारा जो नेता

[89] सायद प्रेम करना मुझे मालूम नहीं है, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 117

बनते हैं, वे संसद के सदस्य बनते हैं। उनके हाथों में राजनैतिक सत्ता होती है और वे देश के विकास के लिए निर्णय लेते हैं, ऐसा आम आदमी उम्मीद रखता है पर वास्तव में ऐसा होता नहीं है। वे सभाओं में लंबे-लंबे भाषण देते हैं। वादे करते लेकिन निभाते नहीं हैं।

दलितों की समस्या मात्र सामाजिक, सांस्कृतिक या आर्थिक नहीं है बल्कि राजनीतिक भी है। राजनैतिक प्रक्रिया में भाग लेने का अबसर उनको कम मिला। क्योंकि दलित वर्ग भारतीय समाज में आरंभ से ही उपेक्षित वर्ग रहा। शिक्षा ग्रहण और धन संपत्ति संग्रह करने में वंचित रहे। शिक्षा के क्षेत्र में पीछे रहने के साथ-साथ आर्थिक पक्ष की कमजोरी के कारण वे हाशिये पर अपना गुजर-बसर करते थे। उन परिस्थितियों में राजनैतिक शब्दावली का ज्ञान उन्हें कहां प्राप्त होता।

राजनीति आज स्वार्थी नेताओं का आखाड़ा बन गयी है। स्वार्थपरता एवं अवसरवादिता ने राजनेताओं को कहीं का नहीं रखा है। नेता, चुनाव के समय में अपने कार्यकर्ताओं का इस्तेमाल करके उनसे काम लेते हैं। पद जीतने के बाद वह दिखाई तक नहीं देते हैं। आज कल के राजनेताओं का मुख्य लक्ष्य है चुनाव जीतना न कि समाज सुधारना। ऐसे राजनीतिक स्थितियों का और स्वार्थी नेताओं का बेबाक चित्रण बासुदेव सुनानी की कविताओं में हुआ है।

3.2.5 सांस्कृतिक परिवेश

भारतीय समाज में चार्तुवर्ण्य व्यवस्था प्राचीन काल से आज तक किसी न किसी रूप में विद्यमान रही है। यह व्यवस्था भारतीय संस्कृति की एक विशेषता मानी जाती है। आर्य भारत आकर भारत के मूल निवासियों को युद्ध में हराकर उनके ऊपर शासन किया। मूलनिवासियों के ऊपर कब्जा करने के बाद वर्ण और वर्ग व्यवस्था की नींव डाली। इन मूल निवासी दलित आदिवासियों को हीन घोषित करने

के साथ-साथ उनके रोजगार के साधन को भी हीनता की दृष्टि से देखने की परंपरा कायम रखी। इन अज्ञान मूलनिवासियों को जन्म एवं कर्म के सिद्धांत के षड़यंत्र में फंसाकर उन्हें जड़ बनाकर रखा। इस तरह सदियों से जाति, धर्म और भगवान भारतीय संस्कृति के अंग बन गये। और इस नई संस्कृति ने दलितों को अज्ञान और गरीबी में जीवन-यापन करने के लिए बाध्य किया। कवि बासुदेव सुनानी दलितों की बदहालती का कारण आर्य तथा सवर्ण संस्कृति को मानते हुए लिखते हैं कि-

"मेरी जिंदगी

मेरी परंपरा

मेरी अशिक्षिता

मेरी गरीबी

आदि के लिए

केवल तुम ही जिम्मेदार हो

तुम!

तुम!"[90]

विभिन्न जातियाँ, अनेक संप्रदाय एवं वर्ण व्यवस्था की रंगभूमि है हमारा भारतीय समाज। छुआछूत, धर्मग्रंथ एवं वेदपुराण पर प्रतिष्टित आध्यात्मिक चिंतन आदि भारत की धार्मिक एवं सांस्कृतिक विचारधाराओं की आधार शिला है। हिन्दुओं के द्वारा बनाया गया धर्म शास्त्र शूद्रों के स्पर्श, छाया और वाणी को भी अपवित्र मानकर उन्हें अस्पृशित घोषित कर दिया। उन्हें चंडाल, अस्पृश्य, अछूत आदि कई नामों से पुकारा हैं। लिखना, पढ़ना और धनोपार्जन से उन्हें वंचित रखा गया। अगर

[90] अस्पृश्य, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 53

किसी भी दलित व्यक्ति ने यह सब करने की कोशिश की तो उन्हें कठोर दंड दिया गया। मृत्यु भय से किसी ने भी इसके बारे में और ज्यादा सोचने की कोशिश नहीं की। सवर्णों के खेत और घर में सेवा करना ही उनका परम धर्म निर्धारित कर दिया गया। मोक्ष प्राप्ति दलितों के लिए असंभव घोषित किया गया। शिक्षा के द्वार उनके लिए हमेशा के लिए बंद हो गये। उनका आर्थिक शोषण भी हुआ। दलित न शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं न अपना पेशा बदल सकते हैं। सवर्णों ने जो कार्य उनके लिए निर्धारित किया उसे वे करने के लिए बाध्य थे। सवर्णों के द्वारा निर्धारित वर्ण व्यवस्था के कारण समाज में ऊँच-नींच की प्रथा का आविर्भाव हुआ। इन सब ऊँच-नींच और छुआछूत जैसे पाखण्डों के जिम्मेदार सवर्णों को मानते हुए कवि लिखते हैं कि-

"साधारण लोगों के मन में

अस्पृश्यता के बीज

बोने वाले

तुम हो

मेरी संस्कृति को छोड़ने के लिए

षड़यंत्र रचने वाले

तुम हो।"[91]

वेद, पुराण और धार्मिक ग्रथों के द्वारा शूद्रों पर अनेक सामाजिक, आर्थिक तथा शौक्षणिक पावंधियाँ लगाकर उन्हें सदैव अपमानित करने का प्रयास किया गया। इन धर्म ग्रंथों में शूद्रों के लिए जो व्यवस्था की गई थी, आज के वैज्ञानिक युग में भी भारतीय समाज पर उसका पूरा प्रभाव है। ये नियम धार्मिक ग्रंथों में जितने

[91] अस्पृश्य, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 53

प्रभावशाली ढंग से लिखे गये है ये व्यवहार में भी उतने पुख्ता हुए हैं। आज भी व्यक्ति की पहचान उसके कर्मों से नहीं बल्कि जाति से की जाती है। हिन्दू संस्कृति में समाज में समानता के अवधारणा के लिए कोई जगह नहीं हैं। यह एक ऐसी संस्कृति है जो समाज के बहु संख्यक बहुजन को अपवित्र मानती है। उन्हें समाज से दूर रखती है। इसको देखते हुए साफ-साफ प्रतीत होता है कि दलितों की संस्कृति और हिन्दू संस्कृति में काफी अंतर है। इसे कवि बासुदेव सुनानी के शब्दों में हम देख सकते हैं-

"गाँव हमेशा बंटा दो भागों में

एक गणा बस्ति

दूसरी सवर्ण बस्ति

एक अस्पृश्य

दूसरा संर्पकीय

कर्म और संस्कृति में

दोनों एक से भिन्न।"[92]

दलित समाज की अपनी संस्कृति रही है। अपनी परंपरा रही है। जिसे आर्यों ने एक समतामूलक संस्कृति को नष्ट कर दूसरी असमानतामूलक संस्कृति को स्थापित किया। यह असमानतावादी संस्कृति आज जो द्वेष और घृणा पर टिकी है उससे कवि नफरत करते हैं और इस संस्कृति को छोड़कर अपनी परंपरावादी संस्कृति को अपनाने के लिए कवि दलितों को प्रेरित करते हैं। कवि सिर्फ अपनी संस्कृति को अपनाते हैं और उसी संस्कृति में जीना चाहते हैं। कवि अपनी पुरानी संस्कृति से माफी मांगते हुए लिखते हैं

[92] सायद प्रेम करना मुझे मालूम नहीं है, बासुदेव सुनानी, पृ. सं 121

“मुझे माफ करना

वो मेरे लाख घर के समाज

मुझे माफ करना

मेरी परंपरा

मुझे माफ करना

मेरी देवी-देवता

पितृ-पुरूष

मैं हूँ तुम्हारा।”[93]

3.2.6 दलित स्त्री जीवन

समाज में स्त्री का महत्वपूर्ण स्थान है। स्त्री मानव समाज का निर्माण और विकास करती है। अतः सामाजिक दृष्टि से नारी की महता स्वयंसिद्ध है। किन्तु इन सबके बावजूद भारतीय समाज में पुरूष का वर्चस्व रहा। नारी, पुरूष सत्तात्मक समाज में पुरूषों के हाथ में कठपुतली एवं भोग विलास का साधन मात्र बनकर रह गयी। उसकी निजी तथा सामाजिक स्थिति दयनीय हो गयी। सामाजिक बंधनों में वह बुरी तरह जकड़ गई। समाज के सारे धर्म, नीति, नियम, आचार केवल नारी के लिए ही बने हैं। मनुस्मृति में नारी को नरक कहा गया है। उनके चरित्र पर आरोप लगाते हुए उन्हें हमेशा नीचा दिखाया जाता है। मनु स्त्री के बारे में कहता है “स्त्रियां बुद्धिमान नहीं होती वे दुर्वल, चंचल, पापी होती है, सिर्फ चूल्हा चौका पति और घर

[93] अस्पृश्य, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 68

के सब लोगों की सेवा करना उसका कर्तव्य और धर्म है।"[94] स्त्री को किसी भी प्रकार की स्वाधीनता देना मनु को मान्य नहीं था। समाज व्यवस्था के नियामक अन्यायी मनु ने नारी को सदैव पुरूष के अधीन और उसकी गुलाम बनाकर उस पर अनेकानेक प्रतिबंध लाद दिया, उसे नरक के गर्त में धकेलने की पूरी साजिश मनु ने रची थी। अंबेडकर के शब्दों में "स्त्री के बारे में मनु के विधि-विधान विक्षिप्तता के प्रमाण है, मनु ने कानून बनाते समय न्याय अन्याय को ताक पर रखा।"[95] पितृसत्तात्मक समाज में सदियों से स्त्री को मूलभूत अधिकारों से वंचित रखा गया। आज भी भारतीय नारी प्रभुत्ववादी पुरूष के चंगुल में फंसी हुई है। आज पूंजीवादी समाज में नारी केवल भोगविलास की सामग्री है, जिस पर पुरूष का पूर्ण अधिकार है।

ऐसी परिस्थिति में दलित नारी की स्थिति और दयनीय है। दलित नारी की समस्याएँ, सवर्ण नारियों की तुलना में कहीं ज्यादा है। विमल थोरात के शब्दों में "दलित महिलाओं की कुछ समस्याएँ ऐसी है जो आम महिलाओं की समस्याओं से अलग नहीं, किंतु दूसरी और कुछ समस्याएँ ऐसी है जो केवल उनकी ही है और इसलिए हैं क्योंकि वे दलित हैं।" [96]

जहां हमारे समाज में एक तरफ स्त्री को देवी का रूप देकर पूजा की जाती है तो दूसरी ओर वही समाज ठाकुर, जमींदार, साहुकार के रूप में स्त्री का शोषण करता है। इस शोषण का ज्यादा शिकार दलित स्त्री ही होती है। वह दोहरा तिहरा शोषण का शिकार होती है। दलित स्त्री के ऊपर नारी होने का अभिशाप फिर उसके ऊपर दलित होने का अभिशाप अर्थात उसके ऊपर दोहरा अभिशाप है। दलित बस्ती की

[94] दलित उत्पीड़न की परंपरा और वर्तमान, मोहनदास नैमिशराय, पृ. सं. 124 पर उद्धृत

[95] दलित अस्मिता, जनवरी-जून 2012, पृ. सं. 25 पर उद्धृत

[96] दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर, विमल थोरात, पृ. सं. 94

स्त्रियाँ उपेक्षित ज़िंदगी जीती हैं। उनके पास न संपत्ति होती है, न शिक्षा होती है। हर दिन की रोटी के लिए उन्हें श्रम करना पड़ता है। दलित नारी को गरीबी हमेशा घेरी रहती है। इसी गरीबी के कारण वह मेहनत-मजदूरी करती है। दलित महिलाएँ कभी सवर्णों के घरों में तो कभी खेतों में रोजी-रोटी के लिए काम करती हुई दिखाई देती हैं। यहाँ तक कि दलित महिलाएँ दो पहर की कढ़ी धूप में गाये, भैंस, बकरे आदि जानवरों को चराने का काम करती हैं। इसी दो पहरी में उनकी सोचनीय स्थिति को दर्शाते हुए कवि लिखते हैं कि-

"अगर मैं पूछूँ

एक मैका देखकर

किसी के घर से तपत

किसी के घर से शीतल

को एक वक्त

सढ़े चावल पानी से क्या मिलता

धूप, बारिष, ओस में भीगकर

धूप में सूख कर

यह बकरे चराने से क्या मिलता।"[97]

इस तरह दलित महिलाओं को एक जून का खाना जुटाने के लिए रात-दिन काम करना पड़ता है। पर उनकी इस लाचारी और विवशता को ये बेदर्द सवर्ण समाज के लोग कभी नहीं समझेंगे। समझेगा भी कैसे? गरीबी, भूख का दर्द वह कैसे जानेगा

[97] बांस अंकूर का बाजार, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 2

जो कभी गरीबी नहीं देखा, भूख के दर्द में कभी नहीं तड़पा। वे तो विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं रोजी-रोटी या भूख की चिंता उन्हें नहीं है। उनकी चिंता गरीब दलित महिलाओं की चिंता से नितांत अलग है। कवि लिखते हैं कि-

"एकाग्रता में दौड़ता

सुन्दर पैर

रक्तचाप

कोलेष्टेराल

मंदबुद्धि आदि समस्याओं

को लेकर बहु मात्रा में चिंतित

जैसे चिंतित रहती है एक स्त्री

अपने दो बच्चों के लिए

दो वक्त चावल

भूखे पेट के लिए।"[98]

भूख और गरीबी के कारण दलित महिलाएँ विपरीत स्थितियों में भी काम करने से नहीं डरती। यह उनकी मजबूरी है। गरीबी के साथ-साथ दलित स्त्रियाँ अनेक प्रकार के दमन के शिकार होती हैं। गाँव के सवर्ण लोग दलित महिलाओं को निरंतर अपने हवस का शिकार बनाते रहे हैं। अछूत लड़कियों का शोषण गांव के ठाकुरों के लिए आम बात है। ये लड़कियाँ मानो इनकी अय्याशी के लिए पैदा हुई हो। इनको गंदी गालियाँ देना सरे आम नंगा करके घुमाना, बलात्कार करना यह सब जैसे

[98] सायद प्रेम करना मुझे मालूम नहीं है, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 87

ठाकुरों की आदत बन गयी है। बात-बात पर गाली देना उनकी नियती बन गयी है। इन ठाकुर और जमींदारों की गलतियों की सजा भुगतना पड़ता है दलित बहु-बेटियों को। इनके दुर्व्यवहार के कारण दलित बेटियों को अभिशप्त जीवन जीना पड़ता है। उनकी शादी व्याह तक नहीं हो पाती। इस विवशता का वर्णन करते हुए कवि लिखते हैं कि-

“एक सप्ताह का घर समान को लेकर

एक दिन के लिए वह भूल गयी थी

सामान्य हवा में उजड़ा हुआ

झोंपड़ि का घर

कई दिनों से

बंध रहा चूल्ला

किसी एक का हाथ लगा था

ढेमशा नृत्य के समय

उनकी बेटी सेपाली पर

जो अब तक

बैठकर घर में

करती थी गिनती उम्र।”[99]

---

[99] बांस अंकूर का बाजार, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 50

भारतीय धर्मशास्त्र, रीति-रिवाज और परंपरा के कारण दलित स्त्रियों का ऐसा शोषण होता है जिससे मानवीय संवेदना तिलमिला जाएगी। सवर्ण पुरूष केवल कामवासना की पूर्ति के उद्देश्य से दलित स्त्रियों का बलात्कार नहीं करते बल्कि उसके पीछे उनकी जातीय श्रेष्ठता और उच्चता का दंभ भी रहता है। विमल थोरात के शब्दों में "दलित महिलाओं और उन पर होनेवाले जुल्म-जोर, बलात्कार, अवमानना, उत्पीड़न की हजारों घटनाओं के पीछे उनका दलित होना बहुत बड़ी बजह है। क्योंकि उनके प्रति सवर्ण समाज की धारणा और व्यवहार आज भी ब्राह्मणवादी परंपरा से प्रभावित है।"[100] कवि सवाल करते हैं कि इस दलित महिलाओं के साथ ऐसा अमानवीय व्यवहार क्यों किया जाता है। यह भी तो भारत माँ की बेटी है। स्वतंत्रता दिवस एवं गणतंत्र दिवस के अवसर पर भारत माता का जयगान होता है, भारत माता को सम्मान दिया जाता है। दूसरी तरह उसी दिन राज पथ पर दलित महिलाओं के साथ बलात्कार किया जाता है। उनके नंगे, भूखे बच्चों के साथ मार पीट किया जाता है। यह सवर्णों का कैसा दोगला चरित्र है कवि लिखते हैं कि-

"गेट के पास शोई हुई वह नारी

भारत माता की प्रतीक

जमीन में पड़ा हुआ दुपट्टा

तीन रंगों को लहराता हुआ झंडा

देश का गर्व और गौरव

और जो गिड़गिड़ाता हुआ बच्चा

अपनी माँ का दुपट्टा खींच रहा है

[100] दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर, विमल थोरात, पृ. सं. 107

वही है

भारत की प्रगति का अग्रदूत।"[101]

भारतीय समाजिक परिवेश में दलित महिला एक महिला नहीं उपभोग की वस्तु मात्र बन गई है। उसका दुःख-दर्द, चीत्कार कोई नहीं सुनता है। न सामाजिक ठेकेदार, न राजनेता, न सरकार। सब मूक बन कर बैठे रहते हैं और दलित महिला दोहरा, तिहरा शोषण की शिकार होती जा रही है। नैमिशराय के शब्दों में "दलित महिलाओं की त्रासदी यह है कि उन्हें एक गालपर ब्राह्मणवाद का तो दूसरे गाल पर पितृसत्ता का थप्पड़ खाना पड़ता है।" [102]

बासुदेव सुनानी ने अपनी कविताओं में नारी की वास्तविक स्थिति का मार्मिक चित्रण किया है। क्या आज भी नारी का शोषण नहीं हो रहा है? नारी पर अत्याचार नहीं किए जा रहे हैं? नारी को मिले अधिकारों का उपयोग क्या वास्तव में नारी कर रही है? ऐसे अनेक सवालों का उत्तर बासुदेव सुनानी की कविताओं में हमें मिल जाते हैं।

3.3 निष्कर्ष

ओमप्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी की कविताओं में दलितों के जीवन में व्याप्त विभिन्न समस्याएँ यथार्थ के साथ अभिव्यक्त हुई हैं। सामाजिक, आर्थिक दृष्टि से पीछड़े दलित वर्ग में व्याप्त विभिन्न समस्याओं को समाज के सामने लाने में दोनों रचनाकारों को अद्भूत सफलता मिली है।

---

[101] सायद प्रेम करना मुझे मालूम नहीं है, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 86

[102] आधुनिकता के आईने में दलित, अभय कुमार दुवे, पृ. सं. 230

वाल्मीकि एवं सुनानी दोनों की कविताओं की संवेदना दलित जीवन परक होने से उनके परिवेश चित्रण एवं समस्या निरूपण में अनेक प्रकार की साम्यता के दर्शन होते हैं। दोनों ने दलितों के सामाजिक परिवेश का चित्रण समान रूप से किया है जिसमें दलितों की सामाजिक स्थिति, अस्पृश्यता, शोषण, बेकारी, दलितों के लिए गांव में अलग पनघट, अलग शमशान और गांव में अलग अशुभ दिशा में बस्ती, घृणित संबोधन, गाली-गलौज आदि का समावेश होता है। गरीबी की समस्या का चित्रण भी दोनों कवियों ने अपनी-अपनी कविता में विशेष रूप से किया है। उसी तरह दलितों का धार्मिक परिवेश, राजनैतिक परिवेश, सांस्कृतिक परिवेश, दलित स्त्री जीवन की विभिन्न बिड़ंवनाओं आदि का भी दोनों कवियों ने समान रूप से चित्रण किया है।

हिन्दु धर्म व्यवस्था ने दलितों पर अनेक प्रतिबंध लगाए जिससे उनके जीवन में अनेक समस्याएँ उत्पन्न हुई। अशिक्षा, भूख, गरीबी, शोषण, छुआछूत आदि समस्याओं ने दलितों को कभी सामाजिक स्तर पर उबरने नहीं दिया। भारतीय समाज में व्यप्त अंध विश्वास, रूढ़ी, परंपराएँ दलितों के व्यक्तित्व को सामाजिक और आर्थिक स्तर पर कुंठित करके रखा। जिससे उसका राजनैतिक क्षेत्र में भी नगन्य स्थान रहा। इस जाति व्यवस्था ने दलितों को अमानवीय जीवन जीने के लिए विवश कर दिया। वाल्मीकि और सुनानी दोनों क्रमशः हिन्दी और उड़िया के ऐसे प्रमुख रचनाकार है जो अपने-अपने भाषा साहित्य में कथ्य के नये आयाम के साथ प्रवेश करते हैं और दीन-दलितों की दुनिया से सीधा साक्षात्कार करते हैं। निसंदेह दोनों रचनाकारों ने दलित जीवन को समान शक्ति और समान तल्लीनता से उकेरा है। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि ये दोनों कवि अपने आप में हिन्दी और उड़िया साहित्य में एक विशेष स्थान रखते हैं।

चतुर्थ अध्याय

ओमप्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी की कविताओं में दलित चेतना

4. प्रस्तावना

4.1 चेतना की परिभाषा

4.2 दलित चेतना का स्वरूप

4.3 ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता में दलित चेतना

4.3.1 वर्ण व्यवस्था के प्रति क्षोभ

4.3.2 विद्रोह और आक्रोश की अभिव्यक्ति

4.3.3 आशावाद

4.4 बासुदेव सुनानी की कविता में दलित चेतना

4.4.1 वर्ण व्यवस्था के प्रति क्षोभ

4.4.2 विद्रोह और आक्रोश की अभिव्यक्ति

4.4.3 आशावाद

4.5 निष्कर्ष

चतुर्थ अध्याय

ओमप्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी की कविताओं में दलित-चेतना

4. प्रस्तावना

डॉ. बाबा साहेब अंबेडकर समाज की हर परिस्थिति से गुजरे और अनुभव किया, दलितों के हा-हाकार को सुना। वे खुद इस तरह भयानक जाति-प्रथा, छुआछूत आदि समस्याओं का शिकार हुए हैं। उन्होंने इस वर्ण व्यवस्था पर गंभीर शोध किया और उसमें परिवर्तन लाने के लिए अनेक परिवर्तन और संघर्ष किए। बावजूद इसके समाज में जब इस वर्ण-व्यवस्था, जाति-प्रथा में परिवर्तन का कोई संकेत नहीं मिला, तब उन्होंने लाखों दलितों को एकत्रित कर आन्दोलन किया। दलितों में धर्म-परिवर्तन कर उस दयनीय जाति-व्यवस्था से मुक्त किया। दलितों के लिए दिन-रात संघर्ष कर, उन्हें अंधकार से आलोक की ओर लाया और उनमें मनुष्यत्व जगाया। शिक्षित बनो, संघर्ष करो और समूहों में रहो, इस प्रकार मंत्र को पूरे दलितों में पहुँचाने की कोशिश डॉ. बाबा साहेब अंबेडकर ने दिन-रात की। जिसके कारण दलित समाज आज जाग रहा है। डॉ. अंबेडकर के विचारों से दलितों में उत्पन्न चेतना साहित्य में विद्रोह बन कर अभिव्यक्त हुई। दलित साहित्य की वैचारिकी के मूल में बौद्ध दर्शन, महात्मा फुले के विचार और अंबेडकर की विचारधारा है। इस विचारधारा ने दलितों में चेतना जागृत की, जिसकी अभिव्यक्ति दलित साहित्य में हुई।

इक्कीसवीं सदी में खड़े होकर अगर हम अतीत की ओर देखते हैं तो पाते हैं कि भूतकाल का आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक प्रथाओं की परंपराओं का प्रवाह आज भी है । पर उन परंपराओं के प्रवाह के साथ-साथ आज उन परंपराओं के

बारे में वाद-विवाद, संवाद हो रहा है । इन्हीं वाद-विवाद-संवादों से नये विचार और नये मूल्यों का निर्माण इस युग में उभर कर आया है । इन नये मूल्यों ने उत्तर-आधुनिक युग के क्षितिज को और विस्तार दिया है । इन्हीं नये मूल्यों और विचारधाराओं में नारी-विमर्श, दलित-विमर्श, आदिवासी-विमर्श जैसी विचारधाराएँ भी शामिल हैं। इन विचारधाराओं ने भारतीय साहित्य को काफी हद तक प्रभावित किया है।

दलित शोषण हमारे समाज का एक कटु सत्य है। दलितों के इसी शोषण, अत्याचार, पीड़ा आदि की उपज है दलित साहित्य। यह कहना गलत नहीं होगा कि आज दलितों में जो जागृति आई है वह सवर्णों के भयंकर शोषण का ही परिणाम है । शोषण चाहे मानसिक हो या शारीरिक, आर्थिक हो या सामाजिक, धार्मिक हो या राजनैतिक जब बढ़ जाता है तो शोषण के विरूद्ध विद्रोह तो होगा ही। दलितों के मन में शोषण के विरूद्ध विद्रोह की भावना जगाने का काम दलित साहित्यकारों ने किया है। यह कह सकते हैं कि दलित साहित्य का उद्धेश्य दलित समाज में जागृति पैदा करके उनके स्वाभिमान को जगाना और उनके ऊपर होनेवाले शोषण और अत्याचार के विरूद्ध संघर्ष करने की शक्ति पैदा करना। हिन्दी के साथ साथ उड़िया साहित्यकारों ने भी यह काम बखूबी निभाया है ।

दलितों में जागृति पैदा करने के लिए कहानी के साथ-साथ कविता ने भी बहुत बड़ी भूमिका निभायी है। जब हम ओमप्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी की कविताओं के बारे में चर्चा करते हैं तो उनकी कविताओं में चित्रित दलित चेतना पर दृष्टि डालना आवश्यक हो जाता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी की कविताओं में चित्रित दलित चेतना पर चर्चा करना ही इस अध्याय का उद्धेश्य है।

4.1 चेतना की परिभाषा

ज्ञान, होश, बुद्धि, चेत और जीवन आदि चेतना शब्द के अर्थ माने जाते हैं या इन सब के लिए चेतना शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'चेतना' शब्द की व्युत्पत्ति 'चित' धातु से हुई है। 'चित' का सामान्य अर्थ है मन। चेतना का संबंध मनुष्य के मस्तिष्क से है। मनुष्य का मस्तिष्क ही चेतना का मूल स्थान है। चेतना मनुष्य की वह आंतरिक शक्ति है जिसके बिना मनुष्य कोई काम नहीं कर सकता। चेतना मन की वह वृत्ति या शक्ति है, जिससे जीव या प्राणी को आंतरिक और बाह्य तत्वों या बातों का ज्ञान होता है। चेतना शब्द के अनेक अर्थ देखे जा सकते हैं। -

'राजपाल हिन्दी शब्दकोश' में चेतना का अर्थ- "ज्ञानमूलक मनोवृत्ति, बुद्धि, समझ, होश-हवास, स्मृति, सावधान होना, सोच-समझ कर ध्यान देना।"[1]

बृहत हिन्दी कोश में चेतना का अर्थ-"होश में आना, बुद्धि-विवेक से काम लेना, सावधान होना, सोचना, विचारना ।"[2] आदि प्रयुक्त हुएँ है।

इस प्रकार चेतना के कई अर्थ देखे जा सकते हैं। हम यह कह सकते हैं कि चेतना मनुष्य की जागरुकता एवं सजगता है। चेतना के कारण हम देखते, सुनते, समझते और विभिन्न विषयों पर चिंतन करते हैं। चेतना के बिना मनुष्य जड़ कहलाएगा।

---

[1] राजपाल हिन्दी शब्दकोश, डॉ.हरदेव बाहरी, पृ. सं. 267

[2] बृहत हिन्दी कोश, प्रसाद कालिका, सहाय राजवल्लभ और श्रीवास्तव मुकुंदीलाल, पृ. सं. 384

4.2 दलित-चेतना का स्वरूप

भारत की परंपरागत ब्राह्मण, पुरोहित 'वर्ण वर्चस्ववादी' व्यवस्था के कारण लंबे समय से दलित असम्मान का पात्र बना रहा है। वर्ण-व्यवस्था में ब्राह्मण वर्ग सबसे ऊपर था। सब क्रमशः उसके नीचे थे। ब्राह्मणों को सब अधिकार प्राप्त थे। ब्राह्मण ऐसी व्यवस्था बना रखे थे जिससे उन्हें सुख, यश, आराम मिलता रहे और दलितों को दुःख के सिवाय कुछ नहीं। दलितों को गांव की चौपाल पर खुद तो क्या अपनी परछाई को बैठने की इजाजत नहीं थी। ब्राह्मणों के द्वारा मंत्र उच्चार करते समय दलितों के सुन लेने पर उनके कानों में सीसा पिघला कर डाल दिया जाता था, विरोध करने पर ज़बान काट दी जाती थी। सदियों से अस्पृश्य लोगों के साथ अमानवीय व्यवहार होता रहा है। ब्राह्मणों की इस जात-पांत की व्यवस्था ने व्यक्ति की स्वभाविक स्वतंत्रा को ही छीन लिया था। लेकिन ऐसी व्यवस्था पर डॉ अंबेडकर ने प्रहार किया । ज्योतिबा फूले ने भी हिन्दू समाज की ब्राह्मणवादी व्यवस्था और शास्त्रों का विरोध किया जो दलितों को समाज में सम्मानजनक स्थिति से वंचित करती थी और उसको दूर करने के लिए उन्होंने कठोर संघर्ष भी किया। फूले ने दलित-पिछड़े समाज में फैली अज्ञानता को दूर करने के लिए स्कूल खोला जो इन वर्गों के लिए देश का प्रथम विद्यालय था। उनका विश्वास था कि शिक्षित और समर्थ बन कर ही दलित अपनी अस्मिता को पहचान सकेगा। फूले की इस परंपरा को आगे बढ़ाने के लिए डॉ अंबेडकर ने दलित मुक्ति का आन्दोलन चलाया। उन्होंने सुधार की दृष्टि से प्रारंभिक काल में कुछ प्रयास जरूर किए लेकिन इसमें मूल परिवर्तन के कोई लक्षण दिखाई नहीं दे रहे थे। तब जाकर उन्होंने दलितों को गुलामी से जगाया और कहा "अन्याय तब तक दूर नहीं होगा जब तक उसे सहन करने वाला खुद-ब-खुद उठ कर खड़ा न हो । जब तक गुलामी से मुक्त होने की भावना प्रज्वलित नहीं होती, वह

गुलामी के विरूद्ध लड़ने, मरने मिटने को तैयार नहीं होगा, गुलामी जानेवाली नहीं, गुलाम को यह अहसास करा दो कि वह गुलाम है, वह क्रांति कर देगा।"[3] उनके इसी संदेश से दलितों में चेतना आई। यह आन्दोलन दलितों के जीवन में एक नई चेतना का संचार किया। जो चेतना आगे चल कर दलित समाज में परिवर्तन का आधार बनी। अंबेडकर ने दलितों को उनकी वास्तविक स्थिति से परिचित करवाया और उससे छुटकारा प्राप्त करने का रास्ता उनके सामने प्रस्तुत किया। दलितों को शिक्षित बनने तथा संगठित होकर अपने अधिकार के लिए संघर्ष करने की जो शिक्षा अंबेडकर ने दी, उसे पूरा दलित समाज एक सूत्र के रूप में ग्रहण करते हुए अपने उत्थान हेतु अनेक आन्दोलनों द्वारा अपने समाज में परिवर्तन का प्रयास किया। स्वतंत्रता के बाद दलित विचारधारा जो एक सशक्त सामाजिक आन्दोलन के रूप में उभर कर आ रही है, इस चेतना के प्रेरणा स्रोत डॉ अंबेडकर ही हैं। डॉ गंगाधर पानतावणे के शब्दों में "दलित साहित्य की प्रेरणा न मार्क्सवाद है न हिन्दुवाद, न नीग्रो साहित्य है। दलित साहित्य की प्रेरणा केवल अंबेडकरवाद है।"[4]

भारतीय समाज में वर्णव्यवस्था ने सदियों से जिस दलित-चेतना को दबाया था आज वह आन्दोलन के रूप में उभर कर सामने आ रही है। प्रा.सौ. प्रतिज्ञा पतकी के अनुसार "गौतम बुद्ध, संत कबीर, डॉ. बाबा साहेब अंबेडकर, महात्मा फूले, महात्मा गांधी, डॉ. लोहिया, इन महा मानवों के प्रयत्न से दलितों को अपनी दलित स्थिति का परिचय हुआ। इन लोगों ने युग-युग से पशु से भी बदतर जीवन जीने वाले दलितों को अपने मनुष्य होने का एहसास दिलाया, स्वाभिमान, स्वावलंबन और सम्मानपूर्ण जीवन जीने के लिए उन्हें प्रेरणा दी। महापुरुषों की प्रेरणा से दलितों को

---

[3] भारत में पिछड़ा वर्ग आन्दोलन और परिवर्तन का नया समाजशास्त्र, हरिनारायण ठाकुर, पृ. सं. 106 पर उद्धृत

[4] दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 30

अपनी शक्ति का जो ज्ञान हुआ वह ज्ञान ही वास्तव में दलित चेतना है। दलित जब अपने अन्याय, अत्याचार शोषण के विरोध में विद्रोह करते हैं, अपने अस्तित्व एवं अधिकारों के प्रति जागरूक होते हैं तब उसे दलित-चेतना कहा जाता है।"[5] ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित चेतना को परिभाषित करते हुए लिखते हैं "चेतना का सीधा संबंध दृष्टि से होता है जो दलितों की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक भूमिका की छवि के तिलस्म को तोड़ती। वह है दलित चेतना। दलित मतलब मानवीय अधिकारों से वंचित, सामाजिक तौर पर जिसे नकारा गया हो। उसकी चेतना यानी दलित चेतना।"[6] बाबूराव बागूल का मानना है कि "दलित चेतना साहित्य और आम आदमी के संबंधों को व्यापकता देती है। दलित साहित्य इंसान को केंद्र बनाता है। इंसान को महानता प्रदान करता है। इंसान प्रकृति का एक नन्हा-सा रूप है। प्रकृति हमेशा गतिशील और सृजनशील रहती है। स्वतत्रंता, समता और बंधुता की मूल भावना दलित साहित्य की मूल गर्भ चेतना है। दलित साहित्य की अनुभूति परंपरागत साहित्य से बिल्कुल अलग है क्योंकि दलित चेतना मनुष्य की मुक्ति की बात करती है।"[7]

अतः कहा जा सकता है कि दलित चेतना जिसमें दलित होने से मुक्ति एवं स्वतंत्रता के लिए जड़ता पर प्रहार, परंपरागत रूढ़ियों का नकार तथा अलग संस्कृति का निर्माण करना है। इस चेतना (विचारधारा) का आधार बौद्ध दर्शन, महात्मा ज्योतिबा फूले और डॉ. अंबेडकर के विचार एवं जीवन दर्शन है।

पहले दलित समाज के लोग समाज द्वारा निर्धारित वर्ण एवं जाति-व्यवस्था के अनुरूप निर्धारित पेशों में ही रहने को विवश थे। मरे हुए मवेशियों की खाल उतारने,

---

5 बयाँ, जुलाई, 2012, पृ. सं. 41

6 दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मिकी, पृ. सं. 29

7 वही, पृ. सं. 30

सवर्णों के कपड़ों को धुलाई करने, मल-मूत्र की सफाई आदि काम करने को विवश थे। पर वे आज जागृत हो गए हैं। उनमें परिवर्तन की जो भावना पैदा हुई है वह उसे गंदे काम करने से रोकती है । आजादी के बाद उत्पीड़न के खिलाफ दलितों ने एकजुट होकर अपने संघर्ष को तेज किया है। भले ही दलित अस्मिता के लिए उन्हें क्यों न अपनी जमीन छोड़नी पड़े या जान ही देनी पड़ी हो। आज दलित चेतना अपने पूरे वजूद के साथ मुखरित हुई है विशेषकर नवयुवकों में प्रतिरोध व बदला लेने के साथ ही सबक सिखाने का भाव पूरी शिद्दत के साथ मौजूद है। अत्याचारियों के धन-बल के सामने दलितों की श्रमजीवी एवं संघर्षशील संस्कृति भारी पड़ती है। मजबूत साबित होती है। जिसका चित्रण वाल्मीकि अपनी कविताओं में करते हैं । दलित महिलाओं में जागृत चेतना को भी दर्शाते हैं। गांव की दलित महिलाएं देह-शोषण के खिलाफ अब खड़ी हो गई हैं। यदि कोई सबल उनकी इज्जत पर हाथ डालने की कोशिश करता है या उनको गंदी गालियाँ देता है तो वे न केवल गाली-गलौज करने, बल्कि कुचेष्टा करने वाले को मारने-पीटने को तैयार हो जाती हैं।

इक्कीसवीं सदी में दलित-चेतना दलित शक्ति बनकर समाज में अमूल चूल परिवर्तन करने की दिशा में अग्रसर है। सवर्ण लोग आज तक दलितों को अपना नौकर मानते हैं, उनकी दृष्टि में दलितों का मान-अपमान, इज्जत, स्वाभिमान आदि कोई बातें नहीं होती। इसलिए उन्होंने सदियों से दलितों के साथ मनमाने ढंग से व्यवहार किया। पर अब दलित लोग उनकी मनमानी चलने नहीं देंगे। अब समाज का दलित वर्ग अपनी पीड़ाओं की अभिव्यक्ति करता हुआ उस विषम सामाजिक व्यवस्था का मुखर विरोध कर रहा है जिसने उसे सहस्राब्दियों तक गुलाम बना कर नारकीय जीवन जीने के लिए विवश रखा। दलित चेतना से भारतीय साहित्य की सीमाएँ विस्तृत हुई हैं। दलित-चेतना ने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक सभी

क्षेत्रों में दखल दिया है तथा परिवर्तन को नई दिशा दी है। दलित-चेतना भारतीय समाज एवं साहित्य दोनों में अपना विशिष्ट स्थान एवं महत्व रखती है।

4.3 ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताओं में दलित चेतना

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताएं गंभीर और मर्मस्पर्शी हैं । कवि ने इन कविताओं में निष्ठुर समाज के अमानवीय व्यवहार के प्रति आक्रमण और आक्रोश व्यक्त किया है । दलितों के प्रति बढ़ते अन्याय को देख कर कवि का तेवर उग्र हो उठा है और वे व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह कर उठते हैं । इसलिए संग्रह में संकलित कविताओं का मूल स्वर जो है वह विद्रोह का है । ये कविताएं सिर्फ दलितों के त्रासदपूर्ण जीवन, छुआछूत, भूख, गरीबी, पीड़ा को ही नहीं दर्शाती हैं बल्कि दलितों मेँ जागृति लाने का संदेश भी देती हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविताएं पूंजीवाद, समाजवाद व वर्ण-व्यवस्था की पोल खोल कर रख देती हैं। आज दलित समाज में बच्चों को शिक्षित बनाने की चेतना जागृत हुई है। अपने साथ हो रहे अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठा रहा है। आज दलित अपने परंपरागत पेशे से मुहँ मोड़ने लगा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता हमें संकीर्णता से बाहर निकालने का प्रयास करती है।

4.3.1 वर्ण-व्यवस्था के प्रति क्षोभ

वर्ण-व्यवस्था भारतीय समाज की सबसे बड़ी सच्चाई है। इसी वर्ण-व्यवस्था से निकली जाति-व्यवस्था के कारण शूद्र जातियाँ सदियों से ब्राह्मणों की गुलामगीरी सहती रही हैं। इसलिए वाल्मीकि ने अपनी कविताओं में ईश्वरवाद, कर्मकांड और वर्ण-व्यवस्था का तीखे स्वरों में खंण्डन किया है। कवि जानते हैं कि जाति-व्यवस्था और वर्ण-व्यवस्था ने सामाजिक संवेदना को रौंद डाला है। "वर्ण-व्यवस्था में सहमति के लिए कोई स्थान नहीं है। ऐसे विधान रचे गए हैं, जिसमें लोगों को बांध कर रखा

गया, जिसने बाहर जाने का प्रयास किया, उसे तरह-तरह की यातनाएँ दी गयी, प्रताड़नाएँ दी गईं, सामाजिक विकास के तमाम रास्ते बंद कर दिये गए। उनसे मानवीय अधिकार छीन लिए गएँ। उनकी संपति,संस्कृति नष्ट कर देने के हथकंडे अपनाए गएँ। और इस कार्य को सत्ता और धर्म ने मिलकर किया।"[8] इसलिए उनका मानना है कि इस धर्म के पाखंड कर्मकांडों से बाहर निकलकर ही दलितों का उद्धार होगा। जाति-व्यवस्था से बाहर निकल कर ही दलितों का विकास होगा। यह जाति-व्यवस्था ही है जिसने दलितों के विकास को उनकी प्रगति के पथ को रोक रखा है। कवि जाति-व्यवस्था का समूल विनाश करना चाहते हैं । इसलिए जाति-व्यवस्था के प्रति क्षोभ दर्शाते हुए वे लिखते हैं

"अंबेडकर की आदमकद मूर्ति के पास बैठा

मोची चीखता है ऊँची आवाज़ में

किस हरामजादे की देन है वह जाति।" [9]

यह जो गुस्सा है एक दिन का या एक साल का नहीं है। यह हजारों सालों से दबी हुई वेदना का लेखा जोखा है। यहाँ मोची को मोची बनाने में जाति-व्यवस्था की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। क्योंकि भारत में जन्म होते ही जाति का धब्बा लग जाता है। जन्म किसे कहाँ और कब मिलता है ? यह तो जन्म लेने वाला भी नहीं जानता । पर भारत में दलित स्त्री के पेट से जन्म लेना पाप है क्योंकि वर्ण-भेद व्यक्ति के पिशाचपन को व्यक्त कर देता है। डॉ. रमणिका गुप्ता के शब्दों में "मानव का रिश्ता ही समाज में व्यक्ति का स्तर निर्धारित करता है। भारतीय संस्कृति ने इसे जन्म से जोड़ कर दो स्तरों का निर्माण किया है। एक वर्ण ऐश्वर्यभोगी है तो दूसरा उनका सेवक ।

---

[8] मुख्यधारा और दलित साहित्य, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं-46

[9] अब और नहीं, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 14

इन दो मूल्यों, दो मान दण्डो वाली भारतीय संस्कृति को ही मानवीय कह कर एक वर्ग विशेष उसे आम जनता पर सदियों से थोपता रहा है। इसमें उस जमात का जिसमें वह संस्कृति थोपी जा रही है, कोई दख़ल ही नहीं है। जबकि यह जमात बहुसंख्यक है। यही विषमता और शोषण का सबसे बड़ा कारण है।"[10]

जाति को जन्म से जोड़ कर दलितों का शोषण अब तक हो रहा है । इस वर्ण-व्यवस्था ने ही दलितों की प्रगति को रोका और उनका उत्पीड़न किया। कवि वर्ण और जाति के आधार पर फैलाई गयी विषमता के विरूद्ध संघर्ष के लिए एक भूमिका गढ़ते हैं। कवि जाति और वर्ण-व्यवस्था का कड़ा विरोध करते हुए लिखते हैं

"जाति आदिम सभ्यता का

नुकीला औजार है

जो सड़क चलते आदमी को

कर देता है छलनी

एक तुम हो

जो अभी तक चिपके हो जाति से। "[11]

यहाँ कवि जाति को एक हथियार के रूप में देखते हैं । जाति के विषय में कवि की समझ गहरी है । वाल्मीकि मानते हैं कि जातिवादी मानसिकता ने हिन्दू समाज को एक दूसरे से अलग कर वैमनस्य का बीज बोया है। जाति भेद की भावना संपूर्ण समाज में गहरे तक रची बसी है। इस जाति व्यवस्था से कवि को अब नफरत होने लगी है। यह जाति-व्यवस्था ही है जो मनुष्य को तीर की तरह छलनी कर देती है।

[10] दलित हस्तक्षेप, रमणिका गुप्ता, पृ. सं. 91
[11] अब और नहीं, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 20

इतना अत्याचार, उत्पीड़न, अपमानबोध होने पर भी आज हम जाति से जुड़े हुए हैं। कवि प्रश्न करते हैं कि-

"न जाने किसने तुम्हारे गले में

डाल दिया है, जाति का फंदा

जो न तुम्हें जीने देता है न हमें।" [12]

वाल्मीकि की कविता का विद्रोह मानव निर्मित जाति-व्यवस्था से है । कवि जाति व्यवस्था को सिरे से ख़ारिज करते हैं।

4.3.2 विद्रोह और आक्रोश की अभिव्यक्ति

दलित वर्ग का आक्रोश, शोषण और अत्याचार के ख़िलाफ है , जो शोषक वर्ग के लिए मुखर हुआ है । वाल्मीकि की कविता में वर्णित आक्रोश वर्ण-व्यवस्था और जाति-व्यवस्था के प्रति मुखर होता है । जिस उपेक्षित वर्ग ने सदियों तक ब्राह्मणों की यातनाओं को सहा है, उनमें अब इन यातनाओं के खिलाफ आक्रोश है। अब दलित उस व्यवस्था की दासता को स्वीकार करने का पक्षधर नहीं है। जिसमें रहकर वह उपेक्षित जीवन जिया है। वह वर्ण-व्यवस्था से उपजी विषम व्यवस्था को नकारता है। शरण कुमार लिंबाले लिखते हैं कि- "दलित साहित्य में नकार और विद्रोह दलितों की वेदना के गर्भ से पैदा हुआ है। यह नकार अथवा विद्रोह अपने ऊपर लादी गयी अमानवीय व्यवस्था के विरूद्ध है। दलित साहित्य में वेदना जैसे समूह स्वर में व्यक्त होने वाली सामाजिक स्वरूप की है, वैसे ही नकार और विद्रोह भी सामाजिक और समूह स्वरूप का है। "[13] विद्रोह की अवस्था वेदना और नकार के बाद की अवस्था है । दलित लेखक लिखते समय अपने अनुभवों के आधार पर लिखता है। उसके लेखन की अवधारणा में

[12] अब और नहीं, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं.22

[13] दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, शरण कुमार लिंबाले, पृ. सं. 43

विद्रोह, नकार एवं निर्माण की भावना हमेशा मुखर होती है। वाल्मीकि दलितों को चुप रहने की नहीं बल्कि परंपरागत व्यवस्था के खिलाफ बगावत करने के नसीहत देते हुए लिखते हैं कि-

"गहरी पथरीली नदी में

असंख्य मूक पीड़ाएँ

कसमसा रही हैं

मुखर होने के लिए रोष से भरी हुई।

बस्स !

बहुत हो चुका

चुप रहना

निरर्थक पड़े पत्थर

अब काम आयेंगे सन्तप्त जनों के!" [14]

यहाँ कवि का मानना है कि अब चुप रहने से कुछ नहीं होगा। अत्याचार का घड़ा भर गया है। अब इस अत्याचार के खिलाफ अपनी आवाज़ बुलंद करनी होगी। अब समय शोषण, उत्पीड़न पर विराम लगाने का है । "वक्त बदल जाने के बावजूद सवर्णों के मन में दलितों के प्रति घृणा कम नहीं हो रही है । पेड़-पौधों, पक्षियों, पशुओं को पूजने वाला हिन्दू दलितों के प्रति इतना असहिष्णु क्यों है ?"[15] अब समय आ गया है कि हिंदुओं से ये सवाल पूछा जाए। उनसे हर एक अमानवीयता का हिसाब

[14] बस्स ! बहुत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 80

[15] मुख्यधारा और दलित साहित्य, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं-96

मांगा जाए । अब चुप रहने से कुछ नहीं होगा । इस चुप्पी के कारण ही दलितों को शोषित और दमित होना पड़ा है। इसीलिए कवि अपनी कविता के माध्यम से दलितों की इस चुप्पी को तोड़ने की बात करते हैं। दलितों के अंदर चेतना जगाने का काम करते हैं, ताकि दलितों में शोषण और उत्पीड़न के खिलाफ आक्रोश जगे और वे विद्रोह करें। वाल्मीकि लिखते हैं कि-

"जितना रहोगे चुप

मारे जाओगे बेदर्दी से उतना ही

उनके हाथों में होंगे

तमंचे, बंदूक़, लाठी, डंडे, हथगोले

साथ होगी पुलिस, सेना, शक्ति

और तुम निहत्थे

मारे जाओगे

बचकर भागने से पहले ही

तुम्हारी चुप्पी ही हो जायेगी खड़ी

तुम्हारा रास्ता रोककर। "[16]

वाल्मीकि की कविता चुप्पी के विरूद्ध आवाज है। उनकी कविता सदियों से दमित, शोषित जनता की चुप्पी को विद्रोह और आक्रोश में तबदील करती दिखाई देती है। कवि जानते हैं कि जातिगत पीड़ा से मुक्ति संघर्ष से प्राप्त हो सकती है, चुप रह कर नहीं। जितना दलित चुप रहेंगे उतना ही शोषण का शिकार होंगे । उतनी ही

---

[16] अब और नहीं..., ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 97

पीड़ा झेलेंगे । सवर्णों का प्रतिवाद किए बगैर उनकी प्रगति असंभव है । क्योंकि चुप्पी स्वंय कवि के लिए खतरनाक साबित हुई है । स्वयं कवि लिखते हैं -

"मैं जानता हूँ

चुप रहना

कितना महँगा पड़ा है।" [17]

दलित अब सजग हो चुका है । शिक्षा ने उसकी आखें खोल दी हैं। अब वह किसी की गुलामी पसंद नहीं करेगा, शोषण, प्रताड़ना और उपेक्षा नहीं सहेगा। जिस तरह वह जाति के बीभत्स रूप को भोगते हुए बड़ा हुआ है, उसके मन में जाति को लेकर गहरी वेदना और वितृष्णा भरी है। इसलिए वह हिन्दू धर्म की बड़ी से बड़ी मान्यताओं पर भी विश्वास नहीं करता।

"स्वीकार्य नहीं मुझे

जाना,

मृत्यु के बाद

तुम्हारे स्वर्ग में।

वहाँ भी तुम

पहचानोगे मुझे

मेरी जाति से ही।"[18]

[17] बस्स ! बहुत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 71

[18] वही,पृ. सं. 78

धर्म के ठेकेदार हमेशा से यह विश्वास दिलाते आये हैं कि ईश्वर सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान है। ईश्वर की इच्छा के विरूद्ध पत्ता तक नहीं हिलता । तो क्या ईश्वर की इच्छा के कारण ही आज तक दलितों पर अन्याय और शोषण हो रहा है । क्या ईश्वर की कभी यह इच्छा नहीं रही कि दलितों पर भी दया करें, उनकी अवस्था में भी सुधार लायें । तो फिर दलित वर्ग ऐसे ईश्वर पर श्रद्धा क्यों रखे। क्योंकि उनके नीती-नियमों को माने । इसलिए कवि ईश्वर के अस्तित्व को नकारते हैं ।

शिक्षा के कारण आयी चेतना से दलितों में यह समझ विकसित हुई कि तथा कथित देवी-देवता, पीर-पैगंबर सब झूठ और धोखा है। सवर्णों द्वारा गढ़ी हुई चाल है। “दलित साहित्य का सारा का सारा चितंन इस व्यवस्था के विरूद्ध खड़ा है। वह ईश्वर के किसी भी रूप को स्वीकार करने को तैयार नहीं है क्योंकि ईश्वर की स्वीकृति के पीछे बहुत सारी चीजों की स्वीकृति जुड़ी है। जैसे वेदों को अपौरुषेय और प्रामाणिक मानना, वेदों में वर्ण-व्यवस्था को मानना और वर्ण-व्यवस्था से उद्‌धृत जाति-पांति, ऊँच-नीच, छुआ-छूत आदि को मानना या भाग्य को मानना।”[19]

दलितों के लिए मंदिर प्रवेश निषिद्ध है । मंदिर जाने पर उनकी जाति पूछी जाती है। और यह सब ईश्वर के सामने घटित होता है । पर ईश्वर कभी भी दलितों की सहायता के लिए नहीं आया है बल्कि ईश्वर भी शोषक वर्ग का साथ देता है । तो ऐसे ईश्वर दलितों के किस काम का है । अब दलितों की नयी पीढ़ी को ऐसे ईश्वर और ऐसे ईश्वर के श्रद्धालुओं की सेवा करना स्वीकार्य नहीं है । अब तक उनकी पीढ़ियों ने भूखे-नंगे रहकर, उनकी बातें मानकर बहुत सेवा की है। लेकिन अब नई पीढ़ी इस अनैतिकतावादी और अमानवीय व्यवस्था के विरोध आक्रोश और प्रतिशोध की भावना का निर्माण कर रही है । कवि के शब्दों में-

“मेरी पीढ़ी ने अपने सीने पर

[19] चितंन की परंपरा और दलित साहित्य, स्योराज सिंह बेचैन, डॉ देबेन्द्र चौबे, पृ. सं. 32

खोद लिया है संघर्ष

जहाँ आँसुओं का सैलाब नहीं

विद्रोह की चिंगारी फूटेगी

जलती झोपड़ी से उठते धुएं में

तनी मुट्ठियां

तुम्हारे तहखानों में

नया इतिहास रचेंगी।"[20]

वाल्मीकि समाज की हर घृणित परंपरा का विरोध करते हैं। सदियों से चले आ रहे जातिगत वर्णभेद को नकारते हैं। उनका मानना है हिन्दू धर्म दलितों के लिए किसी कारागार से कम नहीं है। अब इस कारागार से बाहर निकलना जरूरी है। इतिहास साक्षी है कि दलित मजदूरों के मेहनतकश हाथ प्रलयकारी बन सकते हैं। इसी कारण सवर्णों ने इस मेहनतकश हाथों में हिन्दू धर्म की बेड़ियाँ डालकर उन्हें बाँधकर रख दिया है। मेहनतकश मनुष्य ही सर्वशक्तिमान है। वे अपनी शक्ति से अब वह बेड़ियों को काट ड़ालेंगें। आक्रोश अब ज्वालामूखी का रुप धारण कर लिया है जो कभी भी, कहीं भी, किसी वक्त फट सकता है। कवि के शब्दों में-

"मेरे हाथों की शक्ति

सहनशीलता, फौलादी दृढ़ता

हिला देगी जाति-व्यवस्था को।

बहुत हो चुका

[20] सदियों का संताप, ओम प्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 30

शोषण,

प्रताड़ना

और उपेक्षा

बस, अब मेरा ज्वालामुखी फट पड़ेगा।"[21]

कवि के अंदर आक्रोश इस तरह से भरा हुआ है कि पूरी की पूरी जाति-व्यवस्था को खत्म करना चाहते हैं। जिस धर्म और संस्कृति ने मनुष्य और मनुष्य के बीच दीवार खड़ी की है, उस धर्म और संस्कृति को नकारते हैं। दलित अब एक पालतू पशु की तरह नहीं बल्कि एक मनुष्य की तरह जिंदगी बिताना चाहता है। उसे वह सारा अधिकार चाहिए जो एक आम नागरिक को चाहिए होता है। कवि को मनुवादी व्यवस्था से , हिन्दूवादी संस्कृति से घृणा है। सनातन धर्म के बाह्याडंबर और ढोंगीपन से सक्त नफरत है। वे सनातन धर्म के किसी भी रीतिरिवाज को मानने से सीधा सपात मना करते हैं।

दलितों को अब ज्ञात हो गया है कि उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति सोचनीय होने का बहुत बड़ा कारण है, दलितों का ब्राह्मणवादी धर्म-संस्कृति के प्रति झुकाव और उसका अंधानुकरण। इसलिए कवि कहते हैं कि गंगा स्नान से कुछ नहीं होगा, यह दलितों को ठगने का एक षड़यंत्र मात्र है। दलित इसी कर्मकांड़ के नाम पर सदियों से ठगता आया है। लेकिन अब दलित वर्ग समझ गया है। अब वह पौराणिक ग्रंथों एवं मनुस्मृति को नकार कर मानवता से प्रेरित नूतन विचारों को ग्रहण कर स्वंय का और समाज का उत्थान करेगा।

[21] सदियों का संताप, ओम प्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 18

4.3.3 आशावाद

वाल्मीकि की कविताओं में आशावाद स्पष्ट रुप से झलकता है। कवि विपरीत परिस्थिति में भी अपने पथ से विचलित नहीं होते हैं। दलित समुदाय के मध्य व्याप्त उदासीनता एवं निराशा का स्वर बदलने के लिए नई चेतना की गर्जना करते दिखाई देते हैं। सवर्णों के अत्याचार से दलित समुदाय के चेहरे क्षत-विक्षत हो गये हैं । उसकी पीड़ा उनके चेहरों पर स्पष्ट दिखाई पड़ रही है । ऐसी विषम परिस्थिति में भी कवि की आशा है कि- "बचा रहा विश्वास

कि एक न एक दिन

सारे तर्क

लम्पट बौद्धिकता में लिपटे साबित होंगे

और

उजाड़ सांझ के बाद का अंधेरा

छिन्न-भिन्न होकर

उजली धूप का आभास होगा ।"[22]

कवि को विश्वास है कि जैसे साँझ का अंधेरा चिरस्थायी नहीं है । सूर्य के आने से पहले अंधेरा दूर होता है और पृथ्वी आलोकित हो जाती है वैसे ही एक दिन दलित धूप की तरह ऊर्जावान बनकर समाज की मुख्यधारा में शामिल हो जाएगा। कितने दिन तक दलित ऐसे शोषित पीड़ित रहेंगे । भूखे नंगे रहेंगे । एक न एक दिन उनके जीवन में बहार आयेगी। हमेशा उनके जीवन में पतझड़ नहीं होगा। कवि लिखते हैं कि– "पाला है भूखे बच्चों को

[22] बस्स ! बहुत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं.-28

बहला-फुसला कर

इस इंतजार में

कि एक रोज बीत जायेंगे

ये संताप भरे दिन।”[23]

कवि आशावादी है ।उन्हें विश्वास है कि आगे कोई भी बच्चा भूख से बिलखकर नहीं मरेगा। कोई एकलव्य गुरू शिक्षा से वंचित नहीं होगा। किसी शंबूक की हत्या अब नहीं होगी। एक ऐसा राज्य स्थापित होगा जहाँ सब समान होंगे। सब मिलजुल कर रहेंगे। कवि के शब्दों में

“नहीं मारा जायेगा तपस्वी शंबूक

नहीं कटेगा अंगूठा एकलव्य का

कर्ण होगा नायक

राम सत्ता लोलुप हत्यारा ।”[24]

कवि राम को नहीं बल्कि कर्ण को नायक बनाना चाहते हैं। उन्हें आशा है कि दलित एक न एक दिन नायक बनेगा। इतना ही नहीं कवि इससे भी आगे बढ़कर आशावान है कि दलित समुदाय को उसकी मेहनत का फल प्राप्त होगा और आनेवाली पीढ़ी को मनुष्य का दर्जा मिलेगा। समाज में व्याप्त छुआ-छूत की भावना मिटेगी। एक न एक दिन सामंतवाद और ब्राह्मणवाद खत्म होगा और उसकी जगह पर समतावादी समाज की स्थापना होगी। कवि लिखते हैं-

“आसमान और धरती के मध्य

---

[23] बस्स ! बहुत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ. सं.-20

[24] वही पृ. सं.-103

मौसम की

झीनी चादर ओढ़कर

लेट गये हैं हम

दिन और रात की

संधि-रेखा पर

इस इंतजार में

कि कभी-न-कभी

आसमान और धरती

एक हो जायेंगे

ठीक उसी तरह

जैसे

एक हो जाते हैं

पेट

और

हाथ

वक्त पड़ने पर।"[25]

इस कविता में वाल्मीकि जी का समतावादी दृष्टिकोण दिखाई पड़ता है। वे समाजवादी समाज की संकल्पना के लिए आशान्वित हैं। उन्हें विश्वास है कि एक दिन

[25] सदियों का संताप, ओम प्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. 36

ऐसा प्रलय आयेगा धरती और आसमान एक हो जाएँगे। तब समाज में सवर्णवादी मानसिकता खत्म होगी। उस समाज में कोई ऊँच-नीच नहीं रहेगा। कवि शोषक वर्ग को बताना चाहते हैं कि सुबह आयेगी धीरे-धीरे और रोशनी चारों ओर फैलकर अंधेरे को उजाले में बदल देगी। कवि लिखते हैं-

"सुबह होने से पहले

मैं, तुम्हें बता देना चाहता हूँ

कि सुबह आयेगी धीरे-धीरे

तेज रोशनी चारों ओर फैलकर

अंधेरे को उजाले में बदल देगी।"[26]

इस तरह वाल्मीकि की कविता में क्षोभ, आक्रोश और विद्रोह के साथ-साथ परिवर्तन और आशावादी स्वर भी दिखाई देते हैं।

वाल्मीकि जी को दलितों के परिश्रम पर पूरा भरोसा है, उन्हें लगता है कि समय का चक्र परिवर्तनशील है। वह इमानदारी और निष्ठा को पहचान कर दलितों की परिस्थिति में बदलाव करेगा। वह दिन अवश्य आयेगा जब लोग दलितों की सत्ता को स्वीकार करेंगे। वाल्मीकि की यह संकल्पना साकार होती नज़र आ रही है। आज राजनैतिक, सामाजिक और साहित्यिक स्तर पर दलितों की अस्मिता को स्वीकार किया जा रहा है।

4.4 बासुदेव सुनानी की कविता में दलित चेतना

विषम परिस्थितियों वाले समाज में जन्म लेने वाले सुनानी जी ने दलित समाज की विषमताओं में अत्यंत साहस से जिया है। उन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम

[26] सदियों का संताप, ओम प्रकाश वाल्मीकि, पृ .सं-48

से दलितों पर होने वाली हिंसा, शोषण, अत्याचार, दमन और अन्याय को लोगों के सामने रखा है। एक तरह से जाति को लेकर हीन भावना की गाँठ को खोला है और चुनौती भी दी है।

4.4.1 वर्ण-व्यवस्था के प्रति क्षोभ

सुनानी की कविताओं में सामाजिक और सांस्कृतिक विद्रोह उभर कर आता है। उनकी कविता का विद्रोह मानव द्वारा निर्मित जाति-व्यवस्था से है। जिसके कठोर बंधनों के कारण दलित समुदाय का गला घोंटा गया। ऐसी कठोर व्यवस्था को धिकारते हैं। उन्हें हिन्दू धर्म ग्रंथों में लिखित चातुर्वर्ण जाति-व्यवस्था तथा छूआछूत और भेदभाव मान्य नहीं। उनकी कविता अन्याय, अत्याचार और शोषण पर टिकी संस्कृति, सभ्यता को नकारती है। कविताएँ पुरानी रूढ़ियों, परंपराओं, नैतिकताओं और आस्थाओं के प्रति विद्रोह करती हैं।

सामाजिक शोषण को देखा जाए तो वर्ण और जाति-व्यवस्था ने समाज को छिन्न-भिन्न कर दिया। हालत यह थी कि सवर्ण हिन्दू इनकी परछाई से भी बचकर चलते थे। इनके पास न काम काज के अधिकार थे न आर्थिक साधनों पर अधिकार था। सब पर सवर्णों का एकाधिकार था। दलित-बहुजनों ने बड़े कष्टों से जीवन जिया। पर अब वे आवाज़ उठाने लगे हैं। हिन्दू धर्म की इसी कठोरता के कारण अनेक दलित धर्म-परिवर्तन कर लिये। उन्हें न हिन्दू धर्म मान्य था न उनकी जाति प्रथा। अभी समाज के कुछ बुद्धिजीवी लोग दलितों को धर्म परिवर्तन के लिए समझा रहे हैं। पर अब दलित सजग हो गये हैं। उन्हें सनातन धर्मियों की चाल समझ में आने लगी है । कवि उन चालाक बुद्धिजीवियों से सवाल करते हैं कि-

"फेंक दिये थे मुझे जंगली बताकर

शेर के मुंह में जंगल में

जातिवाद और संस्कृति के नाम पर

गाँव के बाहर अछूत इलाके में

हे संस्कारवादियों , आज तक तुम कहाँ थे।"[27]

कवि यहाँ सनातन हिन्दू धर्मियों को मुँह तोड़ जबाव देते हैं । इन लोगों ने फिर से दलितों को अपनी साजिशों का शिकार बनाना चाहा था। फिर से स्वर्ग-मर्त्य, मंत्रोच्चारण, गेरूआ,रंग गंगा जल, पाप-पुण्य आदि का भय दिखा कर वर्ण-व्यवस्था को मनवाना चाहते हैं। पर आज दलितों की नयी पीढ़ी ऐसे झांसे में नहीं आने वाली है। वे अब रोक-टोक एवं सवाल करने पर उतर आये हैं। कवि कहते हैं कि-

"पहले मेरी न कुछ आपत्ति थी

न अब है

बस इतना मुझे समझा दो

स्वर्ग-धाम जाने के बाद

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र

मैं कहाँ स्थान पाऊँगा? "[28]

दलितों की इस तरह का सवाल अब सवर्णों को झकझोर देता है। यह सभ्यता और संस्कृति के नाम पर सदियों से की गयी बर्बरता का रेखांकन है।

जाति के नाम पर ये मानवीय भेदभाव सदियों से कायम हिन्दूवादी सांस्कृतिक व्यवस्था के आभूषण है। इसके बिना हिन्दुत्व जिंदा ही नहीं रह सकता।

[27] सायद प्रेम करना मुझे मालूम नहीं है, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 25

[28] वही, पृ. सं. 26

यह इसका प्राण तत्व है। सदियों से लेकर आज तक ये जाति-प्रथा किसी न किसी रूप में चली आ रही है।"भारत में जाति जन्म के साथ शुरू होती है और मरने के बाद भी पीछा नहीं छोड़ती है। कुछ लोग यह दावा करते हैं कि समाज में अब 'जाति' की समस्या नहीं है। लेकिन वे उन समाचारों को अनदेखा करते हैं जो हर रोज अखबारों में छपते हैं। हर रोज घटने वाली इन घटनाओं से यह पता चलता है कि समूचे देश में पुराणपंथी कट्टरवादिता अपने चरम पर है। लोकतन्त्र मात्र एक दिखावा भर होकर रह गया है ।"[29] इस जाति-प्रथा के कारण ज्यों ही कवि को अपनी यातनाएँ याद आती हैं, उनका खून खैलने लगता है। वे जातिगत काम धंधों के शास्त्रीय आधारों को समाप्त और लोक तांत्रिक आधारों को स्थापित करना चाहते हैं।

दलितों पर होने वाले शोषण का एक शाश्वत स्वरूप यह है कि अथक परिश्रम करने के पश्चात भी वह भूखा रहता है। नहरें, कुएँ व नल बनाने के पश्चात भी दलित प्यासे रहे। दलित लोगों के लिए कड़ी मेहनत कर भोजन की व्यवस्था करे, पर वह स्वयं भूखे रहे, यही अमानवीयता भरा शोषण सवर्णों द्वारा दलितों पर किया गया। दलित वर्ग ने सौनिकों और दासों के रूप में बड़ी बड़ी लढ़ाईयाँ लड़ीं, राज्य जीते, स्वाधीनता संग्राम में बढ़ चड़ कर हिस्सा लिया लेकिन वे गुलाम, दास अभी भी बने रहे । उनके द्वारा किये गये हर कार्य का श्रेय सवर्ण ले गये और खुद को महान बनाते गये। पर आज जब वे इस तरह के झूठे दिखावे करते हैं। बहुजन समाज के सामने अपने नाम का ढिडोंरा पिटते हैं तो दलित क्षोभ से भर जाते हैं। कवि लिखते हैं-

"रूई बोये हम

धागे काटे हम

कपड़े पहने तुम

[29] मुख्यधारा और दलित साहित्य, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं-86

हमसे छीन कर, अब मुकुट पहने हो

तुम स्वाधीनता संग्रामी

खादी के नाम पर खुद को महान बता रहे हो।"[30]

इस तरह सुनानी की कविताओं में दलितों के आक्रोश की जीवंत अभिव्यक्ति हुई है। इन कविताओं में दलितों के चिर संचित आक्रोश के स्वर को मुखरता प्रदान की गयी है। अपने पूर्वजों की चुपी से उपजी प्रताड़ना, अत्याचार तथा यातनामयी जिंदगी के विरोध में कवि ने दलित-चेतना के स्वर को कविताओं में प्रतिपादित किया है। सुनानी सवर्णों की जातिवादी मानसिकता का विरोध करते हुए उन्हें चेतावनी देते हैं।

4.4.2 विद्रोह और आक्रोश की अभिव्यक्ति

बासुदेव सुनानी जी ने अपनी कविताओं में भगवान, भाग्य, पूर्व जन्म का फल, पुरानी परंपराओं, बाह्यडंबर तथा दोहरे मानदंड वाली भारतीय संस्कृति को अस्वीकार करते हुए ब्राह्मणवाद और जातिवाद का खंडन किया। कवि सीधे शब्दों में कहते हैं कि-

"अफसोस है

मैं पाप-पुण्य, स्वर्ग-नरक, वेद-नैवेद्य

में बिलकुल विश्वास नहीं करता

विश्वास करने की कोई स्पृहा भी नहीं।"[31]

---

[30] सायद प्रेम करना मुझे मालूम नहीं है, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 20

[31] वही, पृ. सं. 113

कवि 'नवकलेवर' शीर्षक कविता में यह दिखाने की कोशिश करते हैं कि उन्हें हिन्दू धर्म से कोई मतलब नहीं है। धर्मगान करने का उनके पास समय नहीं है। न उनके इस छल-प्रपंचन से कोई लगाव है। वे सिर्फ अपने काम से काम रखना चाहते हैं। वे हिन्दू धर्म के पाखंड को पाप मानते हैं। जिसके लिए वे हिन्दू धर्म शास्त्र को नकारते हैं। कवि का मानना है कि-

"पाप करने का, कीर्तन गाने का

मंत्र पढ़ने का समय नहीं है

मैं गंदगी,कूढ़ा, नाला आदि

साफ करने से घृणा नहीं करता

केवल घृणा है तो सिर्फ छलना से ।"[32]

कवि यहाँ यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि मंत्र-जप करना, भजन-कीर्तन करना पाप के समान है। यह धर्म के नाम पर अहंकार है, मिथ्या है, पाखंड है । जिसे कवि कभी नहीं करना चाहते हैं, जिससे कवि घृणा करते हैं। यह अहंकार कवि नहीं कर सकते हैं, जिससे वह मुक्ति चाहते हैं।

अब बहुजन समाज जाग गया है। वे अब धर्म के ठेकेदारों के झांसे में नहीं आने वाले हैं। वे अब सवर्णों के व्यवहार, आचरण और मनोवृत्ति को समझने लगे हैं। सुनानी जी ने भारतीय संस्कृति में उच्च जातियों के अहम, दंभ तथा स्वार्थ को अपनी कविता में स्पष्ट करते हैं। वे धर्मगुरु, पण्डितों के असली रूप को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं-

[32] सायद प्रेम करना मुझे मालूम नहीं है, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 114

"आचार्य, धर्म गुरु, आध्यात्मिक पण्डित

तुम जिस-जिसको कहते हो श्रेष्ठ

ऐसे सब सौन्दर्यपूर्ण

दिप्तिमय, चिकने बदन वाले

मुझे लगते हैं लंपट।"[33]

सुनानी यह समझते हैं कि सदियों से दलितों का जो शोषण हुआ है वह एक साजिश के तहत किया गया है। और इस साजिश का मुखिया धर्मगुरू या पण्डित है। इन पण्डितों ने धर्म का सहारा लेकर श्रम कानून बनाया और सुख-सुविधाओं के लिए उन्हें जन्म, कर्म फल के साथ जोड़ दिया। परिणाम स्वरूप कष्टकर और घृणास्पद कार्य दलितों के हिस्से डाल दिये गए। इस संदर्भ में ओमप्रकाश वाल्मीकि का कहना है कि "जाति का मूल ऋग्वेद के दशम मण्डल का पुरुष-सूक्त है जो कहता है कि परूष (ब्रह्मा) के सिर से ब्राम्हण, बाहों से क्षत्रिय, उदर से वैश्य तथा पैरों से शूद्र का जन्म हुआ है । इसे श्रम-विभाजन कहकर महिमा मंडित किया गया था जबकि वास्तविकता यह है कि यह श्रम विभाजन नहीं 'श्रमिक विभाजन' था, जो ब्राह्मण के वर्चस्व को कायम रखने के लिए रचा गया था ।"[34] ब्राह्मण पण्डित हिन्दू धार्मिक ग्रंथों का दाता भी है और निर्माता भी। ब्राह्मण का समाज में देवता तुल्य स्थान है। पण्डित की कई बातों पर संदेह करना अथवा विरोध करना ईश्वर की सत्ता पर प्रश्नचिन्ह लगाने जैसा निन्दनीय कृत्य समझा जाता है। इन पण्डितों, धर्मगुरूओं ने ईश्वर के नाम पर लोगों के साथ बहुत छल किये और अभी भी कर रहे हैं। इन्होंने

[33] सायद प्रेम करना मुझे मालूम नहीं है, बासुदेव सुनानी पृ. सं. 77

[34] मुख्यधारा और दलित साहित्य, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं-81

ईश्वर के लिए बनाये गये मंदिर में कितनी बहू-बेटियों की अस्मिता के साथ खिलवाड़ किया इसका कोई हिसाब नहीं है। कवि लिखते हैं कि-

"इसलिए गढ़े हो बंदीघर

नाम दिये हो मंदिर।"[35]

कवि इनके मंदिर को बंदीघर मानते हैं। पता नहीं कितनों को इन्होंने इस मंदिर के नाम पर बंदी बनाकर रखा है। लोगों की दृष्टि में यह ब्राह्मण पण्डित ईश्वर का प्रतिरूप है। इसलिए इनके द्वारा कही गयी बातें लोगों के लिए अकाट्य हैं। इनके द्वारा रचे गये वेद, पुराण, उपनिषद जिसमें सत्य को स्थापित किया गया, दलितों ने उसका अंधानुकरण किया। जिसका परिणाम यह हुआ कि शारीरिक और मानसिक दोनों तरह से गुलाम बन बैठे। दलितों को इस सामाजिक संरचना के यथार्थ को समझने में एक लंबा अरसा लग गया। आधुनिक युग में शिक्षा के प्रचार-प्रसार से दलितों में स्वाभिमान की भावना पैदा हुई है। वे अपने अधिकारों के प्रति सचेत हुए हैं। सचेत दलित आज सवर्णों के इस व्यवहार को अन्याय-अत्याचार की दृष्टि से देख रहा है। सेवा भाव के स्थान पर उसके मन में मानवीय गरिमा की भावना पैदा हुई है। इस भाव की अभिव्यक्ति कवि ने अपनी 'आउ केते काल' (और कितने समय) कविता में इस प्रकार की है-

"तुम्हारी छलना में

माया जाल में

फंस कर

हम इतने दिन

[35] अस्पृश्य, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 34

दास बनकर रहे

अब और नहीं

हम भी सीख गये हैं

कैसे तोड़ना है, छलना के जाल।"[36]

सुनानी एक जागरुक, सचेत और सक्रिय कवि हैं। उन्होंने धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक समाजशास्त्र का गहन अध्ययन किया है। उनका मानना है कि इन सवर्णों ने सब कुछ अपनी सुविधानुसार गढ़ा है। इन्होंने जो अमानवीय व्यवहार दलित समाज के साथ किया, वह धर्म के पुरोधाओं और धर्म संरक्षकों के लिए हिंसात्मक नहीं है। सवर्णों ने पूर्वजन्म, मोक्षप्राप्ति, स्वर्गप्राप्ति का मुल्लामा पढ़ा कर यह अमानवीय कृत्य किया है। इन्होंने कहा सेवा करो, दलित किए। सेवा करने से ईश्वर खुश होंगे। ईश्वर की प्राप्त होगी। इन्होंने कहा सेवा ही धर्म है। सेवा से मोक्ष प्राप्ति होगी। स्वर्ग में जगह मिलेगी। इसे भी दलितों ने एक बकरी की तरह बिना कोई प्रतिवाद किए मान लिया। कवि का सवाल है कि अगर यह सेवा करनी इतनी अच्छी बात है तो , फिर यह सारी अच्छी बात दलितों के लिए क्यों। ईश्वर दलितों के लिए इतने हमदर्द कैसे बन गये। कवि सवाल करते हुए लिखते हैं कि-

"हे भगवान, मेरे लिए

तुम्हारा इतना दर्द क्यों

एक बार समझा दीजिए

सेवा करने से अगर नारायण प्राप्ति है

तब उतना उदार हो कर

[36] अस्पृश्य, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 33

हाड़ि (चमार), पाण (हरिजन) को

सब कुछ सुअवसर दे रहे हो क्यों।

तुम्हारे संतान जाएँगे कहाँ

इससे तुम्हारा वंश डूब नहीं जाएगा।"[37]

मनुष्य की सेवा अगर ईश्वर सेवा है, ईश्वर प्राप्ति है। तो यह काम क्षेत्रिय, ब्राह्मणों के लिए क्यों नहीं है ? जब सारी सुख-सुविधाएँ इन लोगों के लिए हैं। तब यह सुविधाओं का लाभ भी तो उन्हें उठाना चाहिए था । जिससे उन्हें भी मोक्ष प्राप्ति होती । उनकी भी संतानें स्वर्ग लाभ करती। कवि सवर्णों के मनोभाव से भलिभांति परिचित है। जिसके लिए कवि ने अपनी 'सेवा' शीर्षक कविता के माध्यम से वर्णवादी समाज से प्रश्नवाचक संवाद स्थापित करने की पहल की है। अगर सेवा करना दलितों के लिए ईश्वर प्राप्ति है तो यही सेवा सवर्णों के लिए ईश्वर प्राप्ति क्यों नहीं हो सकती? यह हिन्दू धर्म का कैसा अंतर्विरोध है। यह सामाजिक पटल पर एक प्रश्न है। जो जाति-व्यवस्था के खिलाफ सवाल खड़ा करता है।

सुनानी की कविता आक्रोश की कविता है। कविता के माध्यम से कवि ने सदियों से अपने भीतर दबे आक्रोश को आवाज़ दी है । यह आक्रोश सामाजिक भेदभाव के कारण उपजा है। शारीरिक एवं मानसिक उत्पीड़न से उभरा है । यही कारण है कि दलित आज बोलने लगे हैं । सुनानी ने 'चीत्कार' शीर्षक कविता में दलित आक्रोश का वर्णन किया है। कवि चेतावनी देता है कि अब तक दलितों के साथ जो व्यवहार हुआ, उसे भाग्य और नियति समझ कर दलित चुपचाप सहता रहा।

[37] सायद प्रेम करना मुझे मालूम नहीं है, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 57

लेकिन नई पीढ़ी अपने आक्रोश को मन के भीतर दबा कर नहीं रखेगी, अपितु यह आक्रोश ज्वालामुखी की भांति फूट पड़ेगा। कवि कहता है-

"मनुष्य जैसा जीने का

सर्वनिम्न आवश्यकता

नहीं दोगे तो

हो सकता है ऐसा समय आयेगा

हाँ-जी, हाँ-जी बोलता हुआ

नीरव मुँह से

अनंत जहर

बह जाएगा। "[38]

जो गलती दलितों के पूर्वजों ने की, उसे युवा पीढ़ी नहीं दोहराएगी। आज दलित को सवर्ण समाज की प्रभुता नहीं चाहिए। बल्कि उसे बराबरी, हिस्सेदारी तथा अपने हिस्से की मानव गरिमा चाहिए। एक मनुष्य के रूप में उसे स्वीकार किया जाए, यही उसकी इच्छा है।

4.4.3 आशावाद

सुनानी जी की काव्य चेतना में जहाँ एक ओर शोषण, आक्रोश, संघर्ष जैसी बातें दिखाई पड़ती हैं, वहीं दूसरी ओर आशावादी दृष्टिकोण भी है। उन्होंने ऐसी आशा व्यक्त की है कि एक दिन ऐसा आएगा जब पूरे राष्ट्र पर दलितों का राज होगा। क्योंकि कवि को पता है दलित मेहनतकश वर्ग है। अपनी मेहनत से वे असंभव को

[38] अस्पृश्य, बासुदाव सुनानी, पृ. सं. 39

संभव कर सकते हैं। सुनानी दलितों में व्याप्त उदासीनता एवं निराशा का स्वर बदलने के लिए नई चेतना की गर्जना करते हैं ।

सुनानी ने अपनी कविताओं में दलित समाज का कामकाजी वर्ग के रूप में चित्रण किया है। कवि कहते हैं कि दलितों ने समाज के विकास में अपने श्रमदान से गहरी भूमिका अदा की है । वे लोग अपने कर्म में अपना स्वाभिमान समझते हैं। स्वयं कष्ट सहकर दूसरों के कष्ट दूर करते हैं । गंदगी में रहकर गंदगी की सफाई करते हैं । वे मेहनतकश वर्ग है , मेहनत से अपना पेट भरते हैं। किसी से भीख नहीं मांगते हैं। भीख मांगने का काम तो सवर्णों का है जो दूसरों की मेहनत के उपर निर्भर रहते हैं। कवि लिखते हैं-

"ना ना महाप्रभु

हाथ जोड़ कर तेरे द्वार पर

रेंगते रेंगते विनती करते हुए

आराम जीवन के लिए

प्रार्थना नहीं करूंगा

पर

मिट्टी खोदूंगा

पत्थर तोड़ूँगा

शौचालय साफ करूंगा

सागर तैरते हुए मगरमछ से लड़ूँगा

नहीं नहीं मैं भीख नहीं माँगूँगा।"[39]

इन पंक्तियों को देखने से एक बात साफ होने लगती है कि सुनानी अपने पेशे को अपना स्वाभिमान समझते हैं। कविता में कवि ने श्रमिक वर्ग के बल, शौर्य, साहस तथा कर्मठता की प्रशंसा की है। दलित भूखे रह कर भी किसी का शोषण नहीं करते, प्यासे रहकर भी किसी को दुःखी, प्रताड़ित नहीं करते हैं। किसी का हक नहीं छीनते हैं। जिनसे उनका स्वाभिमान स्पष्ट झलकता है। इसके साथ-साथ कवि दलितों को यह भी प्रेरणा देते हैं कि हिम्मत और धैर्य से निरतंर आगे बढ़ते चलना ही संघर्ष है और तमाम असफलताओं के बावजूद हार स्वीकार नहीं करनी चाहिए।

हालांकि दलितों के रास्ते में बहुत ही बाधा-विघ्न आये हैं और वे आगे भी आते रहेगें। उनके सामने तरह-तरह की विपत्तियाँ आयेंगी लेकिन उन्हें हार नहीं माननी है। एकलव्य का उदाहरण देते हुए कवि लिखते हैं कि-

"मैं जानता हूँ

अब मूल्यबोध की कोई शिक्षा नहीं

तो क्या

एकलव्य को प्रमाण पत्र नहीं मिला

वह क्या धनुर चलाना नहीं सीखा। "[40]

जैसे एकलव्य के सामने बाधा आयी लेकिन वह अपने लक्ष्य से पीछे नहीं हटा। उसे सामाजिक स्वीकृति नहीं मिली, गुरु नहीं मिला। लेकिन उसे जो चाहिए था उसे अपनी मेहनत से स्वयं हासिल किया। कवि का पूरे दलित समाज को आह्वान है कि

[39] सायद प्रेम करना मुझे मालूम नहीं है, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 129

[40] छि, बासुदेव सुनानी, पृ.सं-95

सभी को एकलव्य की तरह बनना है । कवि का यह भी आह्वान है कि बस एकलव्य की तरह अपनी साधना से ज्ञान अर्जन करना है न कि किसी सवर्ण के झांसे में आकर भोले भण्डारी की तरह अपना अंगूठा दान करना है । कवि को यह विश्वास है कि अपने परिश्रम का फल दलित स्वयं प्राप्त करेंगे । आने वाले समय में दलितों के बच्चे भूखे-प्यासे नहीं होंगे, प्रताड़ित नहीं होंगे। वे भूखे-प्यासे बच्चे एक दिन शोषण के जाल को तोड़कर बाहर आयेंगे। कवि के शब्दों में-

"यहाँ की मिट्टी में

एक ऐसा बीज अंकुरित होने की

शपथ ले चुका है

जो पूरे परिवेश को हरा-भरा बनाने की

आकांक्षा पाले है ।"[41]

कवि को ऐसे दिन का इंतजार है, जब समाज से जातीय दंश समाप्त हो जाएगा और समाज में समता आयेगी। कवि को सामाजिक बदलाव की उम्मीद दिखाई दे रही है। वे दलितों की मुक्ति का सपना देख रहे हैं। यही सपना दलित मजदूर की आँखों में भी पल रहा है। सुनानी अपनी कविताओं के माध्यम से एक नये मानव की स्थापना करना चाहते हैं जो, समय, समाज और व्यक्ति को लेकर चले ।

4.5 निष्कर्ष:

समग्रतः कहा जा सकता है कि वाल्मीकि और सुनानी की कविताओं में दलितों के संघर्ष के साथ-साथ नकार और विद्रोह का स्वर सुनाई देता है । दोनों की कविताएं

[41] बहुत कुछ घटित होना है, बासुदेव सुनानी, पृ. सं-16

दलितों के मन में चेतना को उजागर करती हैं । दलित साहित्य गौतम बुद्ध और डॉ.अंबेड़कर के विचारों से प्रेरित साहित्य है। डॉ. अंबेडकर ने ईश्वर के अस्तित्व पर प्रश्नचिन्ह लगा कर हिन्दु धर्म की ईश्वरीय मान्यता को नकारा था। जिसका प्रतिबिंब वाल्मीकि और सुनानी के साहित्य में बराबरी से दिखाई देता है। दोनों कवि अपनी कविता में समाज में व्याप्त सड़ी-गली धार्मिक, सामाजिक मान्यताओं को नकार कर विज्ञानवादी सोच को अपनाते हुए घटनाओं एवं विचारों को तर्क की कसौटी में कसकर परखते हैं। शोषण उत्पीड़न और जातिवाद के खिलाफ संघर्ष करते हैं । इनकी मूल चेतना विज्ञानवादी है। वाल्मीकि और सुनानी की रचनाओं में परंपरागत विचारधाराओं, मिथ्या परंपराओं को नकार कर मनुष्य को मनुष्य के रूप में स्थापित करने का प्रयास हुआ है। मनुष्य को पशु से भी हीन मानने वाले हिन्दु धर्म और संस्कृति के प्रति दोनों लेखकों के मन में विद्रोह की भावना है जो उनकी कविताओं में भलिभाँति प्रतिबिंबित हुई है। उनकी कविता के केन्द्र में मानवतावादी दृष्टि के दर्शन होते हैं। वे समस्त विश्व के मनुष्य को अपने साहित्य के केन्द्र में रखते हैं । वे समता, बंधुत्व और स्वतन्त्रता के पक्षधर हैं । अतःउनके साहित्य में दलित जीवन की विड़ंबनाओं के साथ-साथ विश्वमानवता के दर्शन भी होते हैं।

पंचम अध्याय

ओमप्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी की कविताओं की भाषिक संरचना एवं शिल्प विधान

5. प्रस्तावना

5.1 ओमप्रकाश वाल्मीकि की काव्य भाषा एवं शिल्प विधान

5.1.1 सामान्य बोलचाल की भाषा

5.1.2 विद्रोह तथा गाली-गलौज की भाषा

5.1.3 प्रतीक विधान

5.1.4 बिंव विधान

5.1.5 मिथक का प्रयोग

5.1.6 मुहावरों का प्रयोग

5.1.7 वर्णनात्मक शैली

5.1.8 आत्मकथात्मक शैली

5.1.9 प्रश्नार्थक शैली

5.2 बासुदेव सुनानी की काव्य भाषा एवं शिल्प विधान

5.2.1 सामान्य बोलचाल की भाषा

5.2.2 विद्रोह तथा गाली-गलौज की भाषा

5.2.3 प्रतीक विधान

5.2.4 बिंव विधान

5.2.5 मिथक का प्रयोग

5.2.6 वर्णनात्मक शैली

5.2.7 आत्मकथात्मक शैली

5.2.8 प्रश्नार्थक शैली

5.3 निष्कर्ष

पंचम अध्याय

ओमप्रकाश वाल्मीकि एवं बासुदेव सुनानी की कविताओं की भाषिक सरंचना एवं

शिल्प विधान

5. प्रस्तावना

काव्य-सृजन अपने आप में एक जटिल प्रक्रिया है। कवि की काव्य-प्रतिभा के साथ उसका तत्कालीन परिवेश भी इस प्रक्रिया में जुड़ा होता है। कवि की संवेदना, स्वानुभूति, भाव, विचार इस प्रक्रिया की नींव होते हैं। ऐसे कई पड़ावों से होकर कवि की कविता जन्म लेती है । ओमप्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी के काव्य का अध्ययन करने के बाद इतना तो ज्ञात होता है कि वे जो लिखते हैं, उससे बहुत आगे की सोचते हैं। कवि अपने आस-पास के समाज से देखी सुनी घटनाओं, अपने विचारों एवं भावों को भाषा के माध्यम से व्यक्त करना चाहता है और जिस ढंग से उसे व्यक्त करता है वही उसका शिल्प विधान है । हर साहित्यकार अपने विचारों को अलग अलग तरीकों से व्यक्त करता है अर्थात हर रचनाकार की अपनी भाषा शैली एवं शिल्प विधान अलग-अलग होता है । वह अपनी भाषा और शिल्प के माध्यम से ही अपनी रचनाओं को एक रूप प्रदान करता है । इसी तरह दलित साहित्य का भी एक अलग भाषायी मानदंड है ।

दलित साहित्य नवीन होने के कारण इसका शिल्प भी परंपरागत साहित्य से अलग और अपने ढंग का है । वाल्मीकी और बासुदेव सुनानी दलित रचनाकर हैं । उनका शिल्प और भाषा शैली भी अलग है । वाल्मीकी और सुनानी की कविताओं में सरल भाषा का प्रयोग हुआ है । दलित जीवन का यथार्थ चित्रण इन दोनों कवियों की शक्ति है। इस

यथार्थ को उन्होंने नए प्रतीक, बिंव, मिथक, नकार और विद्रोहपूर्ण भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। वाल्मीकी और सुनानी की भाषा शैली और शिल्प विधान का विवेचन विश्लेषण ही इस अध्याय का उद्देश्य है ।

5.1 ओमप्रकाश वाल्मीकि की काव्य भाषा एवं शिल्प विधान

भाषा एक मात्र ऐसा माध्यम है जो मनुष्य को पशु से अलग करती है । विचारों की अभिव्यक्ति ही भाषा का मुख्य उद्देश्य माना जाता है । भाषा का संबध कवि के अन्तर्मन के साथ-साथ तत्कालीन परिवेश के साथ भी होता है। कवि का परिवेश, पारिवारिक, व्यावसायिक,सामाजिक जीवन, उसका आक्रोश, उसकी दृष्टि, काव्य की प्रेरणा, कवि की मौलिक अनुभूति यह सब को कविता रूपी धागे में पिरोने का काम भाषा करती है ।

दलित कवियों में दलित की साधारण भाषा का प्रयोग मिलता है । दलित रचनाकार जिस समाज से आता है, जिस वर्ग विशेष से आता है, उसी समाज की आम भाषा को अपनी रचना में व्यक्त करता है । दलित रचनाकारों ने अपने लिए सहज, सरल और आम लोगों की बोलचाल की भाषा को अपनाया है । यही कारण है कि दलित साहित्य आम लोगों की भावनाओं और विचारों को अभिव्यक्त करने में सफल हुआ है । जन सामान्य की भाषा का प्रयोग करके वह सीधे उनके हृदय को स्पर्श करती है ।

दलित साहित्य परंपरागत हिन्दी साहित्य की स्थापित भाषा और उसके शिल्पगत मानदंडो को नकार कर अपने लिए अलग मानदंडों का विकास कर रहा है । वाल्मीकि एक दलित रचनाकार है । उनकी कविता का कथ्य, विषय चयन आदि अलग

होने के साथ-साथ शिल्प और भाषा शैली भी अलग है । वाल्मीकि की भाषा एवं शैलीगत विशेषताओं को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर दर्शाया जा सकता है ।

5.1.1 सामान्य बोलचाल की भाषा

दलित साहित्य ने अपने प्रकृति के अनुरूप अपने लिए सहज,सरल और ग्रामीण बोली और भाषा को अपनाया है । दलित साहित्यकार ऐसी भाषा का प्रयोग करते हैं जिसमें भटकाव और उलझन न हो। दलित साहित्य ने संस्कृत निष्ठ परंपरागत साहित्यिक भाषा एवं काव्य शैली को सिरे से नकार कर सर्वसामान्य भाषा का प्रयोग किया है । वैसे ही संस्कृत कभी आम लोगों की भाषा थी ही नहीं । दलितों को तो संस्कृत पढ़ने का अधिकार ही नहीं था । जिस भाषा को पढ़ने का अधिकार उन्हें नहीं मिला, उस भाषा में अपने भावों को वे कैसे अभिव्यक्त कर सकते हैं? दलित साहित्यकारों जिस समाज में रहते हैं उस समाज की भाषबोलचाल के शब्दों का प्रयोग किया है । फिर उसमे भले ही पारंपरिक साहित्य के मानदंड न हो । इस संदर्भ में शरण कुमार लिम्बाले लिखते हैं “दलित लेखकों को प्रमाण भाषा की अपेक्षा अपनी बस्ती की भाषा अपनी लगती है । दरअसल प्रमाण भाषा में दलितों की बोली के सभी शब्द नहीं मिलते हैं । ऐसे ही अपने अनुभव, अपनी मातृभाषा में बिना प्रयास कह पाना, अभिव्यक्ति को अधिक तीव्रता देने में सहायक होता है ।”[1]

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी कविताओं के लिए सहज, सरल और आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है । जिस भाषा का प्रयोग दलित अपने दैनिक जीवन में करता है।

[1] दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, शरण कुमार लिम्बाले, पृ.सं -45

दलित कविता की भाषा पर अपने विचार रखते हुए वाल्मीकी लिखते हैं “यह कहना भी असंगत नहीं होगा कि दलित कविता ने अपनी एक भाषा निर्मित की है । जिसका रूप यथार्थ से जुड़ा है । जो सहज ढंग से साहित्य के संस्कारों और सामाजिक सरकारों से अपनी अभिव्यक्ति निर्मित करती है। दलित कविता का यही रूप उसे विशिष्ट बनाता है।”[2] उन्होंने परंपरागत, संस्कृतनिष्ठ, काव्य-शास्त्रीय तथा व्याकरण के नियमों की अपेक्षा करने वाली भाषा का परित्याग करके सर्वग्राही लोक भाषा का प्रयोग किया है । उनकी भाषा अलंकारिक तथा काल्पनिक भाषा न होकर यथार्थ परक भाषा है । परंतु यह नहीं है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि की भाषा परिनिष्ठित नहीं है । वह दलित साहित्यकारों में ‘भाषा के डिक्टेटर’ माने जाते हैं। उनकी रचनाओं में कहीं-कहीं प्रसंगानुकूल संस्कृत शब्दावली, तत्सम, तद्भव, देशज, अरबी, फारसी तथा विदेशी शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

उनकी कविता में तत्सम शब्द जैसे अस्पृश्य, क्रंदन, पटाक्षेप, भूजा, अभिशाप, श्लोक, मस्तिष्क, प्रज्वलित, पृष्ठ, शास्त्रीय, स्पर्श, घृणा आदि का प्रयोग किया है । तद्भव शब्दों में मिट्टी, बैल, मर्यादा, सूअर, पहाड़, हवा आदि । देशज शब्दों में मूठ, देहात, झाड़फूंक, जोता, ढिबरी, उखला आदि। उनकी कविता में आये अंग्रेज़ी शब्द जैसे –स्कूल, प्रायमरी, टीचर ,पोस्टर, सायरन, मीटिंग, कार्ड, रूम, पेंटिंग आदि । उर्दू, फारसी और अरबी के शब्दों का भी खूब प्रयोग किया है । जैसे-इंतजार, ख़िलाफ, सलामत, तब्दील, कवायत, शीनखत, तकलीफ आदि ।

[2] सदियाओं का संताप, ओमप्रकाश वाल्मीकि, भूमिका

5.1.2 विद्रोह तथा गाली-गलौज की भाषा

दलित साहित्य की भाषा नकार और विरोध की है। जिसमें सदियों की यातना साकार हो उठी है। दलित जीवन की विसंगतियों,उत्पीड़न, शोषण और दमन की अभिव्यक्ति के लिए यही भाषा ज्यादा सटीक लगती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं " दलित साहित्य ने संस्कृतनिष्ठ परंपरागत साहित्यिक भाषा, काव्य शैली, प्रस्तुतीकरण को नकारकर सर्वग्राही भाषा का प्रयोग किया है। ऐसी भाषा जो दलितों की पीड़ा, अपमान, व्यथा की सही और यथार्थवादी अभिव्यक्ति बन सके। दलित साहित्य की भाषा नकार और विद्रोह की भाषा है जिसमें युगों की यातनाएँ साकार हो उठी हैं।" [3] वाल्मीकि की भाषा में एक प्रतिवाद है, विद्रोह है , आक्रोश है। और यह प्रतिवाद, विद्रोह, आक्रोश उनकी वेदना से उपजा है। उसीसे होकर निकला है यह क्रोध। एक उदाहरण देखिये-

" एक तुम हो

जो अभी तक इस 'मादरचोद' जाति से चिपके हो

न जाने किस हरामजादे ने

तुम्हारे गले में

डाल दिया है जाति का फंदा

जो न तुम्हें जीने देता है

[3] दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ, सं-81

न हमें ।"[4]

इस कविता में उन्होंने जो भाषा का प्रयोग किया है खुशी से नहीं किया है । खुशी से किसी को गाली नहीं दे रहे हैं। उस गाली के पीछे छुपी वेदना को समझना चाहिए। हो सकता है यह गाली-गलौज के शब्द साहित्य के पारंपरिक मानदंडों पर खरे न उतरे हों। हो सकता है ये समीक्षकों को नागवर लगे। परंतु अभिव्यक्ति के स्तर पर कवि की अपनी संवेदना को व्यक्त करने में सफल मानी जाएगी । दलित साहित्य पर अश्लीलता का आरोप लगाया जाता है । शास्त्रीय मानदंडों के अनुसार कविता के लिए गेयता और संगीतात्मकता को जरूरी माना गया है। पर दलित कविताओं में दलित जीवन की विसंगतियों, उत्पीड़न और शोषण की अभिव्यक्ति के लिए आनंदानुभूति वाले रस की जरूरत नहीं। वहाँ तो ऐसी भाषा की जरूरत है , जिससे जीवन के सही और यथार्थ का चित्रण संभव होता है । ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं "कुछ आलोचक दलित साहित्य में गंदी और अश्लील भाषा के प्रयोग की ओर संकेत करते हैं। उन्हें लगता है साहित्य का पाठ 'पवित्र' होना चाहिए। भले ही उनमें बनावटी भाषा, जो आभिजात्य संस्कारों से रची-बसी हो का प्रयोग करना पड़े। यह धारणा उचित नहीं है। क्योंकि दलित साहित्य कल्पना में नहीं जीता। वह जीवन के कटु यथार्थ से रूबरू होता है।"[5]

दलितों के चेहरे पर सदियों से सवर्ण द्वारा दिये गये प्रताड़ना के घाव अभी भी साफ दिखाई दे रहे हैं। इसी प्रताड़ना के अहसास को व्यक्त करने के लिए कवि भाषायी तेवर के माध्यम से गाली-गलौज वाली भाषा का प्रयोग करने में संकोच नहीं करता ।

[4] अब और नहीं, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.सं-20

[5] दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं-81

वाल्मीकि की भाषा में समाज के सच को उजागर करने की अपार शक्ति है । यह शक्ति भी उन हजारों सालों के संतप्त लोगों की चीख से मिली है ।

5.1.3 प्रतीक विधान

साहित्य में प्रतीक का अपना महत्व है । प्रतीक द्वारा भावना, विचार बोध आदि की अभिव्यक्ति जहाँ रचना को प्रभावशाली बनाती है, वहीं अर्थपूर्ण भी । दलित साहित्य के प्रतीक पारंपरिक प्रतीकों से भिन्न, मौलिक और नए हैं । दलित साहित्य में प्रयुक्त प्रतीकों के संदर्भ में ओमप्रकाश वाल्मीकि का कहना है "दलित कवि का स्वर कटु है, क्योंकि उसने समाज के प्रपंच को हजारों सालों से अपनी त्वचा पर सहा है । उसकी तल्खी प्रतीकों में महसूस की जा सकती है। मुक्ति-संघर्ष की छटपटाहट दलित कविता को ध्वनित करती है। दलित कवि का 'मैं' 'हम' की अभिव्यंजना बन जाता है । पारस्परिक प्रतीकों के स्थान पर दलित कवियों ने मौलिक और नए प्रतीक ईजाद किए हैं ।"[6] दलित समाज की पीड़ा, बेबसी, दुःख और शोषण का यथार्थ चित्रण करने के लिए दलित कवि प्रतीकों का प्रयोग करता है । वाल्मीकि की कविता 'पेड़' का उदाहरण निम्नांकित है –

" पेड़ ,

तुम उसी वक्त तक पेड़ हो

जब तक ये पत्ते

तुम्हारे साथ हैं

[6] दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं.-85

पत्ते झरते ही

पेड़ नहीं ठूंठ कहलाओगे

जीते जी मर जाओगे ।"[7]

यहाँ कवि पेड़ को शोषण का प्रतीक के रूप में दिखाया है । यहाँ पेड़ एक साधारण पेड़ नहीं बल्कि शोषण और उत्पीड़न का प्रतीक है । कवि ने दलितों को भेड़िये, जंगली सूअर, कुत्ते के प्रतीक के रूप में दर्शाया है । शंबूक और एकलव्य को दलित अस्मिता के प्रतीक के रूप में दर्शाया है। कवि ने अपने प्रतीक स्वयं गढ़ा है और अपनी कविता में स्थान दिया है।

5.1.4 बिंव विधान

बिंव मानस में उत्पन्न एक प्रतिमा है । बिंव के माध्यम से यथार्थ की प्रतिकृति भावों को बखूवी व्यक्त करने के लिए उकेरा जाता है । दलित साहित्य में प्रयुक्त बिम्ब और प्रतीक पारंपरिक बिम्ब और प्रतीक से मौलिक और नए हैं । दलित कविता में बिंबों के माध्यम से दलित जीवन की त्रासदी और इसके यथार्थ को व्यक्त किया गया है । वाल्मीकि दलित कविता में प्रयुक्त बिम्ब के संदर्भ में लिखतें हैं "दलित कविता में बिम्ब दलित जीवन की त्रासदी और उसके यथार्थ को व्यक्त करते हैं । दलित कविता में अंधेरा, आसपास के परिवेश में गंदगी की सड़ांध, सीलन भरे तंग मकानों में सिसकती जिंदगी दलित जीवन का यथार्थ हैं , जो उनके जीवन का अविभाज्य घटक बन गए हैं । उन

[7] बस्स! बहुत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं.-11

वस्तुओं को दृश्य बिम्ब के स्थान पर रख कर दलित कवि इन्हीं बस्तुओं में अपने जीवन का प्रतिबिंब ढूँढता है।"[8] वाल्मीकि ने दलितों के घरों के लिए निम्नलिखित बिम्ब दिये हैं

"मिट्टी के कच्चे घर
बिना रोशनदान
बरसों करते हैं इंतजार
सूर्य की भूली-भटकी किरण का
या फिर ढह जाते हैं चुपचाप
किसी बरसाती रात में।"[9]

वाल्मीकि ने अपनी कविताओं में झाड़ू, धूल, सूर्य, रोशनी, प्रकाश, रात- दिन, ज्वालामुखी, समुद्र, तूफान आदि कई बिंबों का प्रयोग करते हुए दिखाई देते हैं।

5.1.5 मिथक का प्रयोग

हिन्दी कविता में मिथकों का प्रयोग प्राचीन काल से चला आ रहा है। दलित कविता में भी मिथकों का भरपूर प्रयोग किया गया है। पर दलित कवियों ने अपनी कविता के लिए नए मिथक गढ़े हैं। इन्होंने ऐतिहासिक मिथकों की पुनर्व्याख्या करते हुए पौराणिक मिथकों की परिभाषा ही बदल दी है। वाल्मीकि के शब्दों में "दलित कविता ने

---

[8] दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं.-85
[9] बस्स! बहुत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं.-22

पारंपारिक प्रचलित मिथकों को अपनी कविता में नायकों की तरह नहीं बल्कि उत्पीड़कों, शोषकों की तरह प्रयोग किया है । उनके दलित विरोधी आदर्शों ने ऐतिहासिक संदर्भों में सिर्फ छला है । भारतीय साहित्य में चाहे वह हिन्दी साहित्य हो या संस्कृत साहित्य वहाँ शूद्र, अतिशूद्र, अंत्यज, अस्पृश्य आदि के लिए नकारात्मक सोच भी दिखायी देती है । इसका कारण यह है कि साहित्य में जो नायक स्थापित किए गए, वे सभी दलित विरोधी थे । वे नायक भी जिन्हें ईश्वरत्व प्राप्त था ।”[10]

वाल्मीकि ने राम को आदर्श पुरुषोत्तम के रूप में नहीं बल्कि एक निरंकुश और महत्वकांक्षी राजा के रूप में चित्रित किया है । कवि मानते हैं कि राम ने न केवल शंबूक की हत्या की थी बल्कि पूरे दलित समाज की चेतना की हत्या की थी । कवि के लिए शंबूक की हत्या एक सोची-समझी साजिश थी। कवि लिखते हैं –

“वह दिन कब आयेगा

जब बामनी नहीं जनेगी बामन

चमारी नहीं जनेगी चमार

भंगिन भी नहीं जनेगी भंगी

तब नहीं चुभेंगे जातीय दंश ।

नहीं मारा जाएगा तपस्वी शंबूक

नहीं कटेगा अंगूठा एकलव्य का

[10] सदियों का संताप, ओमप्रकाश वाल्मीकि, भूमिका

कर्ण होगा नायक

राम सत्ता लोलुप हत्यारा

क्या ऐसे दिन कभी आएंगे ।"[11]

वाल्मीकि पारंपारिक मिथकों से अलग अपना मिथक गढ़ते हैं । इन्होंने इतिहास और पुराण के उन उपेक्षित चरित्रों को मिथक के रूप में चित्रित किया है । कर्ण, एकलव्य, शंबूक इनकी कविताओं में नायक की भूमिका में प्रतिष्ठित हुए हैं ।

5.1.6 मुहावरों का प्रयोग

अपने साधारण अर्थ को छोड़कर किसी विशेष अर्थ को व्यक्त करने वाले वाक्यांशों को मुहावरा कहा जाता है । वाल्मीकि की कविताओं में मुहावरों का सुंदर प्रयोग हुआ है । उनकी भाषा में मुहावरों का प्रयोग यत्र-तत्र दिखाई देता है । कुछ उदाहरण इस प्रकार है- पसीने पर लिखना, बाजीगर के जमुरे, सिर के बल खड़े होकर, काले नाग फन फैलाए, मुंह चिढ़ाना, रूह कांपना, हवा हो जाना, कुएं में मेंढक, आँखों के सामने अंधेरा छाना आदि।

5.1.7 वर्णनात्मक शैली

किसी घटना, दृश्य और पात्र का सरल वर्णन या विवरण प्रस्तुत करना ही वर्णनात्मक शैली है । अपनी कविताओं में वाल्मीकि कई जगह पर इसका सहारा लेते हैं । जैसे-

[11] बस्स! बहुत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं. -102

"ऐसी बादल न देखि ,न सुनी कभी

बरसते रहे बादल , रात–दिन

उफनती रही नदियां

धसकते रहे पहाड़

टूट गयी सड़कें

टपकी छत

गल्ली-मुहल्ले में बस पानी ही पानी ।"[12]

5.1.8 आत्मकथात्मक शैली

इस शैली में वाक्य रचना उत्तम पुरुष में की जाती है । इसका दूसरा नाम उत्तम पुरुष शैली भी है । कवि जब अपने भाव, विचारों को प्रस्तुत करता है तब आत्मकथात्मक शैली का आधार लेता है । वाल्मीकि ने इस शैली का प्रयोग अपनी कविताओं में भरपूर किया है । जैसे –

"मैंने दुःख झेले

सहे कष्ट पीढ़ी-दर–पीढ़ी इतने

फिर भी देख नहीं पाए तुम

मेरे उत्पीड़न को

[12] शब्द झूठ नहीं बोलते, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं.-78

इसलिये युग समूचा

लगता है पाखंडी मुझको ।"[13]

5.1.9 प्रश्नार्थक शैली

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस शैली का प्रयोग कर अपने काव्य में सजीवता लायी है । वाल्मीकि अपनी कविता में पाठकों से, व्यवस्था से, सवर्ण समाज से प्रश्न पूछते हैं । वे लिखते हैं कि-

"यदि तुम्हें, सरेआम बेइज्जत किया जाये

छीन ली जाए संपत्ति तुम्हारी

धर्म के नाम पर

कहा जाये बनने को देवदासी

तुम्हारी स्त्रियों को

कराई जाये उनसे वेश्यावृति

तब तुम क्या करोगे ?"[14]

वाल्मीकि की 'तब तुम क्या करोगे' शीर्षक की पूरी कविता प्रश्नात्मक शैली में लिखी गई है ।

---

[13] सदियों का संताप, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. सं.- 24

[14] वही, पृ. सं. 51

5.2 बासुदेव सुनानी की काव्य भाषा एवं शिल्प विधान

बासुदेव सुनानी की कविताओं की भाषा परंपरागत साहित्यिक भाषा से बिल्कुल भिन्न है । इन्होंने जिस समाज को, जिस व्यक्ति को अपने साहित्य का विषय बनाया है वह समाज सदियों से उपेक्षित रहा है । अतः इसी उपेक्षित समाज की, उपेक्षित मनुष्य की बोलचाल की भाषा ही सुनानी की कविता की भाषा है । सुनानी ने अपनी कविता में दलित समाज को, दलित मनुष्य को अधिक महत्व दिया है । उन्होंने दलित समाज की पीड़ा, घृणा, तिरस्कार का खुलकर चित्रण करके समाज के सामने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । उनके भोगे हुए यथार्थ एवं दर्द को, पीड़ा को, उनकी वाणी को उन्हीं के शब्दों में व्यक्त किया है । इनकी कविता में चित्रित पात्र अशिक्षित, मजदूर एवं दबे हुए वर्ग के प्रतिनिधि होने के कारण इनकी भाषा में औपचारिकता कम दिखाई देती है । अतः सुनानी की कविता में संस्कृतनिष्ठ भाषा के बदले सामान्य बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया गया है । सुनानी ने अपने परिवेश तथा अपने समाज से ली गयी कथा-वस्तु एवं पात्रों के अनुसार ही भाषा का प्रयोग किया है । अतः उनकी कविता में भाषा का एक अलग रूप मिलता है । यह भी कहा जा सकता है कि सुनानी की कविता की भाषा पात्रानुकूल, विषयानुकूल, भावानुकूल तथा प्रभावपूर्ण है ।

लेखक जिस परिवेश में, जिस जाति विशेष में जन्म लेता है, वहाँ की बोली अथवा भाषा को सहजता से ग्रहण करता है । बासुदेव सुनानी स्वयं दलित जाति से संबन्धित हैं। इसलिए जातिगत भेदभाव का शिकार वे खुद हुए हैं । तथाकथित निम्न जाति के होने के कारण पीड़ा और तिरस्कार को झेला है । इसलिए उनकी भाषा में नकार और विरोध का स्वर मुखर रूप से उभरता है । अपनी रचनाओं में कहीं-कहीं वे गाली-गलौज एवं अश्लील

भाषा का भी प्रयोग करते हैं । डॉ.एन.सिंह के शब्दों में "जब किसी वर्ग विशेष से कोई रचनात्मक व्यक्ति साहित्य में प्रवेश करता है, तो वह अकेला ही प्रवेश नहीं करता, बल्कि उसके साथ उसका पूरा परिवेश, संस्कार और समाज साहित्य में प्रवेश करता है । इसलिए जब दलित साहित्यकारों ने हिन्दी साहित्य में प्रवेश किया, उनके साथ दलित बस्तियों की सारी सड़ाँध और गालियों ने भी साहित्य में प्रवेश किया ।"[15] जाति व्यवस्था के कारण समाज में घृणा, ऊँच-नीच, तिरस्कार एवं असभ्य भाषा का विस्तार हुआ है । हमारे समाज में तथाकथित शिष्ट कहेजानेवाले लोग सदियों से दलितों को असभ्य एवं अशिष्ट भाषा में गालियाँ देते आ रहे हैं । दलित समाज के लोगों ने इस अपमानपरक भाषा को सहन किया है । आज दलित लेखकों के स्वर कटु हैं, क्योंकि उन्होंने सवर्णों की नफरत को देखा व झेला है । इसलिए बासुदेव सुनानी की कविता में कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है जो साहित्य के लिए अश्लील और वर्जित रहे हैं ।

सुनानी ने अपनी अभिव्यक्ति सीधे, सपाट शब्दों में की है । उनकी मान्यता है दलित साहित्य यथार्थ पर आधारित है । इसीलिए उनकी रचनाओं में दलितों के यथार्थ को, उनकी अनुभूतिगत सच्चाई को प्रस्तुत करनेवाली भाषा व शिल्प दिखाई देता है । सुनानी ने भाषा के माध्यम से अपने समाज की वास्तविक सच्चाई को दुनिया के सामने लाने का कार्य किया है । अपने जीवन में आए शब्दों को ज्यों का त्यों प्रस्तुत करना ही उनकी भाषा को विशिष्ट बनाता है ।

[15] दलित साहित्य के प्रतिमान, डॉ. एन. सिंह, पृ. सं.-263

बासुदेव सुनानी की भाषा एवं शैलीगत विशेषताओं को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर दर्शाया जा सकता है।

5.2.1 सामान्य बोलचाल की भाषा

ओमप्रकाश वाल्मीकि की तरह बासुदेव सुनानी की भी काव्य भाषा की प्रमुख विशेषता सहजपन है। सुनानी की कविता में परिवेश के अनुसार भाषा का प्रयोग हुआ है। इनके कथ्य दलित जीवन से संबन्धित होने के कारण दलितों की अपनी बोली और भाषा का आना स्वाभाविक है। जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति के लिए अपनी ही बोलचाल की भाषा का प्रयोग ही इनको समीचीन लगता है।सुनानी खुद दलित होने के कारण दलितों की पीड़ा, दुःख और समस्याओं को करीब से देखा है। इसी यथार्थ को वे अपनी कविता में व्यक्त करते हैं। पाठक भी उनकी इस पीड़ा से अनायास ही जुड़ जाता है। इसका मुख्य कारण है उनकी भाषा। सुनानी बिल्कुल सीधे शब्दों में सहजता के साथ अपनी बात रखते हैं। जो भी बात करनी है वो सीधे सीधे करते हैं। उनकी भाषा में कहीं बनावटीपन नजर नहीं आता। बिना किसी अलंकारिता से सुनानी अपनी बात कहते हैं।

बासुदेव सुनानी ने भी अपनी कविता में प्रयोजन अनुसार संस्कृत, अंग्रेज़ी, अरबी, फारसी और देशज शब्दों का प्रयोग किया है। उनकी कविता में आए तत्सम शब्दों में - कृतज्ञ, सुज्ञजने,(ज्ञानीलोग) विद्वान, स्पर्श, मुहूर्त, श्लोक ,श्रीफल, कलंक, द्वार, प्रच्छन्न, अमृत, मोक्ष, निर्द्वंद, श्वान, छद्म आदि। सुनानी ने अंग्रेज़ी शब्दों का भरपूर प्रयोग किया है जैसे-कोट, सूट, पासपोर्ट, मॉर्निंग वॉक, कोचिंग सेंटर, एमर्जन्सि, लिपस्टिक, सिनेमा हॉल, बार्गेनिंग, पार्क, गेट, ग्लोबल वार्मिंग, हार्न आदि। अरबी, फारसी और हिन्दी

शब्दों में –सफ़ेद, हरकत, सुराग, नाता, बेबकूफ, गवार, कफिन आदि । देशज शब्द जैसे- सांगिया, चाटशाली, गोखद, आमसूरी, चकटा, धांगिरी आदि का प्रयोग किया है ।

5.2.2 विद्रोह तथा गाली-गलौज की भाषा

बासुदेव सुनानी जिस भावना को व्यक्त करना चाहते हैं वह ललित भाषा में संभव नहीं है, क्योंकि इनके जीवन का सत्य कड़वा, नंगा, कुरूप तथा तीखा है । जीवन की सच्चाई बयान करना इनका लक्ष्य है । वे कल्पना में नहीं जीते हैं । सवर्ण समाज ने सदियों से दलितों के लिए गंदी तथा अश्लील भाषा का प्रयोग किया है। इससे जिस प्रकार के अनुभव दलितों को हुए हैं । उसकी अभिव्यक्ति के लिए वैसी ही भाषा का प्रयोग सुनानी ने अपनी कविता में किया है । जिस ललित भाषा का प्रयोग सवर्णों ने उनके लिए नहीं किया है उसका प्रयोग वे कैसे कर सकते हैं । अतः जो गाली उनको मिली है उसी गाली के बदले वे दूसरा शब्द कैसे प्रयोग कर सकते हैं सुनानी अपनी रचनाओं में जीवन के कटु अनुभव, सत्य तथा वास्तविकता का यथार्थ चित्रण करते हैं । छोटी-छोटी गलतियों पर सवर्णों के मुँह से गालियाँ निकलती हैं दलितों के लिए। सवर्ण खुले-आम जिस अश्लील शब्द का प्रयोग करते हैं उसे सुनानी ने बिना किसी लाग-लपेट के सीधा-सीधा अपनी कविता में प्रस्तुत किया है ।जैसे-

" माँ, बहन

साला, बहनचोद गाली में

पूरा बस्ती भर उठता है

रात कंपनी के

सेक्युरिटी गार्ड की तरह जगता है ।"[16]

5.2.3 प्रतीक विधान

प्रतीक द्वारा किसी बात को संक्षेप में कहा जा सकता है । साहित्यकार अपनी बात को अगर प्रत्यक्ष प्रदर्शित नहीं करना चाहता तो उस बात के लिए समतुल्य शब्दों को खोजने लगता है । प्रत्यक्ष शब्दों के स्थान पर जिन शब्दों का प्रयोग किया जाता है, वही प्रतीक कहलाते हैं । कविता को प्रभावी बनाने के लिए प्रतीक का प्रयोग किया जाता है । सुनानी ने प्रतीकात्मक भाषा द्वारा भावों को स्पष्ट करने का प्रयास किया है । सुनानी की कविता 'पाद'(पैर) का एक उदाहरण निम्नांकित है-

"गेट के पास सोई हुई वो नारी

भारत माता का प्रतीक तो

जमीन पे गिरा हुआ उसका आँचल

तीन रंगों में फर-फराता ध्वज

देश का गर्व और महत्व

और जो बहती नाक वाला बच्चा

खींच रहा उसकी माँ का आँचल

वही तो है भारत प्रगति का अग्रदूत ।"[17]

---

[16] सायद प्रेम करना मुझे मालूम नहीं, बासुदेव सुनानी, पृ. सं. 74

[17] वही, पृ. सं.-86

यहाँ कवि ने एक अबला नारी को भारत का प्रतीक, उसके आँचल को तिरंगा ध्वज का प्रतीक और उसके बच्चे को भारत के भविष्य के रूप में चित्रित किया है ।

5.2.4 बिम्ब विधान

सुनानी की कविता में हमें विविध बिम्बों का प्रयोग दिखाई देता है । उनकी कविता में बिम्ब उस बहिष्कृत, तिरष्कृत, पीड़ित ,दलित, उपेक्षित मनुष्य को केंद्र में रखता है । जैसे उनका अपना सामाजिक जीवन है वैसे ही बिम्ब वे गढ़ते हैं । उनकी कविता के बारे में प्रकाशक सृजन का कहना है कि “कवि बासुदेव सुनानी एक निखुण कवि है । शब्दाडंबर, बिम्ब, चित्र, प्रतीक के भीड़ में उनकी काव्य वस्तु को ढूंढ़ा नहीं जा सकता। वे जैसे भोगते हैं वैसे ही लिखते हैं, वैसे ही बयान करते हैं । बासुदेव की हर कविता हमारे सामाजिक विमर्श का एक बलिष्ठ उपादान है ।[18]” सुनानी की कविताओं में दलितों की जिंदगी का भयावह रूप दिखाई देता है । वे जहां रहते हैं, उनका परिवेश गंदगी पूर्ण है । दलितों का काम भी गंदगी ढोने वाला है । इसलिए उनकी कविता में बिम्ब के रूप में झाड़ू, कनस्तर, गोशाला, सूअर, गोबर आदि का चित्रण हुआ है । दलितों के घरों के लिए सुनानी निम्नलिखित बिम्ब का प्रयोग किया है ।

“ घर में घुसने से

सिर लगेगा,

बाबू जरा झुक कर चलो

[18] सायद प्रेम करना मुझे मालूम नहीं, बासुदेव सुनानी, मुख पृष्ठ

एक जीता-जागता डर

हमारा घर

हाँ, विश्वास कीजिये

होने के कारण गाँव का चौकीदार

दलित वस्ती में सबसे बड़ा हमारा ही घर

पर छोटा द्वार

वस्ती का बाकी सबका

सूअर शाला जैसा घर।”[19]

5.2.5 मिथक का प्रयोग

जैसे की पहले बताया गया है कि दलित साहित्य में धर्म, दर्शन, पौराणिक मिथकों की पुनर्व्याख्या की गई है । वैसे ही सुनानी ने भी पुराने मिथकों को नए ढंग से परिभाषित किया है । ओडिशा में लोग जहां प्रभु जगन्नाथ को बड़े देवता मानते हैं, दुःख हरण कर्ता मानते हैं वहीं सुनानी उन्हें शोषण कर्ता मानते हैं । सुनानी जगन्नाथ को बड़े देवता नहीं मानते बल्कि वर्ण वर्चस्ववादी देवता मानते हैं ।एक दिन जगन्नाथ की पत्नी लक्ष्मी पूजा पाने के लिए किसी दलित के घर में चली गयी थी जिसके कारण जगन्नाथ उन्हें घर से निकाल दिये थे । इस पर सुनानी लखते हैं –

“ये वही जगन्नाथ है

[19] सायद प्रेम करना मुझे मालूम नहीं, बासुदेव सुनानी, पृ. सं.-27

जो लक्ष्मी को बाहर निकाल दिये थे

अनजाने में रख दी थी

चांडाल(एक नीच जाति) के घर पैर ।”[20]

5.2.6 वर्णनात्मक शैली

सुनानी ने वर्णनात्मक शैली पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया है । परिवेश, वेश-भूषा, व्यक्ति, मानसिक दशा, आदि के लंबे-लंबे वर्णन उनकी कविता में पाए जाते हैं। जिससे उनके वर्णन दृश्यात्मक बन गए हैं । सुनानी ने अपनी कविताओं में दलितों की सामाजिक, आर्थिक स्थिति को अधिक महत्व दिया है । अतः उनकी कृतियों में दलितों की सामाजिक, आर्थिक स्थितियों का वर्णन सहज और स्वाभाविक रूप से हुआ है ।

5.2.7 आत्मकथात्मक शैली

आत्मकथात्मक शैली में कविता की रचना ‘मैं’ को केंद्र में रखकर की जाती है । लेखक अपने अन्तर्मन का लेखा-जोखा इस शैली के द्वारा प्रस्तुत करता है एवं समाज सापेक्ष समस्याओं को स्वयं से जोड़कर देखता है । सुनानी ने भी इस शैली को अपनाया है। एक उदाहरण निम्नांकित है –

“मैं जहाँ था,अभी भी वहीं हूँ

मेरा अभाव

[20] अस्पृश्य, बासुदेव सुनानी, पृ. सं.-30

मेरा गरीबपन

मेरी कुटिया घर

मेरी रोज की मेहनत

मेरी भक्ति

मेरे जीने का सलीका

सब के सब ,अक्षत अबस्था में है

जो दिन वो दिन बदल रहा है

वह हो तुम।”[21]

5.2.8 प्रश्नार्थक शैली

सुनानी ने अपनी कविता में कई जगह इस शैली का प्रयोग किया है । कभी वे अपने आप से प्रश्न करते हैं तो कभी व्यवस्था से, कभी ईश्वर से तो कभी सवर्ण समाज से । एक उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य है –

“अमृत कहाँ मिलता है?

सिनेमा हॉल के सामने

धीमी-धीमी रोशनी में चना बेचती

सांवली रंग की स्त्री के पास

[21] अस्पृश्य, बासुदेव सुनानी, पृ. सं.-52

या सारा मांस शेष होने पर

पैर, पूंछ, कलेजा को अच्छे से काटकर

सस्ते में बेचती हुई मांस बिक्रेता के पास

अमृत कैसा लगता है ?"[22]

5.3 निष्कर्ष

ओमप्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी की कविताओं का शिल्पगत अध्ययन करने के पश्चात यह कह सकते हैं कि दोनों ने अपने काव्य में शैली के माध्यम से दलित कविता में नया मोड़ लाया है । शिल्प एवं अभिव्यंजना की दृष्टि से दोनों की कविता अपनी अलग पहचान लेकर उभरती है । वे अपनी भाषा और शैली के माध्यम से अपनी कविता को अर्थवत्ता तो देते ही हैं साथ ही पाठक को कई प्रकार की अनुभूतिओं से मुग्ध करते हैं । वाल्मीकि और सुनानी अपनी अनुभूतियों को कविता की भाषा बनाते हैं । सीधी-सरल भाषा में बात करते हैं । इनकी भाषा जितनी सहज प्रतीत होती है, असल में वह उतनी ही तेज है । समाज में दलितों के साथ हो रहे भयावह अमानुषिकता की वजह से वाल्मीकि और सुनानी की भाषा में विद्रोह का स्वर दिखाई देता है । इस प्रकार ओमप्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी ने अपनी कविता में एक विशेष प्रकार की भाषा शैली का प्रयोग करके साहित्य जगत में अपने लिए एक विशिष्ट स्थान बना लिये हैं।

[22] अस्पृश्य, बासुदेव सुनानी, पृ. सं.-10

उपसंहार

महात्मा ज्योतिबा फुले और डॉ.अंबेडकर के प्रभाव से दलित चेतना की व्यापक लहर महाराष्ट्र के दलितों में उठी। इसलिए दलित साहित्य की रचना मराठी भाषा में सबसे पहले हुई। धीरे-धीरे मराठी दलित साहित्य का प्रभाव अन्य भारतीय भाषाओं पर भी पड़ने लगा। जिसकी अनुगूँज साठ और सत्तर के दशक में हिन्दी साहित्य में भी सुनाई देती है। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में दलित साहित्य को अपनी एक अलग पहचान मिली। हिन्दी दलित साहित्य के अनेक लेखकों ने दलित साहित्य को न केवल समृद्ध किया, बल्कि मजबूत भी किया।

दलित साहित्य के प्रांरभिक दौर में ज्यादात्तर कविताएँ ही लिखी गई। हिन्दी और उड़िया दोनों भाषाओं की परंपरागत कविता शास्त्रीय विधानों के आलोक में लिखी गई। इस युग के कवियों ने धर्म का आश्रय लेकर दलितों की पीड़ा को बड़े सिद्दत के साथ उठाया। मूलरूप से दलित रचनाकारों ने शास्त्रीय बंधनों से मुक्त साहित्य का सृजन किया। दलित साहित्यकारों ने संस्कृति और समाज से संघर्ष करते हुए अपने अधिकारों के लिए साहित्य के माध्यम से संघर्ष किया।

भारतीय समाज व्यवस्था में दलितों का स्थान अत्यंत निम्न स्तर का रहा है। दलित कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से दलित समाज के यथार्थ को प्रस्तुत किया है। दलित साहित्य को लेकर काफी वाद-विवाद है। दलित साहित्यकारों ने यही माना है कि दलित व्यक्ति के द्वारा रचा गया साहित्य ही दलित साहित्य है क्योंकि वह भुक्तभोगी होता है। अतः वह अपनी रचनाओं में दलितों की पीड़ा, व्यथा, आक्रोश को यथार्थता के साथ प्रस्तुत कर सकता है। जबकि गैर दलित साहित्यकार द्वारा वर्णित पीड़ा भुक्तभोगी की नहीं होती वह केवल अनुभूति का अंकन करती है। उनकी रचनाओं में दलित चेतना

का नितांत अभाव है। उनकी लेखनी में दलित वर्ग की यातना और दुर्दशा का चित्रण तो हुआ है किन्तु उनकी चेतना को विकसित करने का प्रयास बहुत कम ही हुआ है। उन्होंने सिर्फ दलितों के प्रति दयाभाव और सहानुभूति प्रकट की है। दयाभाव एवं यथार्थ में अंतर होता है। इस तरह हिन्दी साहित्य के केंद्र में दलित समाज का कोई स्थान नहीं दिखाई पड़ता। इस कमी को पूरा करने के लिए दलित लेखक आगे आए। दलित साहित्यकारों ने स्वयं उनके जीवन को कविता में पूरी प्रामाणिकता के साथ पेश किया और दलित विमर्श को साहित्य की मुख्य धारा में शामिल किया।

सहानुभूति ही सही मगर सवर्ण रचनाकारों ने दलितों के प्रश्नों को अपनी शक्ति एवं सीमा में उठाया है। दलितों की करूणामयी कहानी को अनदेखा नहीं किया बल्कि उसे अपनी कविता का केन्द्र बिंदु बनाया उसकी अभिव्यक्ति की।

दलित कविता उन बेसहारा लोगों की आवाज है जो सदियों से धर्म आदि के भय से ग्रसित थे। उसका विरोध दलित कविता में दिखाई पड़ता है। दलित साहित्यकार अनेक संघर्ष से लड़ते-भिड़ते बेहतर साहित्य सृजन करने में जुटे हुए हैं जो भविष्य में दलित साहित्य को समृद्धि के पथ पर ले जाने में सहायक होगा।

उड़िया दलित कविता पर दृष्टिपात करते हुए हम कह सकते हैं कि 50 वर्ष बाद भी उड़िया दलित कविता की धारा में वह प्रवाह नहीं आ पाया जिसकी अपेक्षा की जाती है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि दलित साहित्य की चेतना सुप्त हो गयी, मगर चिंतन का सीमित दायरा और प्रतिक्रियावादी दृष्टि का परित्याग करके साहित्य की यह धारा कम समय में विकसित हो कर साहित्य के क्षितिज पर विराजमान हो सकती है। आज दलित साहित्य उड़िया साहित्य की विभिन्न धाराओं में आगे की तरफ बढ़ रहा। जिसमें चिंतन की अनंत गहराईयाँ दिखाई पड़ रही हैं, जो एक शुभ संकेत माना जा सकता है।

हिन्दी कविता के पिछले कुछ सालों में अनेक परिवर्तन परिलक्षित हुए हैं। यह परिवर्तन विचारगत और तथ्यगत दोनों ही हैं। अनेक नए आन्दोलन और नयी विचारधारायें कविता की दुनिया में सम्मिलित हुई हैं । इन्हीं में दलित संबंधी विमर्श भी नए संदर्भ के साथ सामने आता है। अनेक दलित साहित्यकारों ने दलित जीवन के विभिन्न पहलुओं को चित्रित किया है। हिन्दी दलित कविता की इस विकास यात्रा में ओमप्रकाश वाल्मीकि का स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। दलित साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान बना चुके वाल्मीकि जी ने दलित जीवन की विविध समस्याओं को उद्घाटित करते हुए दलित की बदलती मानसिकता का चित्रण किया है। वे एक संवेदनशील रचनाकार हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने भोगी हुई ज़िंदगी का सही रूप अपनी कविता में पेश किया है। दलित जीवन की अभिव्यक्ति ही उनकी कविता का मुख्य उद्देश्य बन गया है। उनकी कविता में दलितों का जीवन संघर्ष, उनके शोषण के विविध रूप का वर्णन है तो उनके सुख-दुःख के क्षण का भी चित्रण है। इस तरह से देखें तो ओमप्रकाश वाल्मीकि के बिना हिन्दी दलित साहित्य की चर्चा पूरी नहीं होती। वे हिन्दी दलित साहित्य के एक नायक हैं जिनके कंधों पर दलित साहित्य की नीव खड़ी है। वाल्मीकि जी ने दलित साहित्य के कवि रूप में ही नहीं बल्कि कहानी, आलोचना के क्षेत्र में भी अपनी समर्थ पहचान बनाई है। उन्होंने दलित समाज के दुःख-दर्द, पीड़ा और आक्रोश को पहचाना है एवं उसे अपने साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है। उनकी कविताओं, कहानियों तथा वैचारिकी लेखों में दलित और दलित साहित्य की पक्षधरता विद्यमान है।

दलित परिवार में जन्मे बासुदेव सुनानी ने उड़िया दलित साहित्य को नई दिशा प्रदान की। आधुनिक काल में दलित साहित्य को जो ताक़त मिली, इस ताक़त के पीछे सुनानी के क्रांतिकारी विचारों का बहुत बड़ा योगदान है। सुनानी जैसे विचारकों के

कारण उड़िया दलित साहित्य आन्दोलन को बहुत फायदा हुआ। सुनानी ने अपने जीवन के विभिन्न पहलुओं को उनके साक्षात्कार, उनके साहित्य के माध्यम से उद्घाटित किया है। उन्होंने दलित होने के अभिशाप को स्वंय झेला । इतनी यातनाएँ, दलित होने के कारण जाति व्यवस्था के कीचड़ में फसे भारतीय समाज में झेलनी पड़ती हैं। ये यातनाएँ ही शब्द-बद्ध होकर साहित्य में प्रस्फुटित हुई हैं। सुनानी का साहित्य शोषण, दलित, वंचित जनसमुदाय का पक्षधर रहा है। वे सदैव साहित्य के प्रति समर्पित रहे।

अतः कहा जा सकता है कि दोनों मूर्धन्य लेखकों ओमप्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी ने जाति-व्यवस्था के दंश को झेला है। भारतीय समाज में व्याप्त दलित समाज का नारकीय जीवन, उससे उपजा विद्रोह, नकार की भावना दोनों ही रचनाकारों में दिखाई देती है। फूले, अंबेड़कर के जीवन दर्शन और वैचारिकता ने उनमें चेतना जागृत कर समाज के प्रति अपने उत्तर दायित्व से अवगत कराया। दोनों ही लेखकों ने अपने साहित्य के माध्यम से अपने सामाजिक उत्तर दायित्व को बखुबी निभाया है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी की कविताओं में दलितों के जीवन में व्याप्त विभिन्न समस्याएँ यथार्थ के साथ अभिव्यक्त हुई है। सामाजिक, आर्थिक दृष्टि से पीछड़े दलित वर्ग में व्याप्त विभिन्न समस्याओं को समाज के सामने लाने में दोनों रचनाकारों को अद्भूत सफलता मिली है।

वाल्मीकि एवं सुनानी दोनों की कविताओं की संवेदना दलित जीवन परक होने से उनके परिवेश चित्रण एवं समस्या निरूपण में अनेक प्रकार की साम्यता के दर्शन होते हैं। दोनों ने दलितों के सामाजिक परिवेश का चित्रण समान रूप से किया है जिसमें दलितों की सामाजिक स्थिति, अस्पृश्यता, शोषण, बेकारी, दलितों के लिए गांव में अलग पनघट, अलग स्मशान और गांव में अलग अशुभ दिशा में बस्ती, घृणित संबोधन, गाली-

गलौज आदि का समावेश होता है। गरीबी की समस्या का चित्रण भी दोनों कवियों ने अपनी-अपनी कविता में विशेष रूप से किया है। उसी तरह दलितों का धार्मिक परिवेश, राजनैतिक परिवेश, सांस्कृतिक परिवेश, दलित स्त्री जीवन की विभिन्न बिड़ंवनाओं आदि का भी दोनों ने समान रूप से चित्रित किया है।

हिन्दु धर्म व्यवस्था के द्वारा दलितों पर अनेक प्रतिबंध लगाये गए। जिससे उनके जीवन में अनेक समस्याएँ उत्पन्न हुई। अशिक्षा, भूख, गरीबी, शोषण, छुआछूत आदि समस्याओं ने दलितों को कभी सामाजिक स्तर पर उबरने नहीं दिया। भारतीय समाज में व्याप्त अंध विश्वास, रूढ़ी, परंपराएँ दलित के व्यक्तित्व को सामाजिक और आर्थिक स्तर पर कुंठित करके रखा। जिससे उसका राजनैतिक क्षेत्र में भी नगन्य स्थान रहा। इस जाति व्यवस्था ने दलितों को अमानवीय जीवन जीने के लिए विवश कर दिया। जाति व्यवस्था के कारण दलितों को अनेक मुश्किलों का सामना करना पड़ता है ।दलित समाज सदियों से आज तक शोषण का शिकार रहा है, और उनके शोषण का कोई एक रूप नहीं रहा है। अज्ञानी एवं आशिक्षित होने के कारण उन्हें अस्पृश्य मानकर उनका शोषण किया जाता रहा है। मनुवादियों के स्पृश्य-अस्पृश्यता की भावनाओं के कारण दलितों की सामाजिक स्थिति बदतर रही है। हमारे समाज की व्यवस्था ने शूद्रों को निचले पायदान पर रख दिया। सदियों से सवर्णों ने दलितों को गुलाम बना कर रखा । उनके सारे अधिकार छीन लिए गए। वर्ण व्यवस्था का आविष्कार एक स्वार्थी वर्ग ने अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए किया था जो कालांतर में दलितों के लिए एक अभिशाप बन गया। हमारे समाज में यह स्वार्थी शोषक वर्ग धर्म की चादर ओढ़कर दलितों को लूटता रहा है। भारत के दलित सामाजिक अन्याय के सबसे बड़े भुक्तभोगी है ।

प्राचीन काल से ही वर्णव्यवस्था ने दलितों को निर्धन बनाया। उनकी आर्थिक स्थिति कमजोर होने का मुख्य कारण है वर्चस्ववादी लोगों के द्वारा उनको सभी अधिकारों से वंचित रखना। सामाजिक व्यवस्था में उन्हें शिक्षा ग्रहण करना एवं धन संग्रह का अधिकार प्राप्त नहीं था। धार्मिक ग्रन्थों का हवाला देकर उनके ऊपर अनेक प्रतिबंध लगाए गए। इस तरह अज्ञानता एवं अशिक्षा के कारण वे हमेशा से सामाजिक शोषण के साथ-साथ आर्थिक शोषण का भी शिकार होते आ रहे हैं। यह शोषण की परंपरा प्राचीन काल में आरंभ हो कर समय के साथ-साथ अपना रूप बदलती हुई आज भी किसी-न किसी रूप में मौजूद है।

रूढ़िगत धार्मिक मान्यताओं ने भी दलितों को अनेक समस्याओं में फँसा दिया है। हिन्दू धर्म में दलितों के लिए कोई सम्मान नहीं है। एक तरफ तो हम कंप्यूटर युग में प्रवेश कर चुके हैं, पर दूसरी ओर पुराने मूल्य समाज से पूर्णतः समाप्त नहीं हुए हैं। आज हमारा समाज धार्मिक रीति-रिवाजों, संप्रदायों, जाति, धर्म, वर्ण आदि के भेदों के कारण पतनोन्मुख है। डॉ.अंबेडकर ने भारतीय संविधान को धर्मनिरपेक्ष रूप में बनाया ताकि धर्म या जाति का प्रभुत्व संविधान पर न रह सके। सभी में भाईचारा हो, लेकिन भारत में जातिप्रथा और धर्म का वर्चस्व कम नहीं हुआ है। आज भी जातीय दंगे, धार्मिक संघर्ष और कुटिल राजनीति निरंतर चलती है। जिनके पास धन है उनका वर्चस्व राजनीति में होता है। वे नेता बनते हैं, उनके अनुसार ही नियम बनते हैं। उन नियमों के सहारे शोषण किया जाता है। इस शोषण का ज़्यादातर शिकार दलित ही होते हैं। दलितों की समस्या सिर्फ सामाजिक, साँस्कृतिक या आर्थिक नहीं है बल्कि राजनीतिक भी है। समाज में उन्हें हर क्षेत्र की तरह राजनैतिक प्रक्रिया में भाग लेने का अवसर भी कम ही मिला है। लेकिन

जब आज वे शिक्षा के कारण राजनीति में आ रहे हैं तो भी जातिगत भेदभाव उनका पीछा नहीं छोड़ रहा है।

ओम प्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी ने अपनी रचनाओं में स्त्री पीड़ा को व्यक्त करने का प्रयास किया है। दोनों की कवितायें दलित स्त्रियों के जीवन में व्याप्त विभिन्न समस्याओं को उजागर करती हैं। भारतीय समाज में दलित नारी पर अनेक प्रकार के शोषण हो रहे हैं। भारत में स्त्रियों की स्थिति और उनमें दलित स्त्रियों की स्थिति बहुत ही भयावह है। दलित स्त्रियाँ दलितों में भी दलित हैं। दलित महिलाओं के शोषण के विविध रूप जैसे- छेड़-छाड़, अत्याचार, यौन शोषण आदि को लेकर दोनों ने दलित महिलाओं के पक्ष में कलम उठाई है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी का उद्देश्य केवल दलितों की समस्याओं एवं पीड़ाओं को बताना नहीं है बल्कि अपनी रचनाओं के माध्यम से वे दलित चेतना का भी चित्रण करते हैं। अतः यह कह सकते हैं कि वाल्मीकि और सुनानी ने जहाँ एक ओर दलितों की पीड़ा को वाणी दी है वहीं दूसरी ओर यह भी संकेत किया है कि दलितों को भी जीने का अधिकार है। वे भी मनुष्य हैं। वे भी अपने ऊपर हुए अन्याय, अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठा सकते हैं। शिक्षा के प्रसार ने आज दलितों को सचेत कर दिया है। जो सदियों से अन्याय, अत्याचार सहते आए हैं आज वही अपनी सहनशीलता की जंजीरों को तोड़कर अपने अधिकार के लिए संघर्ष कर रहे हैं। पिछले कुछ वर्षों में दलितों ने अपनी एक पहचान बनाई है। हजारों वर्षों से जातिगत भेदभाव से दबा दलित अपनी अस्मिता की खोज के लिए जागरूक हुआ है। आज शिक्षा के कारण दलित समाज में नयी चेतना आयी है। वे अपने अधिकार के बारे में सचेत हो गए हैं।

समग्रतः कहा जा सकता है कि वाल्मीकि और सुनानी की कविताओं में दलितों के संघर्ष के साथ-साथ नकार और विद्रोह का स्वर सुनाई देता है। दोनों की कविताएं

दलितों के मन में चेतना का संचार करती हैं । दलित साहित्य गौतम बुद्ध और डॉ.अंबेड़कर के विचारों से प्रेरित साहित्य है। डॉ. अंबेडकर ने ईश्वर के अस्तित्व पर प्रश्नचिन्ह लगा कर हिन्दु धर्म की ईश्वरीय मान्यता को नकारा था। जिसका प्रतिबिंब वाल्मीकि और सुनानी के साहित्य में बराबरी से दिखाई देता है। दोनों के काव्य में समाज में व्याप्त सड़ी-गली धार्मिक, सामाजिक मान्यताओं को नकार कर विज्ञानवादी सोच को अपनाते हुए घटनाओं एवं विचारों को तर्क की कसौटी पर कसकर परखते हैं। शोषण उत्पीड़न और जातिवाद के खिलाफ संघर्ष करते हैं । इनकी मूल चेतना विज्ञानवादी है। वाल्मीकि और सुनानी की रचनाओं में परंपरागत विचारधाराओं, मिथ्या परंपराओं को नकार कर मनुष्य को मनुष्य के रूप में स्थापित करने का प्रयास हुआ है। मनुष्य को पशु से भी हीन मानने वाले हिन्दु धर्म और संस्कृति के प्रति दोनों लेखकों के मन में विद्रोह की भावना है जो उनकी कविताओं में भलिभाँति प्रतिबिंबित हुई है। उनकी कविता के केन्द्र में मानवतावादी दृष्टि के दर्शन होते हैं। वे समस्त विश्व के मनुष्य को अपने साहित्य के केन्द्र में रखते हैं । वे समता, बंधुत्व और स्वतन्त्रता के पक्षधर हैं। अतः उनके साहित्य में दलित जीवन की विड़ंबनाओं के साथ-साथ विश्वमानवता के दर्शन भी होते हैं।

ओमप्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी की कविताओं का शिल्पगत अध्ययन करने के पश्चात यह कह सकते हैं कि दोनों ने अपने काव्य में शैली के माध्यम से दलित कविता में नया मोड़ लाया है। शिल्प एवं अभिव्यंजना की दृष्टि से दोनों कवियों की कविता अपनी अलग पहचान लेकर उभरती है। वे अपनी भाषा और शैली के माध्यम से अपनी कविता को अर्थवता तो देते ही हैं साथ ही पाठक को कई प्रकार की अनुभूतियों से मुग्ध करते हैं। वाल्मीकि और सुनानी अपनी अनुभूतियों को कविता की भाषा बनाते हैं। सीधी-सरल भाषा में बात करते हैं। इनकी भाषा जितनी सहज प्रतीत होती है, असल में वह उतनी ही तेज है। समाज में दलितों के साथ हो रहे भयावह अमानुषिकता की वजह

से वाल्मीकि और सुनानी की भाषा में विद्रोह का प्रखर स्वर दिखाई देता है । इस प्रकार ओमप्रकाश वाल्मीकि और बासुदेव सुनानी ने अपनी कविता में एक विशेष प्रकार की भाषा शैली का प्रयोग करके साहित्य जगत में अपने लिए एक विशिष्ट स्थान बना लिया है।

इस प्रकार वाल्मीकि और सुनानी दोनों क्रमशः हिन्दी और उड़िया के ऐसे प्रमुख रचनाकार है जो अपनी-अपनी भाषा साहित्य में कथ्य के नये आयाम के साथ प्रवेश करते हैं और दीन-दलितों की दुनिया से सीधा साक्षात्कार करते हैं। निसंदेह दोनों रचनाकारों ने दलित जीवन को समान शक्ति और समान तल्लीनता से उकेरा है। इस संदर्भ में दोनों अपने आप में अपूर्ण एवं अनन्य हैं। मेरे इस शोध-प्रबंध के द्वारा दोनों कवियों की कविता के कथ्य और शिल्प की तुलना करते हुए दलित साहित्य में इन दोनों कवियों के महत्व को समझने का प्रयास किया गया है ।

****

संदर्भ ग्रंथ-सूची

आधार ग्रंथ (हिन्दी)

1. अब और नहीं..., ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 2009
2. बस्स ! बहुत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1997
3. शब्द झूठ नहीं बोलते, ओमप्रकाश वाल्मीकि, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012
4. सदियों का संताप, ओमप्रकाश वाल्मीकि, गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली, संस्करण, 2012

आधार ग्रंथ (उड़िया)

1. अनेक किछि घटिबार अच्छि, संतोषप्रिंट्स, ब्रह्मपुर, प्रथम संस्करण, 1995
2. अस्पृश्य, उड़िशा दलित साहित्य और कला अकादमी, भूबनेश्वर, प्रथम संस्करण, 2001
3. करड़िहाट, इशान-अंकित प्रकाशन, नुआपड़ा, प्रथम संस्करण, 2005
4. कालिआ उवाच, साहित्य श्वेतपद्मा प्रकाशन, भूबनेश्वर, प्रथम संस्करण, 2011

5.च्छी, टाइमपास प्रकाशन, भूबनेश्वर, प्रथम संस्करण, 2008

6. बोधहुए भल पाइबा मोते जना नाहीं, सृजन प्रकाशन, भूबनेश्वर, प्रथम संस्करण, 2013

7. महुल बण, इशान-अंकित प्रकाशन, नुआपड़ा, प्रथम संस्करण, 1999

सहायक ग्रंथ (हिन्दी)

1. अंबेडकरवादी कहानीः रचना और दृष्टि, संपादक-तेज सिंह, लोकमित्र प्रकाशक, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010

2. आधुनिक साहित्य में दलित विमर्श, देवेंद्र चौबे, ओरियंटब्लैकस्वॉन, हैदराबाद, प्रथम संस्करण, 2009

3. आधुनिकता के आईने में दलित, अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2005

4. आजाद भारत में दलित, रूपचंद गौतम, श्री नटराज प्रकाशन, दिल्ली, 2009

5. ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में सामाजिक लोकतांत्रिक चेतना, संपादक-हरपाल सिंह ‘अरूष’,जवाहर पुस्तकालय, हिन्दी पुस्तक प्रकाशक एवं वितरक, मथुरा (उ.प्र.), प्रथम संस्करण, 2014

6. घुसपैठिये, ओमप्रकाश वाल्मीकि, रादाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 2003

7. जूठन, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण पेपरबैक्स प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1999

8. जूठन दूसरा खंड, ओमप्रकाश वाल्मीकि,राधाकृष्ण पेपरबैक्स प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 2015

9. डॉ. भीमराव अंबेडकरःव्यक्तित्व के कुछ पहलू, मोहन सिंह, लोक भारती प्रकाशन, 2014

10. दलित कविता का संघर्ष (हिन्दी दलित कविता के सौ वर्ष), कँवल भारती, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012

11. दलित का दर्द, डॉ. जगदीश चन्द्र सितारा, अन्नपूर्णा प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2015

12. दलित साहित्यः एक मूल्यांकन, प्रो. चमनलाल, राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, संस्करण, 2012

13. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2001

14. दलित साहित्य के प्रतिमान, एन्.सिंह, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012

15. दलित विमर्श की भूमिका, कँवल भारती, इतिहासबोध प्रकाशन, इलाहाबाद, मुनः मुद्रण 2007

16. दलित विमर्श के विविध आयाम, बीरेन्द्र सिंह् यादव, राधा पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2010

17. दलित चेतना सोच, रमणिका गुप्ता, नबलेखन प्रकाशन, हजारीबाग, बिहार, 1998

18. दलित साहित्यःअनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2020

19. दलित साहित्य का समाजशास्त्र, हरिनारायण ठाकुर, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2009

20. दलित हस्तक्षेप, रमणिका गुप्ता, शिल्पायन प्रकाशन, 2004

21. दलित उत्पीड़न की परंपरा और वर्तमान, मोहनदास नैमिशराय, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, संस्करण, 2006

22. दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर, विमल थोरात, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2008

23. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, शरण कुमार लिंबाले, वाणी प्रकाशन, 2014

24. दलित साहित्य दशा एवं दिशा, माता प्रसाद, भारतीय दलित साहित्य अकादमी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2003

25. दलित लेखन का अंतर्विरोध, डॉ. रामकली सर्राफ, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, 2009

26. दलित विमर्श और हिन्दी दलित काव्य, कालीचरण 'स्नेही', ज्ञान विज्ञान संस्थान, हापुड़, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2013

27. नवें दशक की हिन्दी दलित कविता, रजत रानी 'मीनू', दलित साहित्य प्रकाशन संस्था, दिल्ली, 1996

28. निराला साहित्य में दलित चेतना, विवेक निराला

29. बाबासाहेब डॉ.अंबेडकर संपूर्ण वांगमय, खंड-1, बी.आर अंबेडकर, डॉ.अंबेडकर प्रकाशन, नई दिल्ली, 7वां संस्करण, 2013

30. बाबासाहेब डॉ.अंबेडकर संपूर्ण वांगमय, खंड-7, बी.आर अंबेडकर, डॉ.अंबेडकर प्रकाशन, नई दिल्ली, 7वां संस्करण, 2013

31. भारत में पिछड़ा वर्ग आंदोलन और परिवर्तन का नया समाजशास्त्र, हरिनारायण ठाकुर, सल्पज पब्लिकेशन, दिल्ली, 2009

32. मुक्तिबोध की रचनावली खंड-2, गजानन माधव मुक्तिवोध, राजकमल प्रकाशन, 2007

33. मुख्यधारा और दलित साहित्य, ओमप्रकाश वाल्मीकि, सामयिक प्रकाशन, दूसरा संस्करण, 2010

34. सलाम, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 2000

35. सफाई देवता, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण पेपरबैक्स प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण, 2014

36. हिन्दी उपन्यास में दलित चेतना, डॉ.रामचन्द्र माली, विद्या प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2012

37. हिन्दी कथा साहित्यःअवधारणाएँ और विधाएँ, रजतरानी मीनू, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रूब्यूटर्स, 2010

38. हिन्दी दलित साहित्य, मोहनदास नैमिशराय, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2011

39. 21 वीं सदी के कथा साहित्य में दलित साहित्य, डॉ.सुनीता कावचे, रोली प्रकाशन, कानपुर, प्रथम संस्करण, 2015

सहायक ग्रंथ (उड़िया)

1. उड़िया साहित्य का इतिहास, डॉ.मायाधर मानसिंह, ग्रंथ मंदिर प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1967

2. उड़िया दलित साहित्य, बासुदेव सुनानी, इशान-अंकित प्रकाशनी, भूबनेश्वर, 2014

3. निश्पेषितर काव्य, डॉ. बासुदेव साहु, उड़िशा दलित साहित्य और कला एकादमी, भूवनेश्वर, 2000

4. पड़ापोड़ी, बासुदेव सुनानी,पक्षीघर प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2014

5. ब्राह्मणवाद और भारतीय नारी, बासुदेव सुनानी, इशान-अंकित प्रकाशनी, प्रथम संस्करण, 2014

6. दलित आन्दोलन और दलित साहित्य, डॉ.कृष्णचरण बेहेरा/रबिन्द्रनाथ साहु, उड़िशा गबेषणा परिषद संस्था, 2007

7. दलित संस्कृति का इतिहास, बासुदेव सुनानी, इशान-अंकित प्रकाशनी, नुआपड़ा, 2009

8. Ambedkarism: A way of life, Basudev Sunani, Eshan-Ankit Prakasani, 2014

9. Dalit Encounter (An analysis of Brhamanical Social System), Basudev Sunani, Mata Nashib Kaur Yaadgari Parkashan, 2009

पत्र-पत्रिकाएँ

1. अपेक्षा- तेज सिंह
2. कथादेश- हरिनारायण
3. बया- गौरीनाथ
4. बयान- मोहनदास नैमिशराय
5. दलित अस्मिता- विमल थोरात
6. दलित साहित्य- जय प्रकाश कर्दम
7. वर्तमान साहित्य- नमिता सिंह

8. युद्धरत आम आदमी- रमणिका गुप्ता

9. उत्कल दीपिका- गौरीशंकर रे

10. उत्कल दर्पण- मनोरंजन पटनायक

11. बालेश्वर संवाद बाहिका- गोविन्द चन्द्र पटनायक

12. उड़िया ओ नव संवाद- द्वारकानाथ दास

कोश

1. आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द- बच्चन सिंह- वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004

2. उड़िया-अंग्रेजी-हिन्दी शब्द कोश- संजय कुमार दाश- अजंता प्रकाशन, दिल्ली

3. हिन्दी शब्द कोश- हरदेव बाहरी- राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 2011

4. हिन्दी साहित्य कोश- लीलाधर शर्मा- राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1985

PEER Reviewed & Refereed **JOURNAL**

ISSUE-33 VOLUME-5 IMPACT FACTOR- IIJIF-8.712

ISSN-2454-6283 July-sept., 2023

AN INTERNATIONAL MULTI-DISCIPLINARY RESEARCH JOURNAL

(Cosmos– 2019-4.649) Scopus Impact Factor (1.25) Thomson Reuters Edwin Impact Factor-2.88 ETC

शोध-ऋतु

https://doie.org/10.0715/shodritu.2023472199

सम्पादक
डॉ. सुनील जाधव

तकनीकी सम्पादक
अनिल जाधव

पत्राचार हेतु कार्यालयीन पता -
डॉ.सुनील जाधव,
महाराणा प्रताप हाउसिंग सोसाइटी,
हनुमान गढ़ कमान के सामने,
नांदेड-४३१६०५, महाराष्ट्र

web:- www.shodhritu.com
Email - shodhrityu78@yahoo.com
WhatsApp 9405384672

शोध-ऋतु

Shodh-Rityu तिमाही शोध–पत्रिका

Open Transparent PEER Reviewed & Refereed JOURNAL

ISSUE-33 **VOLUME-5** ISSN-2454-6283 **July-Sept.,–2023**

IMPACT FACTOR - **(IIJIF-8.712)**

(COSMOS– 2019-4.649) Scopus Impact factor (1.25) Thomson Reuters Edwin Impact Factor-2.88

DOI Number -https://doie.org/10.0715/shodritu.2023472199

AN INTERNATIONAL MULTI-DISCIPLINARY RESEARCH JOURNAL

सम्पादक

डॉ.सुनील जाधव ,नांदेड

9405384672

तकनीकी सम्पादक

अनिल जाधव, मुंबई

पत्राचार हेतु पता–

महाराणा प्रताप हाउसिंग सोसाइटी, हनुमान गढ़ कमान के सामने, नांदेड–431605

अनुक्रमणिका

1.पद्मावत में स्त्री विद्रोह का स्वर और दास्ता का जीवन 6
–डॉ.रीता नामदेव 6
2.ब्रजभाषा काव्य में मुरली प्रसंग की आध्यात्मिकता 8
–डा.प्रतिभा राजहंस 8
03.साहित्य, इतिहास और संस्कृति का वर्तमान और भविष्य की पीढ़ी पर प्रभाव 11
–डॉ.वन्दना सक्सेना, ... 11
4.'अन्या से अनन्या': एक साहसिक संघर्ष का आत्मकथन 14
–प्रा.डॉ.योगिता दत्तात्रय घुमरे 14
5.चित्रकार परितोष सेन के चित्रों में यथार्थता 16
–डॉ0शालिनी धामा 16
6.उत्तर प्रदेश के औरैया जिले में जनसंख्या घनत्व के बदलते प्रतिरुप 18
–[1]प्रो0(डॉ0)प्रेम प्रकाश राजपूत, [2]प्रो0(डॉ0)पूनम मिश्रा 18
7.गुरू गोबिन्द सिंह कृत तैंतीस सवैयों में बाह्याडम्बरों का विरोध 20
–डॉ.कुलदीप कौर 20
8.उड़िया दलित कविता का उद्‌भव और विकास 23
–गौरांग चरण राउत 23
9.गांधीवादी विचारों में अपराध और दंड 26
– विकाश 26
10.समकालीन हिंदी कहानियों चित्रित वृद्ध समस्या 29
–डॉ. पांडुरंग व्ही. महालिंगे 29
11.नेपथ्य राग नाटक में चित्रित पितृसत्तात्मक समाज और उसमें स्त्रियों की स्थिति 32
–देवानंद यादव 32
12.आदिवासी चेतना : साहित्य, संस्कृति एवं अस्मिता का मूल्याकन 35
–शांति सुमन दीपांकर 35
13.लोकपरंपरेतुन प्रभोधनाची वाटचाल 37
–प्रा.डॉ.गणेश चंदनशिवे 37
14.महिला सशक्तिकरण में गांधीजी का योगदान 40
–दीपक कुमार 40
15.लोकतंत्र और अंतर्राष्ट्रीय शांतिः वैश्विक स्थिरता के लिए एक जटिल अंतर्क्रिया 43
–अभय प्रताप सिंह 43
16.शिशुओं में कुपोषण की समस्या 45
–एरम जमा 45

ISSN-2454-6283 PEER Reviewed JOURNAL

मार्ग को अपनाने पर बल दिया। उन्होंने आत्मउपलब्धि के लिए दान, दया, तप, संजम जैसे सदगुणों को आवश्यक माना क्योंकि इन्हें धारण करने से अहंम भाव का नाश होता है और विनम्रता का भाव उत्पन्न होता है। इस तरह जब व्यक्ति अपनी मैं को खत्म कर देता है तो उसे सृष्टि के कण–कण में सत्य स्वरूप एवं प्रकाशमान ज्योति के दर्शन होते है।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

(1)जोध सिंह, दशम गुरू ग्रंथ, पृ.18. (2)श्री गुरू ग्रंथ, पृ. 1412. (3)महीप सिंह, गुरू गोबिन्द सिंह और उनकी हिन्दी कविता, पृ. 223. (4) कृष्णावतार, श्री दशम गुरू ग्रंथ, छन्द संख्या 2491. (5)वही, छन्द संख्या 2492. (6)जयभगवान गोयल, गुरू गोबिन्द सिंहः विचार और चिंतन, पृ.14. (7) चौबीस अवतार, श्री दशम गुरू ग्रंथ, छन्द संख्या 3 (8)रामावतार, श्री दशम गुरू ग्रंथ, छन्द संख्या 863 (9)वही, 863 (10)प्रसिन्नी सहगल, गुरू गोबिन्द सिंह और उनका काव्य, पृ.325. (11)सवैये–श्री दशम गुरू ग्रंथ, छन्द संख्या 18. (12)वही, 30 (13)वही, 27 (14)वही, 19 (15)अकाल स्तुति, श्री दशम गुरु ग्रंथ, छन्द संख्या 29 (16)सवैये–श्री दशम गुरू ग्रंथ, छन्द संख्या 31 (17)वही, 29 (18) वही, 28 (19)वही, 21 (20)अकाल स्तुति, श्री दशम गुरू ग्रंथ, छन्द संख्या 30 (21)सवैये–श्री दशम गुरू ग्रंथ, छन्द संख्या 20 (22)वही, 22 (23)वही,26

8.उड़िया दलित कविता का उद्भव और विकास

–गौरांग चरण राउत
शोधार्थी (हिन्दी विभाग),
हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, हैदराबाद

उड़िया साहित्य में दलित कवियों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। दलित कवि जैसे– लुइपा, कण्हपा, शबरिपा, तंतिपा, डोम्बिपा आदि और बाद में सारला दास, बलराम दास, भीम भोई जैसे कवियों का बहुत बड़ा योगदान रहा है। उनकी कठोर साधना और साहितियक रचनाओं में उपलब्ध जाति–प्रथा का घोर विरोध के कारण उच्च जाति के साहित्यकार और आलोचकों ने उनको उपेक्षित दृष्टि से देखा हैं। उनको उड़िया साहित्य में उतना महत्व नहीं मिला, जितना सवर्ण साहित्यकारों को मिलता है। भीम भोई उड़िया साहित्य में पहले कवि माने जाते हैं, जिन्होंने जाति–प्रथा का खुल कर विरोध किया है। समाज से जाति–प्रथा को दूर करने के लिए अपनी कलम के द्वारा उन्होंने आन्दोलन किया।उड़िया साहित्य इतिहास में यह दर्शाया गया है कि "'चर्या गीतिका' के लेखक प्रथम पीढ़ी के कवि थे जिन्होंने पहली बार उड़िया भाषा में कविता लिखी। उन्होंने अपनी सारी कविताओं की रचना साधारण जनता की भाषा में की है। जबकि उनसे पहले सारी रचनाएँ संस्कृत में ही लिखी जाती थी। 'चर्या गीतिका' के कुछ कवि 'शूद्र' थे जैसे– लुइपा, ऐसा माना जाता है जो कि मच्छुवारा जाति के थे, डोम्बिपा– डोम जाति के थे, शबरिपा– शबर जनजाति के थे, तंतिपा– तंती जाति (जो कपड़ा बुनता है या सुई का काम करता है)के थे। इन सिद्धाचार्यों ने अनेक कविताएँ जनता की भाषा में लिखी हैं। उन्होंने संस्कृत भाषा को महत्व नहीं दिया बल्कि सरल उड़िया भाषा का प्रयोग अपनी कविताओं में किया है।"[1] इससे यह पता चलता है कि इन कवियों ने पहली बार ब्राह्मणवाद का विरोध किया होगा। बासुदेव सुनानी के शब्दों में– "डोम, चांडाल, शबर आदि जातियाँ अभी भी समाज में अस्पृश्य हैं। यह जाति ओड़िशा की प्राचीन जाति है। प्राचीन जाति होने के कारण हो सकता है सिद्धाचार्यों ने इनकी भाषा को साहित्य में व्यवहार किया होगा क्योंकि इन सिद्धाचार्यों में से कुछ सिद्ध उपरोक्त जाति में पैदा हुए थे। तत्कालीन समय में देव भाषा संस्कृत में कविताएँ न लिखना निश्चित रुप में ब्राह्मणवाद का विरोधी है। यह स्पष्ट मालूम होता है।"[2]

सिद्धाचार्यों के बाद 15 वीं सदी में शूद्र मुनि सारला दास आये जिनको उड़िया साहित्य में 'आदिकवि' कहा जाता है।

ISSN-2454-6283 PEER REVIEWED JOURNAL

सारला दास को उड़िया साहित्य इतिहास में प्रथम कवि माना जाता है। उन्होंने उड़िया भाषा में संरचनात्मक वाक्य रचना पद्धति की स्थापना की है, इसलिए उन्हें उड़िया साहित्य का जनक भी कहा जाता है। वह जाति से 'शूद्र' थे और कपिलेन्द्र देव के शासन काल में 'महाभारत' की रचना 'साधारण जनता' की भाषा में किया था। सारला दास अपनी तीन महत्वपूर्ण रचनाओं के लिए प्रसिद्ध थे। उन रचनाओं के नाम हैं– उड़िया महाभारत, विलंका रामायण एवं चंडीपुराण। उनके मन में जाति–प्रथा के विरूद्ध सशक्त सामाजिक बदलाव की भावना थी। उस समय समाज में ब्राह्मण साधारण जनता के द्वारा व्यवहृत भाषा को नज़र अंदाज़ करते थे। सारला दास ब्राह्मणों के व्यवहार, चरित्र और चालाकी को अच्छी तरह से जानते थे। जाति से शूद्र होने के नाते महाभारत की रचना उन्होंने बोलचाल की उड़िया भाषा में की ताकि साधारण जनता समझ सके।

सारला दास के बाद 'पंच सखा' (पांच सिद्ध कवि) का आगमन हुआ है। उन पंच सखाओं का नाम इस प्रकार है – बलराम दास, जगन्नाथ दास, अनन्त दास, यशवन्त दास और अच्यूतानन्द दास। इन्होंने 1450 से 1550 ई. सदी तक उड़िया साहित्य में आधिपत्य विस्तार किया। इन कवियों के बारे में बासुदेव सुनानी का कहना है "उड़िया साहित्य को सारे विश्व में श्रेष्ठ स्थान देने एवं एक स्वतंत्र मर्यादा के साथ–साथ परिचय बनाने में इन कवियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन कवियों को निकाल दिया जाए तो उड़िया साहित्य का शरीर पंगु हो जाएगा।"[3] वे कवि सारला दास से प्रभावित थे। इनके द्वारा रचित प्रमुख ग्रंथों का नाम इस प्रकार हैं–जगन्नाथ दास–उड़िया भागवत, बलराम दास–जगमोहन रामायण एवं लक्ष्मीपुराण, अच्यूतानंद दास–हरिवंश, यशवंत दास–प्रेम भक्ति ब्रह्मगीत, एवं अनंतदास हेतुदय भागवत आदि। वे सब बैष्णव थे और बौद्ध धर्म पर विश्वास रखते थे। वे पाँच सखाएँ साधारण कवि नहीं थे बल्कि समाज में परिवर्तन लाने वाले थे। उनके रचनाओं में जो वास्तविकता और सत्यता है, वह इस प्रकार है–उन्होंने मूर्ति पूजा का विरोध किया और निर्गुण ब्रह्म के प्रति विश्वास जगाया। उन्होंने अपने आपको भगवान के प्रति संपूर्ण रुप में समर्पित कर दिया। उन्होंने ब्राह्मणवाद और अंधविश्वास का घोर विरोध किया। उन्होंने जाति–प्रथा का भी खुल कर विरोध किया। शूद्रों के लिए मंदिर प्रवेश और वेद–पुराण पढ़ने का अधिकार मांगा है। वे अशिक्षित लोगों के पक्ष में थे। यानि कि समाज में कम पढ़े–लिखे लोगों को अपने साथ लेकर चलने की प्रवृत्ति उनमें थी। पर इन कवियों की रचना धार्मिक बन कर ही रह गयी। इनका साहित्यिक आन्दोलन ब्राह्मणवाद का विरोध नहीं कर सका बल्कि इन कवियों ने ब्राह्मणवाद के साथ समझौता कर लिया।

बलराम दास पाँच सखाओं में से एक थे। उन्होंने 'लक्ष्मीपुराण' और 'रामायण' की रचना की थी। बलराम दास ने उड़िया भाषा में प्रथम 'रामायण' लिखी है। उनका सपना यह था कि समाज में फैली जाति–प्रथा को खत्म किया जाए, शायद इसीलिए ब्राह्मण–पुरोहित जो कि धर्म के नाम पर व्यापार कर रहे थे, उन्होंने इसका कठोर विरोध किया है। पुरी की एक बासिन्दा होने के नाते, ब्राह्मणों का शोषण कार्य उन्होंने देखा है और जिसका वर्णन रामायण में मिलता है। ब्राह्मणों के द्वारा रामायण में जो धुर्तता दिखाई पड़ती है वो इस प्रकार है– "एक दिन राम, सीता और लक्ष्मण साथ में हिन्दू दर्शनीय स्थान 'गया' गये थे। जब तीनों 'पिंडदान' के बाद वापस आ रहे थे तब ब्राह्मणों ने उन्हें रोका और दान–दक्षिणा माँगा। प्रत्युत्तर में राम ने ब्राह्मणों से कहा हम संन्यासी है और हमारे पास देने को कुछ नहीं है। ब्राह्मण–पुरोहितों ने उनकी बातें नहीं मानी और उनके साथ पाँच कोस दूर तक चल पड़े। सीता की पहनी हुई गहनों पर ब्राह्मणों की नज़र पड़ी जिसे वे दक्षिणा के रूप में राम से मांगे। राम उनके प्रस्ताव से राजी नहीं हुए। ब्राह्मण दान को लेकर जिद पर आ गये और अंत में सीता के शरीर से गहने जबर्दस्ती खींचने लगे। इस प्रकार भयानक परिस्थिति से बचने के लिए राम के पास कोई उपाय नहीं था, इसीलिए उनके कहने पर लक्ष्मण ने सीता की पहनी हुई सारी के कुछ अंश काट दिया, जहाँ ब्राह्मणों ने पकड़ा था।"[4] अंत में ब्राह्मणों को कुछ नहीं मिला। इस तरह उस समय समाज में ब्राह्मण लोग साधारण जनता का शोषण करते थे।

'लक्ष्मीपुराण' एक अद्भुत काव्य रचना उड़िया साहित्य में है, जिसमें लेखक बलराम दास ने स्त्री सशक्तिकरण और समाज में जाति–प्रथा के बारे में उल्लेख किया है। यह कहानी तीन पात्र जगन्नाथ, बलभद्र और लक्ष्मी को लेकर बनी है। इसमें जगन्नाथ के बड़े भाई बलभद्र और पत्नी लक्ष्मी है। 'लक्ष्मीपुराण' का गद्य में अनुवाद जगन्नाथ प्रसाद दास ने किया है। 'लक्ष्मीपुराण' की कहानी इस प्रकार है– "जगन्नाथ और उनके बड़े भाई बलभद्र जंगल में शिकार करते समय, बलभद्र ने जगन्नाथ से कहा तुम्हारी स्त्री लक्ष्मी हमेशा चंडाल और दलितों के घर में जाती है। बिना स्नान किए मंदिरों में प्रवेश करती है, यह ब्राह्मणों के लिए ठीक नहीं है। तुम अपनी पत्नी को छोडो नहीं तो अपनी स्त्री के साथ दलितों की बस्ती में घर बनाकर रहो पर मंदिर में मत आओ। इस प्रकार जगन्नाथ अपनी स्त्री को छोड़कर भाई के साथ मंदिर में रहे और बहुत कुछ भोगा। अंत में जगन्नाथ को अपनी स्त्री से माफी मांगनी पड़ी।"[5] डॉ. मायाधर मानसिंह ने इस पुराण के बारे में यह बताया है कि– "इस किताब ने हिन्दू

समाज में स्थित जाति–प्रथा को तोड़ा है और इसके साथ–साथ स्त्री सशक्तिकरण परिवार एवं समाज दोनों जगह पर हुआ है।"[6]

पंच सखा के बाद आये भीमभोई (1855–1895) आधुनिक प्रगतिशील कवि के रुप में जाने जाते हैं। वे अपनी प्रमुख रचना 'स्तुति चिंतामणी', 'स्तुति निषेध' ग्रंथ एवं 'निर्वेद साधना' के लिए प्रसिद्ध हैं। उनके विचार जाति–प्रथा और ब्राह्मणवाद के खिलाफ थी। जब उनके समकालीन कविगण स्त्री के सौन्दर्य, प्रकृति के सौन्दर्य और रहस्य के बारे में लिख रहे थे, तब भीम भोई ने समाज का वास्तविक चित्रण किया। भीमभोई के बारे में लेखिका सुप्रिया मल्लिक का कहना है कि "ओड़िशा में भीमभोई का साहित्य ही यथार्थ में दलित साहित्य है। इनकी रचनाओं में हिन्दू धर्म में सामाजिक वैषम्य, जातिप्रथा और अन्याय के विरोध में उग्र प्रतिक्रिया है। अस्पृश्यों के घरों में खाना उनके कविताओं का एक नियम है किंतु ब्राह्मणों के घर में पानी स्पर्श न करने के लिए उन्होंने घोषणा की है।"[7] वह हमेशा सरल भाषा में अपने विचार व्यक्त करते थे जो कि साधारण जनता को समझने में आसान होता था। भीम भोई जाति से एक आदिवासी कंध थे। उनका भी समाज में जाति–प्रथा, छुआछूत और अस्पृश्यता को लेकर बहुत अपमान हुआ है।

भीम भोई ने यह सोचा है कि समाज में जो भेद–भाव है, उसका मुख्य कारण ब्राह्मणवाद ही है। इसलिए उन्होंने जाति उन्मूलन की समर्थन किया। भीम भोई जानते थे कि जाति के नाम पर समाज में फैले अमानवीय, जघन्य, अंधविश्वास आदि इन्सान–इन्सान में भिन्नता और घृणा भाव पैदा करेगा। उनका विश्वास यह था कि एक दिन जरूर समाज से जाति–प्रथा खत्म हो जाएगी। इसलिए उन्होंने यह लिखा है कि–"हृदय और आत्मा में सब/एक जगह खाएंगे/कर्म के आधार पर कोई भी भेद/समाज में नहीं रहेगा।"[8] भीम भोई संगीत के माध्यम से अपने विचारों को साधारण जनता तक पहुँचाने के लिए एक जगह से दूसरे जगह को जाते थे। ब्राह्मणवाद के पीछे जो अंधविश्वास जुड़ा था, उन्होंने उसका खुलासा किया। साधारण जनता के मन में ब्राह्मणवाद के विरुद्ध चेतना जगायी। वह एक कवि और सामाजिक कार्यकर्ता थे, जिन्होंने एक पारंपरिक शिक्षानुष्ठान से शिक्षा प्राप्त की थी। उनका आन्दोलन राजा, जमींदारों, प्रशासन और ब्राह्मणों के लिए बड़ा चुनौतिपूर्ण था। महिमा गोसाईं के बाद ओड़िशा में उन्होंने महिमा धर्म का प्रचार–प्रसार किया। यह धर्म ब्राह्मणवाद और हिन्दूवाद के खिलाफ था। इसलिए समाज में कहे जाने वाले दलित महिमा धर्म को ग्रहण किया और दैनदिन जीवन में अत्याचार से मुक्त रहा। उन्होंने इस धर्म का प्रचार–प्रसार एक बड़े उद्देश्य के साथ पूरे देश में जैसे–छत्तीसगढ़, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र और नेपाल जैसे देश में किया। बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में उड़िया में दलित कवियों ने अपनी बातों को दृढ़ता पूर्वक कहने लगे। इन कवियों ने स्वयं की अनुभूति के आधार पर काव्य रचना की। इनका विद्रोह किसी व्यक्ति या समूह के लिए नहीं है बल्कि उस पूरे अमानवीय समाज का विरोध है। ऐसे अनेक दलित कवि हैं जो इस शोषित समाज के विरुद्ध आवाज उठा रहे हैं। उन कवियों में प्रमुख हैं बासुदेव सुनानी, कुमाणमणी तंती, संजय बाग, अंजुबाला जेना एवं मोहन जेना आदि।

बिचित्रानंद नायक एक उग्र प्रवृति वाले कवि हैं। उन्होंने गरीबी और शोषण को लेकर सत्ताधारी वर्गों के खिलाफ आवाज उठाई। इन्सानों में भेद भाव पैदा करने वालों के विरुद्ध उन्होंने हमेशा अपनी आवाज़ मुखर की और समानता लाने की कोशिश की। उनके द्वारा लिखित कविता संग्रह 'अनिर्वाण' है। जिसमें उन्होंने कविताओं के माध्यम से ब्राह्मणवादी जकड़न पर प्रहार किया और साथ–साथ अस्पृश्यता, छूआछूत, जाति–प्रथा के विरुद्ध अपनी कलम चलायी है। बिचित्रानंद की कविताओं की विषयवस्तु और तथ्यों के बारे में ज्यादा चर्चा उड़िया साहित्य में नहीं हुई है।दलित होने की वजह से सवर्ण आलोचकों ने उन्हें साहित्य जगत से उपेक्षित रखना चाहा। उड़िया के दलित कवि बासुदेव सुनानी दलित जीवन को लेकर कविता रचना करने में सिद्धहस्त हैं। उनकी कविता संग्रह 'अस्पृश्य' से ही आधुनिक उड़िया दलित साहित्य का जन्म हुआ। इसके अलावा उन्होंने और भी काव्य संग्रहों का लेखन कार्य कर, उड़िया दलित कविता को समृद्ध किया है। अंजुबाला जेना एक सशक्त दलित स्त्री लेखिका हैं। उनकी कविताओं में अन्याय, अत्याचार और शोषण का चित्रण हुआ है। एक स्कूल शिक्षक होने के नाते उन्होंने दैनदिन जीवन में सवर्ण शिक्षकों के द्वारा अन्याय, अत्याचार को अच्छी तरह से जाना है। स्कूल में सरस्वती, गणेश पूजा के दिन दलित छात्रों के साथ जो दुर्व्यवहार होता है, उसका चित्रण उन्होंने अपनी कविताओं में की है। दलित छात्रों को स्कूल में मूर्ति छूने का अधिकार नहीं दिया जाता है और प्रसाद दूर से दिया जाता है।पीताम्बर तराई एक प्रगतिशील कवि है। उनके कई कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। जो इस प्रकार हैं – 'इत्तर', 'शूद्रकर श्लोक', 'बुन्दे लुहर पिठीरि समुद्र' आदि। उनकी कविताओं में जो मूल समस्या है, वह है लोगों का विस्थापन और एक जगह से दूसरी जगह को स्थानांतरण। हाल में उनकी एक और कविता संग्रह 'अभाजन' नाम से प्राकाशित हुई है।

अखिल नायक उड़िया दलित साहित्य में एक उल्लेखनीय कवि हैं। उनके साथ बचपन से जो हादसा हुआ है, उसका खुलासा अपनी कविताओं में करते हैं । उनके द्वारा लिखित चार कविता संग्रह हैं। उनके कविताओं की विषयवस्तु हाशिए के समाज, शोषित वर्ग, उत्पीड़न और प्रेम आदि होती हैं। उनकी एक कविता संग्रह 'धीक' में हम इन सारी समस्याओं को देख सकते हैं। श्री हृषिकेश मल्लिक एक प्रतिभा संपन्न कवि हैं। उनका काव्य संग्रह 'धान साऊंटा झिअ' (धान इकठा करने वाली लड़की) , 'उजुड़ा खेतर गीत' (उजड़ा हुआ खेत की गीत) एवं 'बसुसेण' आदि प्रमुख हैं। इनकी कविताओं में विषमतावादी समाज व्यवस्था में पल रहे दलितों की आंतरिक पीड़ा का वर्णन है। इनकी 'बसुसेण' कविता में कर्ण की पीड़ा की अत्यंत मार्मिक रूप से

वर्णन किया गया है। जाति के कारण कर्ण को कहाँ–कहाँ दंश झेलना नहीं पड़ा। कवि अपने क्रोध को कर्ण के माध्यम से कहते हैं कि–"जाति पूछ रहे हो मनुष्य की/मैं तो हूँ सूतपुत्र/जीह्वा में हड्डी है तो अब बताओ/कौन है पिता कुंत पुत्र पार्थ का/मैं तो हूँ सूतपुत्र।"[9] इस तरह कवि हृषिकेश की कविता में दलितों के मर्म वेदना के साथ–साथ दलितों का आक्रोश भी व्यक्त हुआ है। अक्षय कुमार बेहेरा गेय कविता के लिए लोकप्रिय माने जाते हैं। उन्होंने अपनी रचना में अस्पृश्यता और जाति–प्रथा के विरुद्ध वर्णन किया और अंबेडकरवाद को अपनाया। उनका योगदान कुछ पत्र–पत्रिकाओं में भी रहा है। इसका कोई प्रभाव, चर्चा मुख्य साहित्यिक क्षेत्र में देखने को नहीं मिलता है। रचना में हमेशा उनका सीधा प्रहार सामाजिक भिन्नता के विरुद्ध रहा है। समाज में व्याप्त भिन्नता से संबंधित सवाल भगवान से उन्होंने निम्न पंक्ति में किया है–"भगवान!/तुम कहाँ हो?/तुमने इन्सान को बनाया/या इन्सान ने तुमको/तुम जवाब दो/एक बार इस महत्वपूर्ण सवाल का।"[10] नरेन्द्र कुमार भोई एक युवा कवि हैं।उनकी कविता संग्रह में सामाजिक शोषण, पूंजी, अस्पृश्यता आदि विषय का मार्मिक ढंग से वर्णन हुआ है। इन सबके अलावा उड़िया दलित साहित्य में कई और लेखकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उनमें से सत्रुघ्न नायक, उपेन्द्र नाग, कांतिलाल मुगरी, सनातन जेना, कुमारमणी तंती, गजेन्द्र महानंद, हेमंत दालपति, मीनकेतन बारलेबड़िया, रमेश अली बेसांत, देवेंद्र लाल, सत्यानंद भोई और सहदेव जगत आदि प्रमुख हैं। जिनकी रचनाएं विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं । वे सब दलित लेखक के रुप में उड़िया दलित साहित्य में जाने जाते हैं।

उड़िया दलित कविता पर दृष्टिपात करते हुए हम कह सकते हैं कि 50 वर्ष बाद भी उड़िया दलित कविता की धारा में वह प्रवाह नहीं आ पाया जिसकी अपेक्षा की जाती है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि दलित साहित्य की चेतना सुषुप्त हो गयी, मगर चिंतन की सीमित दायरा और प्रतिक्रियावादी दृष्टि का परित्याग करके साहित्य की यह धारा कम समय में विकसित हो कर साहित्य के क्षितिज पर विराजमान हो सकती है। आज दलित साहित्य उड़िया साहित्य की विभिन्न धाराओं में आगे की तरफ बढ़ रहा। जिसमें चिंतन की अनंत गहराईयाँ दिखाई पड़ रही है, जो एक शुभ संकेत मानी जा सकती है।

सन्दर्भ–(1)उड़िया साहित्य का इतिहास, मायाधर मानसिंह, पृ.सं.28 (2)उड़िया दलित साहित्य, बासुदेव सुनानी, पृ.सं.6 (3)उड़िया दलित साहित्य, बासुदेव सुनानी, पृसं.15 (4)उड़िया साहित्य का इतिहास, मायाधर मानसिंह, पृ.सं.107 (5)लक्ष्मी पुराण, बलराम दास, पृ.सं–11 (6)उड़िया साहित्य का इतिहास, मायाधर मानसिंह, पृ.सं.–295 (7)उड़िया दलित साहित्य, बासुदेव सुनानी, पृ.सं.–125 (8)उड़िया साहित्य का इतिहास, मायाधर मानसिंह, पृ.सं.–299 (9)दलित आंदोलन और दलित साहित्य, डॉ.कृष्ण चरण बेहेरा,श्रीरवीन्द्र नाथ साहु,पृ.सं–146 (10)उड़िया दलित साहित्य, बासुदेव सुनानी, पृ.सं.–109

9.गांधीवादी विचारों में अपराध और दंड

– *विकाश*

(शोधार्थी) गांधी एवं शांति अध्ययन

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा, महाराष्ट्र

समाज में अपराध की रोकथाम तथा कानून व्यवस्था बनाए रखना राज्य का एक प्रमुख कार्य है, साथ ही व्यक्ति के जीवन और स्वतंत्रता की सुरक्षा किसी भी संविधान की बुनियादी बातों में से एक है। अपराधियों को उनके किए की पर्याप्त सज़ा देना राज्य की शाश्वत जिम्मेदारी रही है, इसलिए हम राज्य को उसके दमनकारी चरित्र और हर संभव तरीके से अपराध के खिलाफ उसके निवारक उपायों से जानते हैं। लेकिन आधुनिक समय में अपराध एवं दंड की इस अवधारणा में वाद–विवाद प्रायः देखने को मिलता है। समाज में अपराध क्यों होते है और उनके लिए किस प्रकार की और कितनी सजा निर्धारित की जानी चाहिए इस प्रश्न पर आधुनिक दंडशास्त्रियों और अपराधशास्त्रियों ने अपराध के मूल कारणों के विभिन्न सिद्धांतों को प्रतिपादित किया और गलती करने वाले व्यक्ति को सुधारने के लिए कई तरीके सुझाए। लेकिन अपराध और उसके लिएमायने वाले दंड के संबंध में गांधीवादी विचार अपनी एक अलग प्रासंगिकता स्थापित करते है। कोई व्यक्ति किसी मानसिक दोष या मनोवैज्ञानिक अयोग्यता के कारण अपराध करता है। लेकिन राज्य अपनी पूरी तार्किकता, सुदृढ़ता और कठोरता के साथ उसे सुधरने का मौका दिए बगैर ही, उसे फांसी या आजीवन कारावास जैसे कठोर दण्ड दे देता है। यह किसी भी तरह से पूर्ण न्याय नहीं हो सकता, और इस संबंध में दिए गए तर्क कम ठोस हैं। किसी भी अपराध के लिए सज़ा देने से पहले हमें सजा के पीछे के दर्शन को समझना होगा। फिर चाहे दंड का उद्देश्य सामाजिक सुव्यवस्था को बनाए रखने के लिये हो या सुखी समाज बनाने के लिये।

आज के समय में अपराध की समस्या मानव जाति के सामने एक प्रमुख समस्या है। आधुनिक समय में अपराध दर बहुत तेज़ी से बढ़ रही है। वर्तमान समय में मीडिया एवं समाचार पत्र हत्या, सनसनीखेज डकैती, भ्रष्टाचार और गबन के भद्दे विवरणों से भरे पड़े हैं। आज अपराध एक सार्वभौमिक कृत्य बन गया है। प्रत्येक समाज या राष्ट्र ऐसे मामलों को निपटाने के लिए अलग अलग तरीके अपनाता है। लेकिन आज समय इस बात पर ध्यान देने का है की इस विकराल समस्या को सुलझाने का सर्वोत्तम तरीका कौन सा है। इस संबंध में गांधीजी ने अपराध एवं दंड की बिल्कुल नई अवधारणा दी। गांधीजी के अनुसार "सभी अपराध सामाजिक विफलताओं के कारण उत्पन्न होने वाली बीमारी है।"1. अपराध और उसके लिए दिए जाने वाले दंड के बारे में गांधीजी का दृष्टिकोण सत्य और अहिंसा के उनके विचार से काफी हद तक जुड़ा हुआ है। उनके अनुसार मनुष्य के साथ किया जाने वाला व्यवहार अंततः अहिंसा और प्रेम पर आधारित होना चाहिए।

Young Researcher Association

INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCE AND APPLIED RESEARCH

CERTIFICATE

Is hereby awarding this certificate to

NAME- गौरांग चरण राउत, शोधार्थी (हिन्दी विभाग), हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय संपर्क-सूत्र-आरंभ टाउनशिप (राजीव स्वगृह), ED1, Flat No. 505, चंदानगर, हैदराबाद- 500019, तेलंगाना

In recognition of the publication of the paper entitled

PAPER TITLE: बासुदेव सुनानी की कविताओं में दलित स्त्री जीवन

Published after Double blind peer reviewed, and editorial process in Referred

INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCE & APPLIED RESEARCH (IJAAR). ISSN 2347-7075. IMPACT FACTOR 7.328

VOLUME - 10 ISSUE- 6 DATE- JULY- AUG 2023

Dr. Pravin Talekar
Executive Editor

International Journal of Advance and Applied Research (IJAAR)
Peer Reviewed Bi-Monthly

ISSN – 2347-7075
Impact Factor –7.328
Vol.10 Issue-6 July- Aug 2023

CONTENTS

Sr No	Paper Title	Page No.
1	Buddhist Ethics- As a Mirroring of Indian Knowledge System **Ms. Reetu**	1 to 8
2	A study of women entrepreneurs' self-efficacy in the Tiruchirappalli district **Dr.S. Mariadoss, A. Sarlin Venotha**	9 to 15
3	A Study on Discrimination Faced By the Women in India **Ihtisham, Ramsha Hayat, Harsh Kumar Jauhar, Zoma Itrat Khan**	16 to 20
4	The Demographic Characterisation of E-Advertisement **Ela Kumari, Dr. D.K. Dhusia**	21 to 29
5	Ambiguity of Parliamentary Privilege- An Analysis **Moh. Zahaib, Moh. Ahmed, Neha Yadav**	30 to 33
6	Arbuscular Mycorrhizal Fungi in Some Cereals crop plants of Marathwada, India **Prakash P. Sarwade, Afreen Begum Y. Attar, Sachin S. Chavan, Kishor G. Bansode, Ranjeet S. Bhagade, Vikas P. Sarwade Rajesh S. Gaikwad, Kavita N. Gaisamudre (Sarwade)**	34 to 36
7	A Study on Sustainable Development through Environment in Human Life **Dr. P. R. Mali**	37 to 40
8	"Land Use Patterns in Varanasi District, A Comprehensive Analysis of Forests, Cultivable Useless Land, Fallen Land, Pasture Land, and Green Spaces" **Dr. Sachchidanand Maurya, Dr.Uma Kant Singh**	41 to 55
9	A Study on Impact of Agricultural Productivity on Economic Growth: An Empirical Analysis **Dr. Prashant K. Powar**	56 to 60
10	Microwave-assisted Beckmann Rearrangement of Ketoximes using Lemon Juice as an efficient catalyst **Kirti S. Niralwad**	61 to 65
11	संगठित क्षेत्रों में कार्यरत महिलाओं की सामाजिक.आर्थिक स्थितियों का अध्ययन **डॉ. सूर्यभान रावत, मेनका यादव[2]**	66 to 67
12	Viscosity deviations and excess Gibbs free energy of activation of binary mixtures of propionaldehyde with ethanol at 298.15, 308.15 and 318.15 K. **Satish B. Maulage**	68 to 73
13	महिला सशक्तीकरण : पंचायती राज व्यवस्था में महिलायें **सोहन सिंह, ज्योति शुक्ला**	74 to 76
14	Role of Youth in Environmental Preservation **Ravindra Kumari, Nikita Thakur**	77 to 81
15	Cost-Effective Bioconversion of Banana Peel and Paper Pulp Residues into Polyhydroxybutyrate (Phb) Using *Bacillus Thuringiensis* **Dr Ashily Rajendran, Swapnali Jadhav**	82 to 89
16	बासुदेव सुनानी की कविताओं में दलित स्त्री जीवन **गौरांग चरण राउत**	90 to 92

International Journal of Advance and Applied Research
www.ijaar.co.in
ISSN – 2347-7075 Impact Factor – 7.328
Peer Reviewed Bi-Monthly
Vol.10 No.6 July-Aug 2023

बासुदेव सुनानी की कविताओं में दलित स्त्री जीवन

गौरांग चरण राउत
शोधार्थी (हिन्दी विभाग), हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय
संपर्क-सूत्र- आरंभ टाउनशिप (राजीव स्वगृह), ED1, Flat No. 505,
चंदानगर, हैदराबाद-500019, तेलेंगाना
Corresponding Author – गौरांग चरण राउत

समाज में स्त्री का महत्वपूर्ण स्थान है। स्त्री मानव समाज का निर्माण और विकास करती है। अतः सामाजिक दृष्टि से नारी की महत्ता स्वयंसिद्ध है। किन्तु इन सबके बावजूद भारतीय समाज में पुरूष का वर्चस्व रहा। नारी, पुरूष सत्तात्मक समाज में पुरूषों के हाथ में कठपुतली एवं भोग विलास का साधन मात्र बनकर रह गयी। उसकी निजी तथा सामाजिक स्थिति दयनीय हो गयी है। सामाजिक बंधनों में वह बुरी तरह जकड़ गई। समाज के सारे धर्म, नीति, नियम केवल नारी के लिए ही बने हैं। मनुस्मृति में नारी को नरक कहा गया है। उनके चरित्र पर आरोप लगाते हुए उन्हें हमेशा नीचा दिखाया जाता है। मनु स्त्री के बारे में कहता है "स्त्रियां बुद्धिमान नहीं होती वे दुर्बल, चंचल, पापी होती है, सिर्फ चूल्हा -चौका पति और घर के सब लोगों की सेवा करना उसका कर्तव्य और धर्म है।"[1] स्त्री को किसी भी प्रकार की स्वाधीनता देना मनु को मान्य नहीं था। समाज व्यवस्था के नियामक अन्यायी मनु ने नारी को सदैव पुरूष के पराधीन और उसका गुलाम बनाकर उस पर अनेकानेक प्रतिबंध लाद दी, उसे नरक के गर्त में धकेलने की पूरी साजिश मनु ने रची थी। अंबेडकर के शब्दों में "स्त्री के बारे में मनु के विधि-विधान विक्षप्तता के प्रमाण है, मनु ने कानून बनाते समय न्याय अन्याय को ताक पर रखा।"[2] पितृसत्तात्मक समाज में सदियों से स्त्री को मूलभूत अधिकारों से वंचित रखा गया। आज भी भारतीय नारी प्रभुत्ववादी पुरूष के चंगुल में फंसी हुई है। आज पूंजीवादी समाज में नारी केवल भोगविलास की सामग्री है, जिस पर पुरूष का पूर्ण अधिकार है।

ऐसी परिस्थिति में दलित नारी की स्थिति और दयनीय है। दलित नारी की समस्याएँ, सवर्ण नारियों की तुलना में कहीं ज्यादा है। विमल थोरात के शब्दों में "दलित महिलाओं की कुछ समस्याएँ ऐसी है जो आम महिलाओं की समस्याओं से अलग नहीं, किंतु दूसरी और कुछ समस्याएँ ऐसी है जो केवल उनकी ही है और इसलिए हैं क्योंकि वे दलित हैं।" [3]

जहां हमारे समाज में एक तरफ स्त्री को देवी का रूप मान कर पूजा की जाती है तो दूसरी ओर वही समाज ठाकुर, जमींदार, साहूकार के रूप में स्त्री का शोषण करता है। इस शोषण का ज्यादा शिकार दलित स्त्रियाँ होती हैं। वह दोहरे तिहरे शोषण का शिकार होती है। दलित स्त्री के ऊपर नारी होने का अभिशाप फिर उसके ऊपर दलित होने का अभिशाप अर्थात उसके ऊपर 'दोहरा अभिशाप' है। दलित बस्ती की स्त्रियाँ उपेक्षित ज़िंदगी जीती हैं। उनके पास न संपत्ति होती है, न शिक्षा होती है। हर दिन के रोटी के लिए उन्हें श्रम करना पड़ता है। दलित नारी को गरीबी हमेशा घेरी रहती है। इसी गरीबी के कारण वह मेहनत-मजदूरी करती है। दलित महिलाएँ कभी सवर्णों के घरों में तो कभी खेतों में रोजी-रोटी के लिए काम करती हुई दिखाई देती है। यहाँ तक कि दलित महिलाएँ दो पहर की कड़ी धूप में गाये, भैंस, बकरी आदि जानवरों को चराने का काम करती हैं। इसी दो पहरी में उनकी सोचनीय स्थिति को दर्शाते हुए कवि लिखते हैं-

[1] दलित उत्पीड़न की परंपरा और वर्तमान, मोहनदास नैमिशराय, पृ.सं-124
[2] दलित अस्मिता, जनवरी-जून 2012, पृ.सं-25
[3] दलित साहित्य का स्त्री वादी स्वर , विमल थोराट, पृ.सं- 94

"अगर मैं पुंछू
एक मौका देखकर
किसी के घर से गरम
किसी के घर से ठंडा
एक दो कटोरी
सढ़ी चावल पानी से क्या मिलता है
बारिश, ओस में भीगकर
धूप में सुख कर
ये बकरा चराने से क्या मिलता है।"[4]

इस तरह दलित महिलाओं को एक जून का खाना जुटाने के लिए रात-दिन काम करना पड़ता है। पर उनकी इस लाचारी और विवशता को ये सवर्ण समाज के लोग नहीं समझ पाते हैं। समझेंगे भी कैसे? गरीबी, भूख का दर्द वह कैसे जानेंगे जो कभी गरीबी नहीं देखा, भूख के दर्द में कभी नहीं तड़पा। वे तो विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं रोजी-रोटी या भूख की चिंता उन्हें नहीं है। उनकी चिंता गरीब दलित महिलाओं की चिंता से संपूर्ण अलग है कवि लिखते हैं

"एकाग्रता में दौड़ता
मुलायम पैरों
रक्तचाप, कोलेष्टेराल
मोटापा आदि समस्याओं
से ऐसे रहते है चिंतित
जैसे चिंतित रहती है एक स्त्री
अपनी दो भूखे बच्चों के लिए
दो वक्त रोटी
जुटाने में।"[5]

भूख और गरीबी के कारण दलित महिलाएँ विपरीत स्थितिओं में भी काम करने से नहीं डरती। यह उनकी मजबूरी है। गरीबी के साथ-साथ दलित स्त्रियाँ अनेक प्रकार के दमन का शिकार होती हैं। गाँव के सवर्ण लोग दलित महिलाओं का निरंतर अपने हवस का शिकार बनाते रहे हैं। अछूत लड़कियों का शोषण गांव के ठाकुरों के लिए आम बात है। ये लड़कियाँ मानो इनकी अय्याशी के लिए पैदा हुई हो। इनको गंदी गालियाँ देना सरे आम नंगा करके घुमाना, बलात्कार करना यह सब जैसे ठाकुरों की आदत बन गयी है। बात-बात पर गाली देना उनकी नियती बन गयी है। इन ठाकुर और जमींदारों की गलतियों की सजा भुगतनी पड़ती है दलित बहू-बेटियों को। इनके दुर्व्यवहार के कारण दलित बेटियों को अभिशप्त जीवन जीना पड़ता है। उनकी शादी ब्याह तक नहीं हो पाती। इस विवशता को वर्णन करते हुए कवि लिखते हैं

"एक दिन के लिए वह भूल गयी थी
सामान्य हवा में उजड़ा हुआ
झोंपड़ी का घर
कई दिनों से
बंद रही चूल्हा
किसी एक का हाथ लगा था
ढेमशा नृत्य के समय
उनकी बेटी सुपाली पर
जो अब तक
बिन ब्याहे
उम्र गिन रही है।"[6]

भारतीय धर्मशास्त्र, रीति-रिवाज और परंपरा के कारण दलित स्त्रियों का ऐसा शोषण होता है जिससे मानवीय संवेदना तिलमिला जाएगी। सवर्ण पुरूष केवल कामोत्तेजना की पूर्ति के उद्देश्य से दलित स्त्रियों का बलात्कार नहीं करते बल्कि उसके पीछे उनकी जातीय श्रेष्ठता और उच्चता का दंभ भी रहता है। विमल थोरात के शब्दों में "दलित महिलाओं और उन पर होनेवाले जुल्म-जोर, बलात्कार, अवमानना, उत्पीड़न की हजारों घटनाओं के पीछे उनका दलित होना बहुत बड़ी वजह है। क्योंकि उनके प्रति सवर्ण समाज की धारणा और व्यवहार आज भी ब्राह्मणवादी परंपरा से प्रभावित है।"[7] कवि सवाल करते हैं कि इन दलित महिलाओं के साथ ऐसा अमानवीय व्यवहार क्यों किया जाता है। यह भी तो भारत माँ की बेटी है। स्वतंत्रता दिवस एवं साधारणतंत्र दिवस में भारत माता की जयगान होती है, भारत माता को सम्मान दिया जाता है। दूसरी तरफ उसी दिन राज पथ पर दलित महिलाओं के साथ बलात्कार किया जाता है। उनके नंगे, भूखे बच्चों के साथ मार पीट की जाती है। यह सवर्णों का कैसा दोगला चरित्र है। कवि लिखते हैं

"गेट के पास सोई हुई वह नारी
भारत माता की प्रतीक
जमीन में गिरी हुई उसकी आंचल
तीन रंग में लहराती हुई झंडा
देश का गर्व और गौरव
और जो गिड़गिड़ाता हुआ बच्चा
अपनी माँ की आंचल खींच रहा है
वही है
भारत प्रगति का अग्रदूत।"[8]

भारतीय समाजिक परिवेश में दलित महिला एक महिला नहीं उपभोग की वस्तु मात्र बन गई है। उसका दुःख-दर्द, चीत्कार कोई नहीं सुनता है। न सामाजिक ठेकेदार, न राजनेता, न सरकार। सब मूक बन कर बैठे रहते हैं और

[4] बांस अंकुर का बाजार, बासुदेव सुनानी पृ.सं- 2

[5] सायद प्रेम करना मुझे नहीं आता,बासुदेव सुनानी, पृ-सं- 87

[6] बांस अंकुर का बाजार, बासुदेव सुनानी पृ.सं-50

[7] दलित साहित्य का स्त्री वादी स्वर , विमल थोराट, पृ.सं- 107

[8] सायद प्रेम करना मुझे नहीं आता,बासुदेव सुनानी, पृ-सं- 86

दलित महिला दोहरा, तिहरा शोषण की शिकार होती जा रही है। नैमिशराय के शब्दों में "दलित महिलाओं की त्रासदी यह है कि उन्हें एक गालपर ब्राह्मणवाद का तो दूसरे गाल पर पितृसत्ता का थप्पड़ खाना पड़ता है।"[9]

बासुदेव सुनानी ने अपनी कविताओं में नारी की वास्तविक स्थिति का मार्मिक चित्रण किया है। क्या आज भी नारी का शोषण नहीं हो रहा है? नारी पर अत्याचार नहीं किए जा रहे हैं? नारी को मिले अधिकारों का उपयोग क्या वास्तव में नारी कर रही है? ऐसे अनेक सवालों का उत्तर बासुदेव सुनानी की कविताओं में मिलता है।

---

[9] आधुनिकता के आईने में दलित, अभय कुमार दुवे, पृ.सं- 230

7.

University of Hyderabad

DEPARTMENT OF HINDI

CERTIFICATE

This is to certify that Prof./Dr./Mr./Ms. GAURANGA CHARAN ROUT *has chaired / participated / presented a paper on the topic* 'SALAM' KAHANI SANGRAH MEIN CHITRIT JATI PRATHA *in the National Seminar held on* 25-26 MARCH 2014 *on* 'SAMKALEEN HINDI SRIJAN AUR ALOCHANA'.

Coordinator

Head of the Department

Department of Hindi

Sree Narayana College for Women, Kollam

(Accredited with Grade B+ By NAAC)

(Affiliated to University of Kerala)

Two Day National Seminar in Association with
"Kerala State Higher Education Council"
Department of Hindi, Kariavattom Campus, University of Kerala & IQAC, SNCW

"Contemporary Literature in Comparative Perspective"

Certificate

This is to certify that Prof/ Dr/Mr/Ms/Mrs. GOURANGA CHARAN ROUT

has participated/Chaired a Session/ Presented a paper in the Two Day National Seminar on "Contemporary Literature in Comparative Perspective" organized by the Department of Hindi ,S N College for Women, Kollam on 24th & 25th February 2023. She/He has presented a paper titled SAMAKALIN DALIT KAVITA MEIN TULNATMAK ADHYAYAN KA MAHATVA

Dr. Sheeba.M.R	**Prof.(Dr) Manju A.**	**Prof.(Dr) S.R.Jayasree**	**Dr. Sunil Kumar.R**
Co-ordinator	HOD	HOD, Kariavattom Campus	Principal

AS PER THE UNIVERSITY POLICY, ANTI-PLAGIARISM SCREENING IS NOT REQUIRED FOR THE REGIONAL LANGUAGES

Librarian
Indira Gandhi Memorial Library
UNIVERSITY OF HYDERABAD
Central University P.O.
HYDERABAD-500 046.